साहित्य अमृत

मासिक

पौष-माघ, संवत्-२०७७ ❖ जनवरी २०२१

वर्ष-२६ ❖ अंक-६ ❖ पृष्ठ ८४ | यू.जी.सी.-केयर लिस्ट में उल्लिखित | ISSN 2455-1171

संस्थापक संपादक

पं. विद्यानिवास मिश्र

निवर्तमान संपादक

डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी

श्री त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी

संस्थापक संपादक (प्रबंध)

श्री श्यामसुंदर

प्रबंध संपादक

पीयूष कुमार

संपादक

लक्ष्मी शंकर वाजपेयी

संयुक्त संपादक

डॉ. हेमंत कुकरेती

उप संपादक

उर्वशी अग्रवाल 'उर्वी'

कार्यालय

४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-०२

फोन : ०११-२३२८९७७७

०८४४८६१२२६९

इ-मेल : sahityaamrit@gmail.com

शुल्क

एक अंक—₹ ३०

वार्षिक (व्यक्तियों के लिए)—₹ ३००

वार्षिक (संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए)—₹ ४००

विदेश में

एक अंक—चार यू.एस. डॉलर (US$4)

वार्षिक—पैंतालीस यू.एस. डॉलर (US$45)

प्रकाशक, मुद्रक तथा स्वत्वाधिकारी पीयूष कुमार द्वारा ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२ से प्रकाशित एवं न्यू प्रिंट इंडिया प्रा.लि., ८/४-बी, साहिबाबाद इंडस्ट्रियल एरिया, साइट-IV, गाजियाबाद-२०१०१० द्वारा मुद्रित।

साहित्य अमृत में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखक के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

✍ **संपादकीय**

नया वर्ष, नई सोच ४

✍ **प्रतिस्मृति**

गुरुजी/ *शरतचंद्र* ६

✍ **कहानी**

बुड्ढा सोता बहुत है…/ *नरेंद्र कोहली* ८

और लहरा उठा तिरंगा/ प्रकाश मनु १८

इस गरीब की 'कास्ट'…/ *मुकेश शर्मा* ३०

देवराज इंद्र को मिला…/ *आशुतोष गर्ग* ३७

पंद्रह साल की माँ/ *क्षमा शर्मा* ४१

रि-प्ले/ *रजनी गुप्त* ५२

इमारत मेरी है/ *शोभा रस्तोगी* ६४

✍ **आलेख**

प्रेमचंद-साहित्य में माँ का स्वरूप/ *कमल किशोर गोयनका* १०

परंपरा के पुरुषार्थ : पं. विद्यानिवास मिश्र/ *अजयेंद्रनाथ त्रिवेदी* २४

पुस्तकों का गाँव 'भिलार'/ *दामोदर खड़से* ३२

डॉ. परशुराम शुक्ल के बाल-काव्य में बाल-मनोविज्ञान/ *सरोज शर्मा* ३८

भक्तिकालीन सगुण-निर्गुण द्वंद्व/ *अलका आनंद* ५०

✍ **लघुकथा**

बिखरने से पहले / *शोभना श्याम* ६२

समझौता/ *शोभना श्याम* ६७

लघुकथाएँ/ कमलेश भारतीय ७३

✍ **कविता**

मेरी बेटी/ *भविष्य कुमार सिन्हा* १३

इस अंकुर सा रोज उगूँ/ *विज्ञान व्रत* २३

देव दीपावली/ *श्रीधर द्विवेदी* २७

वह साहस की रंभा/ *शिवनंदन सिंह 'सहयोगी'* ४३

कोरोना/ *रामदरश मिश्र* ४९

मैं द्रौपदी मूकदर्शक सी/ *लक्ष्मी मित्तल* ६३

घाटी का गाँव/ रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' ६९

जब भी जाऊँ…/ राजकुमार कुंभज ७८

✍ **पुस्तक-अंश**

कोविड-१९ : सभ्यता का संकट और समाधान/ *कैलाश सत्यार्थी* १४

✍ **राम झरोखे बैठ के**

हमारा असली नववर्ष/ *गोपाल चतुर्वेदी* ३४

✍ **उपन्यास-अंश**

कोहरा छँटा/ *भगवान अटलानी* ४६

✍ **ललित-निबंध**

कोरोना! ऐसा मत करो ना/ *श्रीराम परिहार* ५६

✍ **साहित्य का भारतीय परिपार्श्व**

तीर्थ-यात्रा/ *राजेश कौल* ६०

✍ **व्यंग्य**

चमचों की दुकान/ सुनीता शानू ६६

✍ **साहित्य का विश्व परिपार्श्व**

ताबूतसाज/ *एलेक्जेंडर पुश्किन* ७०

✍ **यात्रा-वृत्तांत**

मलेशिया की धरती पर पहला कदम/ कमलेश भट्ट कमल ७४

✍ **बाल-संसार**

कहावतों-मुहावरों में कविता/ *बालस्वरूप राही* २८

सोनी के चाचाजी/ संजीव ठाकुर ६८

उफ, कितना मुश्किल है/ *मोहम्मद अरशद खान* ७७

✍ **पाठकों की प्रतिक्रियाएँ** ७९

✍ **वर्ग-पहेली** ८०

✍ **साहित्यिक गतिविधियाँ** ८१

संपादकीय

नया वर्ष, नई सोच

ऐसा प्राय: हर वर्ष ही होता रहा है। किसी भी जाते हुए वर्ष को हमने अपनी अनेक दुर्घटनाओं, परेशानियों, कमियों के लिए दोषी ठहरा दिया तथा सारी आशाएँ आनेवाले नए वर्ष पर केंद्रित कर दीं, जैसेकि नया वर्ष कोई सर्वशक्तिमान देवता है, जो हर किसी की हर इच्छा पूरी कर देगा! जो भी परिवर्तन होना है, वह तो लोगों के संकल्पों, कठिन श्रम तथा समर्पण से ही होना है, बेचारा नया वर्ष क्या कर लेगा, किंतु किसी बहाने एक अवसर तो होता ही है, नए सिरे से अपने लिए, समाज के लिए, देश के लिए सोचने का, अपने भीतर झाँकने, अपनी क्षमताओं के आकलन का और स्वयं को नई सोच, नए इरादों के साथ एक नई कार्यप्रणाली से नए संकल्पों को पूरा करने का।

२०२१ पूरी दुनिया के लिए नई आशाएँ लेकर आ गया है क्योंकि २०२० मानव सभ्यता के इतिहास में एक भयानक वर्ष रहा है। प्रख्यात 'टाइम' मैगजीन ने २०२० पर लाल क्रॉस बनाकर अपने आवरण पृष्ठ पर इसे सबसे बुरा वर्ष घोषित किया है। पूरी दुनिया की निगाहें इस बात पर टिकी हैं कि हम सब एक सामान्य जीवन की ओर लौटें। लोग एक-दूसरे से मिल-जुल सकें, परिवार एकजुट हों, पर्यटन-स्थलों पर रौनक लौटे, समारोहों, उत्सवों की धूमधाम फिर से वापस आए और सबसे महत्त्वपूर्ण यह कि स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय सामान्य पढ़ाई प्रारंभ कर सकें। अभी भी जो डर हर ओर पसरा हुआ है, उससे मुक्ति मिले। विडंबना देखिए कि जहाँ से कोरोना पूरे विश्व में फैला, चीन के उस वुहान शहर में सामान्य जीवन की रौनकें पूरी तरह वापस आ चुकी हैं; हालाँकि विशेषज्ञों का कहना है कि अब 'मास्क', 'भौतिक दूरी' तथा 'नियमित हाथ धोते रहना' हमें अपने सामान्य जीवन का अनिवार्य हिस्सा बना लेना चाहिए। वैक्सीन आ चुकी है और वैक्सीन के बाद जीवन कितना सामान्य हो सकेगा, यह अभी भविष्य के गर्भ में है!

हम भारतवासी भी हर वर्ष ३१ दिसंबर की रात इस 'आयातित' नववर्ष के स्वागत में कोई कमी नहीं छोड़ते! नए वर्ष की शुभकामनाओं के माध्यम से अनेकानेक पुराने मित्रों, परिचितों, शुभचिंतकों की यादें ताजा हो जाती है; संबंधों में एक नई ताजगी का संचार हो जाता है, जो सुखद है! जैसाकि परंपरा है, लोग नए संकल्प लेते हैं। ये संकल्प आम लोगों के लिए प्राय: निजी जीवन में से संबंध रखते हैं, किंतु सार्वजनिक जीवन से जुड़े या उच्च पदों का दायित्व सँभालने वाले या सामाजिक संस्थाओं के संकल्प देशहित तथा समाजहित से जुड़े होना अपेक्षित है।

'२०२१' भारत के लिए एक विशेष अर्थ रखता है, क्योंकि २०२१ में हमारी स्वाधीनता के ७५वें वर्ष का शुभारंभ हो जाएगा। न केवल केंद्र सरकार, राज्य सरकारों तथा राष्ट्रीय संस्थाओं को अपना दायित्व समझना एवं निभाना होगा, वरन् सभी भारतवासियों को भी अपने-अपने हिस्से की जिम्मेदारी निभानी होगी। हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि भारत ने दुनिया के इतिहास में सबसे लंबा स्वाधीनता संग्राम लड़ा है, तब स्वाधीनता प्राप्त हुई है। असंख्य लोगों ने अपने जीवन की बाजी लगाई, अपनी सुख-सुविधाओं की कुर्बानी दी, अनगिनत मुसीबतें झेलीं, तब आजादी मिल पाई। युवा पीढ़ी को भारतीय स्वाधीनता संग्राम के इतिहास को गंभीरता से पढ़ना चाहिए। एक ओर दर्जनों देशों पर राज करनेवाला अपार शक्तिसंपन्न ब्रिटिश साम्राज्य और एक ओर भयावह शोषण-दमन के शिकार होकर गरीबी से जूझते भारतीय! राजे, महाराजे, नवाब आदि कुछ अपवादों को छोड़कर (जैसे राजा नाहर सिंह तथा झज्जर के नवाब) अंग्रेजों के साथ थे।

तत्कालीन भारत में जहाँ ९० प्रतिशत लोग गाँवों में बसते थे, अशिक्षा, अंधविश्वासों के कारण लोगों में स्वाधीनता की चेतना न के बराबर थी। इन्हीं जमीनी सच्चाइयों को देखते हुए महात्मा गांधी ने अहिंसा और सत्याग्रह का रास्ता निकाला था, जिस पर चलकर दक्षिण अफ्रीका में असाधारण सफलता प्राप्त कर विश्व को चौंकाया था तथा चंपारण में भी इतने शक्तिशाली साम्राज्य को झुकने पर विवश किया। क्रांतिकारियों की अटूट देशभक्ति तथा सर्वोच्च बलिदानों की शृंखला ने भी ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ें हिलाईं तथा स्वाधीनता की चेतना जगाने में बहुत योगदान दिया। चंद्रशेखर आजाद, भगतसिंह जैसे क्रांतिकारी करोड़ों भारतीयों के दिलों में बसे रहेंगे। नेताजी सुभाषचंद्र बोस तथा आजाद हिंद फौज का अनूठा योगदान भी अमर रहेगा। यह ऐसा संग्राम था, जिसमें बच्चे, बूढ़े, जवान, महिलाएँ सभी शामिल थे। बहादुरशाह जफर जैसे मुगल बादशाह हों या रानी लक्ष्मीबाई, रानी चेनम्मा या नागालैंड की रानी गाइंडिल्यू या आदिवासी, वनवासी या कवि, लेखक, पत्रकार—सबने अपनी भूमिका का अविस्मरणीय निर्वाह किया, इसीलिए आजाद भारत के लोगों पर बहुत बड़ा कर्ज है, जिसकी अदायगी करना हम सबका पावन कर्तव्य है। यह कर्ज है, जिन सपनों को लेकर आजादी की लड़ाई लड़ी गई, असंख्य बलिदान दिए गए, यातनाएँ सही गईं, उन सपनों को पूरा करना। वे सपने क्या थे—आजादी के बाद स्वतंत्र भारत में किसी भी प्रकार का शोषण, दमन, अन्याय, अत्याचार, भेदभाव, ऊँच-नीच नहीं होगी। आजाद भारत में सभी के लिए सम्मानपूर्ण जीवन की गारंटी होगी। गरीबी, भुखमरी, बेकारी, बीमारी, विषमता से मुक्ति मिलेगी। आजाद भारत खुशहाल भारत होगा, वह दुनिया भर के पीड़ित-वंचित लोगों की आवाज बनेगा और अपने लिए विश्व समुदाय में विशिष्ट सम्मान अर्जित करेगा। भारत के महान् नेताओं ने स्वाधीनता सेनानियों के इन्हीं सपनों को पूरा करने के लिए देश को गंभीर विमर्श के बाद एक उत्कृष्ट संविधान दिया। जिस देश में शिक्षा का घनघोर अभाव था, शिक्षा के लिए मीलों दूर जाना पड़ता था, जहाँ सूई भी नहीं बनती थी, प्राकृतिक आपदाओं में अथवा महामारियों में लाखों लोग मारे जाते थे, स्वास्थ्य सुविधाओं का अकाल था, खाद्यान्नों के लिए विदेशों पर निर्भर होना पड़ता था, उसी देश में इन सात दशकों में अकल्पनीय परिवर्तन हुए हैं। कितने ही क्षेत्रों में भारत दुनिया के दस सर्वश्रेष्ठ देशों में शामिल है। आज भारत के अंतरिक्ष यान मंगल ग्रह और चंद्रमा तक जा चुके हैं। प्राकृतिक आपदाओं से निपटने में हम सक्षम हो चुके हैं। विश्व में भारत का एक सम्मानजनक स्थान है।

अनेकानेक शानदार उपलब्धियों के बावजूद भारत अभी भी शहीदों के

सपनों को साकार करने से बहुत दूर है, इस कड़वी सच्चाई से कोई इनकार नहीं कर सकता! हम अभी भी 'हंगर इंडेक्स' में बहुत नीचे हैं, मानव विकास में भी हम १३१वें स्थान पर हैं। अभी भी करोड़ों लोग निरक्षर हैं, करोड़ों लोग गरीबी-रेखा से नीचे जीवन-यापन कर रहे हैं। करोड़ों बच्चे शिक्षा से वंचित हैं तथा बालश्रमिक बने हैं। महिला सुरक्षा की कड़ी चुनौती है। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते' के देश में बच्चियाँ तक अपराध की शिकार हो रही हैं। विषमता की खाई निरंतर गहरी होती गई है। एक ओर फाइव स्टार सुविधाओं वाले कॉन्वेंट स्कूल तो दूसरी ओर अभी भी बिना भवन के विद्यालयों में पढ़ाई, कितनी ही चुनौतियाँ हमारे सामने हैं! भारत पर एक और बड़ी जिम्मेदारी है, वह यह है कि हम दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र हैं, इसलिए हमारा लोकतंत्र एक आदर्श लोकतंत्र होना चाहिए, जहाँ एक गरीब से गरीब पीड़ित की भी आवाज सुनी जाए। दुर्भाग्य से भारत ने आजादी के बाद भी अंग्रेजों की बनाई उस नौकरशाही को बनाए रखा, जो अंग्रेजों ने दमन के लिए बनाई थी। इसी कारण करोड़ों रुपयों की कल्याणकारी योजनाएँ बनती हैं, किंतु जरूरतमंद लोगों तक नहीं पहुँच पातीं। सही मायने में लोकतंत्र अभी भी दूर है तथा 'वीआईपी तंत्र' अधिक मुखर है। अत्यंत देर से मिलनेवाला न्याय एक बहुत बड़ी चुनौती है। सरकार के मंत्रालय तथा विभाग या केंद्र और राज्य सरकारों के बीच या एक राज्य का दूसरे राज्यों से मुकदमों की भरमार है। राजनीति में भी जोड़-तोड़ या दल-बदल में कानून बनने के बाद भी कोई बदलाव नहीं आया। मीडिया जो चौथा स्तंभ कहलाता है, गंभीर विषयों पर विमर्श करने की बजाय फालतू विषयों पर बेकार की बहसों में उलझा रहा है। विमर्श इस पर होना चाहिए कि शिक्षा के क्षेत्र में क्या सुधार हों, पुलिस व्यवस्था कैसे सुधरे, महिला सुरक्षा कैसे सुनिश्चित हो, लाखों आत्महत्याएँ कैसे रुकें, सड़क दुर्घटनाओं में मरनेवाले लाखों लोगों को कैसे बचाएँ, बच्चों की दुर्दशा कैसे सुधरे!

कुल मिलाकर हम सबको सामूहिक रूप से आत्मचिंतन करना होगा और नए इरादों, नए संकल्पों के साथ विकासशील भारत को 'विकसित भारत' बनाने में जुटना होगा। अब राजतंत्र नहीं है कि राजनीति या निर्णय-प्रक्रिया राजमहल तक सीमित हो तथा प्रजा राजमहल के रहमोकरम पर निर्भर हो, वरन् लोकतंत्र है। लोकतंत्र की सफलता के लिए अनिवार्य है कि प्रत्येक भारतवासी अपने कर्तव्यों तथा अधिकारों के प्रति जागरूक हो। अपने जनप्रतिनिधियों से निरंतर संपर्क बनाकर रखे। स्थानीय प्रशासन से लेकर राज्य सरकार तथा केंद्र सरकार के कार्यकलापों पर पैनी नजर रखे और अपनी प्रतिक्रिया दे। जहाँ हमारी संवैधानिक संस्थाओं या राष्ट्रीय संस्थाओं को अपना दायित्व निभाना है, वहीं स्वयंसेवी संस्थाओं, बुद्धिजीवियों, लेखकों, कवियों, पत्रकारों के साथ-साथ आम नागरिकों को भी अपने-अपने दायित्व सँभालने होंगे तभी हम ७५वाँ स्वाधीनता दिवस मनाने तथा शहीदों को सच्ची श्रद्धांजलि देने के हकदार होंगे।

जनशक्ति के चमत्कार

यह एक सच्चाई है कि हम हर बात में सरकार का मुँह ताकते हैं। सरकार हमारे लिए सबकुछ कर दे। सरकार को हम सब दैवीय शक्तियों से पूर्ण एक दिव्य या चमत्कारी महाशक्ति मान लेते हैं। यह भी सच है कि सरकार के पास अपार शक्तियाँ होती हैं, साधन होते हैं, धन होता है, अधिकारियों, कर्मचारियों की विशाल फौज होती है किंतु यह भी उतना ही सच है कि बिना जनसहयोग के वह सफल नहीं हो सकती। लोकतंत्र में तो यह और भी आवश्यक है कि सरकार को हर कदम पर जनता का पूरा-पूरा साथ मिले। सरकार में भी हमारे आपके परिवारों के लोग होते हैं, वे अतरिक्ष से नहीं उतरते।

विडंबना यही है कि जहाँ कुछ लोग होते हैं जो अपने परिवार के अतिरिक्त अपने समाज और देश के लिए सोचते भी हैं, कुछ-न-कुछ योगदान भी देते हैं वहीं बहुत से लोग निजी, जिंदगी निजी उपलब्धियों से आगे नहीं बढ़ पाते। यदि प्रत्येक भारतीय अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार अपनी निजी जिंदगी से परे जाकर समाज को थोड़ा सा भी योगदान दे तो देश का कायाकल्प हो सकता है। ऐसे अनगिनत उदाहरण मिल जाते हैं जहाँ लोगों ने समाज और देश की चिंता की तथा अपना योगदान देने की सोची और अपने ही साधनों से कुछ ऐसा कर डाला कि देशभर के लिए एक मिसाल बन गया। चलिए, कुछ उदाहरण आपसे साझा करता हूँ—इंदौर से २४ किलोमीटर दूर एक छोटे से कस्बे में सुमन चौरसियाजी अपने खर्चे से लता मंगेशकरजी के गानों के रिकॉर्ड इकट्ठा करते हैं और एक दिन ४०,००० के लगभग रिकॉर्ड और सीडी की अनूठी लाइब्रेरी बना डालते हैं तथा दुनिया के देशों की प्रसारण संस्थाएँ या टी.वी. चैनल उनसे सहयोग माँगते हैं।

बालोद जिले के हितापठार गाँव में एक मंदिर तक पहुँचने के लिए लोग ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी रास्ते से, कँटीली झाड़ियों से उलझते एक घंटे में पहुँच पाते थे तथा कुछ लोग घायल भी हो जाते थे। फिर १५० परिवारों की महिलाएँ रास्ता बनाने में जुट जाती हैं तथा दस महीने के श्रम से ३०० मीटर की सुंदर सड़क बना डालती हैं। अब इस समतल सड़क पर वाहन दौड़ते हैं।

टिहरी गढ़वाल का उदरखंडा गाँव पलायन के कारण वीरान हो जाता है; बचे हुए लोग कुछ संकल्प और सामूहिक खेती करके गाँव का कायाकल्प कर देते हैं और नगरों से ८० परिवार गाँव में वापस लौट आते हैं। निजी तौर भी योगदान करनेवालों के अनुपम उदाहरण मिलते हैं। बेंगलुरु के बाहरी इलाके में एक हनुमान मंदिर में भक्तों की संख्या बढ़ने लगती है तथा अनेक परेशानियाँ खड़ी हो जाती हैं। भक्तों की परेशानियाँ देखते हुए आसपास की जमीन के मालिक मोहम्मद बाशा लगभग एक करोड़ की जमीन मंदिर समिति को दान कर देते हैं। लॉकडाउन में छत्तीसगढ़ में जिन गरीब बच्चों के पास मोबाइल नहीं है, उन्हें पढ़ाने के लिए एक शिक्षक साइकिल से नियमित रूप से उन्हें पढ़ाने जाते हैं। और शिक्षक भी इसी तरह का प्रयास करते हैं। सैकड़ों कहानियाँ हैं। जरूरत है संवेदना की। उन महान् संदेशों को याद करने की, जो हमें हमारी महान् संस्कृति ने दिए हैं। हम सबमें एक राष्ट्रीय चरित्र का विकास हो जाए। हम सब देश के लिए भी सोचने लगें। उनसे प्रेरणा लें, जो अमरीका की सुविधापूर्ण संपन्न जिंदगी छोड़कर भारत के किसी ग्रामीण अंचल में लाखों लोगों का जीवन बदल रहे हैं।

जनवरी अंक पर आपकी प्रतिक्रियाओं की प्रतीक्षा रहेगी। हिंदी साहित्य को अप्रतिम योगदान देनेवाले श्री विष्णुचंद्र शर्मा एवं श्री मंगलेश डबराल को 'साहित्य अमृत' परिवार की श्रद्धांजलि।

(लक्ष्मी शंकर वाजपेयी)

गुरुजी

● शरतचंद्र

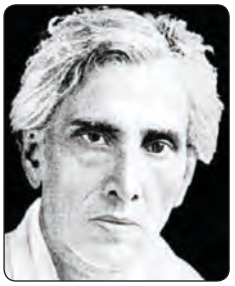

यह बात आज की नहीं है, बल्कि बहुत दिन पहले की बात है, जब हम अपने गाँव की एक पाठशाला में एक ही क्लास में पढ़ते थे। उन दिनों हमारी उम्र १०-११ वर्ष की थी। लालू के दिमाग में दुनियाभर की शरारतें भरी रहती थीं। आदमी को डराने, सजा देने और न जाने कितने खुराफात उसके दिमाग में थे। एक बार लालू ने अपनी माँ को रबड़ का साँप दिखाकर इस तरह डरा दिया कि उनके पैर में मोच आ गई, जिसकी वजह से उन्हें ७-८ दिनों तक लँगड़ाकर चलना पड़ा था।

लालू की इस बदमाशी से चिढ़कर माँ ने कहा, 'इसके लिए मास्टर रख दिया जाए। रोजाना शाम को जब पढ़ने बैठेगा, तब इसे बदमाशी करने का मौका नहीं मिलेगा।'

यह सुनकर लालू के पिताजी ने कहा, 'नहीं, मेरे लिए मास्टर नहीं रखा गया था। मैं स्वयं अपनी कोशिशों से, अनेक दु:ख-कष्ट झेलकर, पढ़-लिखकर वकील बन पाया हूँ। मेरी इच्छा है कि लालू भी मेरी तरह पढ़-लिखकर अच्छा आदमी बने। जिस साल लालू क्लास की परीक्षा में फर्स्ट नहीं आएगा, तो उस वर्ष उसके लिए 'ट्यूटर' रख दिया जाएगा।'

पिताजी के कारण लालू को मुक्ति मिल गई, लेकिन मन-ही-मन माँ पर उसे काफी गुस्सा आया। वह इसलिए कि उसके सिर पर शाम को पढ़ने के लिए मास्टर लाद देने के चक्कर में थीं। लालू का खयाल था कि मास्टर और पुलिस बराबर होते हैं।

लालू के पिता धनी गृहस्थ थे। कई साल हुए, उन्होंने अपना पुराना मकान गिराकर पुन: नया तिमंजिला मकान बनवाया था। मकान बन जाने के बाद से लालू की माँ की इच्छा रही थी कि गुरुजी इस मकान में आकर जूठा गिरा दें, लेकिन वे काफी बूढ़े थे। वे फरीदपुर से इतनी दूर इसके लिए आने को राजी नहीं होते थे। बहुत दिनों बाद इस बार मौका मिल गया। गुरुदेव सूर्यग्रहण के उपलक्ष्य में काशी आए थे। वहाँ से उन्होंने नंदरानी को लिख भेजा कि यहाँ से वापस लौटते समय आशीर्वाद देने आएँगे। लालू की माँ की खुशी की सीमा नहीं रही। वे गुरुजी के स्वागत की जोर-शोर से तैयारी करने लगीं। उनकी बहुत दिनों की मनोकामना पूरी होने जा रही थी। इस नए मकान में उनके चरणों की धूलि मिलेगी और घर पवित्र हो जाएगा।

नीचे के बड़े कमरे से सारा सामान हटाया गया। निवाड़ का पलंग गुरुवर के सोने के लिए बनवाया गया। इसी कमरे में उनके लिए पूजा की जगह बनाई गई; क्योंकि उन्हें तिमंजिले पर स्थित पूजाघर में आने-जाने में तकलीफ होगी।

बहुत दिनों बाद गुरुदेव स्मृतिरत्न वहाँ आ गए, लेकिन बड़े कुसमय आए। आसमान बादलों से घिरा हुआ था। बाहर मूसलधार बारिश हो रही थी और तेज हवा के झोंके चल रहे थे।

इधर लालू की माँ को तरह-तरह के पकवान बनाने, फल-फूल सजाने आदि काम के कारण जरा भी साँस लेने का मौका नहीं मिल रहा था। गुरुदेव के लिए पलंग पर बिस्तर बिछाकर मसहरी लगा दी गई। थके-माँदे गुरुदेव भोजन करने के बाद पलंग पर जाकर सो गए। इसके बाद नौकरों-चाकरों को छुट्टी दे दी गई। मुलायम बिस्तर पर आराम पाने के कारण गुरुदेव ने मन-ही-मन नंदरानी को आशीर्वाद दिया।

आधी रात को अचानक उनकी नींद खुल गई। छत से पानी मसहरी को तर करता हुआ उनकी तोंद पर गिर रहा था। अरे बाप रे! कितना ठंडा पानी है, वे चौंककर उठ बैठे और तोंद पर गिरे पानी को पोंछ डाला। फिर बोल उठे, 'नंदरानी ने मकान को नया जरूर बनवाया है, लेकिन पछाड़ की कड़ी धूप के कारण छत फट गई है।'

निवाड़ वाला पलंग भारी नहीं था। मसहरी सहित उसे खींचकर गुरुदेव दूसरी ओर ले गए और फिर सो गए, लेकिन अभी आधा मिनट से अधिक नहीं हुआ होगा कि पुन: दो-चार बूँद आ गिरीं। फिर दूसरी ओर ले गए और फिर पहले की तरह पानी गिरा। अब तक बिस्तर काफी भीग चुका था। इतना भीग गया था कि बिस्तर सोने लायक नहीं रह गया। गुरुदेव अब सोचने लगे कि क्या किया जाए? बूढ़े आदमी थे। अनजान जगह में दरवाजा खोलकर बाहर जाने से डर लगता ही है और फिर भीतर रहना भी खतरे से खाली नहीं था। जब छत इस बुरी तरह फट गई है, पता नहीं कब सिर पर गिर पड़े। डरते-डरते वे बाहर निकल आए।

बाहर बरामदे में एक लालटेन जल रही थी। कहीं भी कोई दिखाई नहीं दे रहा था। चारों तरफ अंधकार ही अंधकार था। पानी जोर से बरस रहा था और वैसे ही तेज हवा चल रही थी। कैसे कोई वहाँ खड़ा रहे! घर के नौकर-चाकर भी कहीं नहीं दिखाई दे रहे थे। पता नहीं, वे सब किस कमरे में सोते हैं? स्मृतिरत्न को इसका ज्ञान नहीं था। दो-तीन बार उन्होंने आवाज भी दी; लेकिन प्रत्युत्तर में किसी ओर से कोई जवाब नहीं आया।

एक ओर एक बेंच पड़ी थी। इस बेंच पर लालू के पिता के गरीब मुवक्किल बैठते हैं। लाचारी में गुरुदेव उसी पर बैठ गए। मन-ही-मन में उन्होंने यह महसूस किया कि इससे उनकी मर्यादा पर ठेस पहुँची है, लेकिन इस समय इसके अलावा और कोई चारा भी नहीं था। हवा में ठंडक रहने के कारण सर्दी भी लग रही थी। गुरुदेव ने धोती का एक हिस्सा खोलकर सिर पर डाल लिया और दोनों पैर आपस में सटाकर, उकड़ूँ बैठकर यथासाध्य आराम पाने की कोशिश करने लगे। मन बड़ा दु:खी हो गया। उधर नींद के कारण आँखें झँपी जा रही थीं। गरिष्ठ भोजन करने के कारण कई बार खट्टी डकारें भी आईं। इसी तरह नाना प्रकार की चिंताएँ उन्हें सताने लगीं।

ठीक इसी समय एक नया उपद्रव प्रारंभ हुआ। पछाँह के बड़े-बड़े मच्छर कानों के पास गुनगुनाने लगे। ढपती हुई आँखों को उधर ध्यान ही

नहीं देना चाहिए, परंतु मन शंकित हो उठा। पता नहीं, इनकी संख्या कितनी है! दो मिनट बाद ही गुरुदेव को मालूम हो गया कि इनकी संख्या अनगिनत है। इस सेना की उपेक्षा करनेवाला संसार में कोई बहादुर नहीं था। इनके काटने से जैसी जलन होती थी, वैसी ही खुजलाहट। स्मृतिरत्न ने तुरंत उस स्थान को छोड़ने में ही कल्याण समझा। वे वहाँ से कुछ दूर हट गए, मगर मच्छरों ने उनका पीछा नहीं छोड़ा। कमरे के अंदर पानी ने जैसा हाल कर रखा था, उसी प्रकार बाहर मच्छरों का दल भी परेशान कर रहा था। बराबर मच्छरों को भगाने के लिए अँगोछा फटकारते रहने पर भी उनके आक्रमण को रोका नहीं जा सका। थोड़ी देर बाद वे इधर-उधर दौड़ने लगे। इस सर्दी में भी वे पसीने से लथपथ हो गए।

एक बार उनके जी में आया कि जोरों से चीख उठें, परंतु ऐसा करना बचपना होगा, समझकर चुप लगा गए। कल्पना में उन्होंने देखा कि नंदरानी मुलायम बिस्तर पर मच्छरदानी लगाकर आराम से सो रही है। घर के सभी लोग भी अपनी-अपनी जगह पर सोए हुए हैं, लेकिन उनकी दौड़-धूप में जान फँसी हुई है। तभी किसी घड़ी ने टन-टन कर चार बजने की सूचना दी। वह परेशान होकर बोले, 'काटो कमबख्तो, खूब काटो! अब मैं तुम्हें भगाने से रहा।'

इतना कहने के बाद भी वे अपनी पीठ मच्छरों के हमले से बचाने के लिए दीवार से सटाकर बैठ गए, फिर बोले, 'अगर सवेरे तक जीवित रहा तो इस अभागे देश में फिर कभी नहीं रहने का! पहली गाड़ी से घर चल दूँगा। क्यों यहाँ आने का मन नहीं करता था, अब समझ गया।' यही सब सोचते-सोचते उन्हें नींद आ गई और रात भर की थकान के कारण वे बड़े बेखबर सो गए।

इधर नंदरानी काफी सुबह उठ गईं, क्योंकि गुरुदेव की सेवा में काम करना था। रात में गुरुदेव ने केवल जलपान मात्रा किया था। यद्यपि यह जलपान तगड़ा था, लेकिन नंदरानी मन-ही-मन सोचती रही कि अपनी पसंद की चीज वह नहीं थी। आज उस घाटे को पूरा करने की इच्छा उनके मन में हुई।

नीचे उतरने पर उन्होंने देखा, गुरुदेवजी के कमरे का दरवाजा खुला हुआ है। गुरुदेव मेरे पहले ही उठ गए, जानकर वे बेहद लज्जित हुईं। कमरे के भीतर झाँककर देखा तो वे नदारद थे। यह क्या हुआ? दक्षिण की चारपाई उत्तर की ओर कैसे चली आई। उनका झोला खिड़की के पास बाहर पहुँच गया था। पूजा के सामान और आसन आदि दूर बिखरे पड़े थे। बात कुछ समझ में नहीं आ रही थी। बाहर आकर वे नौकरों को बुलाने लगीं। नौकरों में कोई भी तब तक नहीं जागा था। उन्होंने सोचा, जब यह हालत है तो गुरुजी कहाँ गए?

अचानक नंदरानी की नजर एक ओर उठी-अरे यह क्या है? एक कोने में अँधेरे में आदमी की तरह न जाने कौन बैठा है। हिम्मत करके वे आगे बढ़ आईं तो देखा, अरे ये तो गुरुदेव हैं।

आशंका से चिल्ला उठीं, 'गुरुजी।'

नींद टूटने पर स्मृतिरत्न ने आँखें खोलकर देखा, फिर धीरे-धीरे सीधे बैठ गए!

नंदरानी चिंता और भय के कारण अवरुद्ध कंठ से पूछ बैठीं, 'गुरुजी, आप यहाँ क्यों बैठे हैं?'

स्मृतिरत्न उठ खड़े हुए और बोले, 'बेटी! रात भर मेरे दु:खों की सीमा ही नहीं रही।'

'क्यों गुरुदेव?'

'तुमने नया मकान बनवाया तो जरूर है, मगर बेटी, ऊपर की सारी छत चटक गई है। रात भर पानी की बूँदें टप-टप मेरे ऊपर गिरती रहीं। कहीं छत न गिर जाए इसलिए डरकर बाहर भाग आया, लेकिन यहाँ भी बचाव नहीं कर सका। टिड्डियों की तरह मच्छरों ने मेरा आधा खून पी लिया।'

बहुत दिनों से मनाने और आराधना करने पर गुरुजी यहाँ आए थे और यहाँ उनकी हालत देखकर नंदरानी की आँखें गीली हो गईं, बोलीं, 'मगर गुरुदेव! यह मकान तो तिमंजिला है। बरसात का पानी तीन-तीन छतों को पार करके कैसे गिर सकता है?'

कहते-कहते अचानक नंदरानी रुक गईं। उन्हें यह समझते देर न लगी कि कहीं इस कांड के पीछे लालू का हाथ न हो। वे दौड़ी हुई कमरे के अंदर आईं तो देखा- बिस्तर काफी भीगा हुआ है और मसहरी के ऊपर एक बरफ का टुकड़ा कपड़े में बँधा पाया, अभी तक वह पूरा नहीं गल पाया था। पागलों की तरह दौड़कर वह बाहर आईं। नौकरों में जिसे सामने देखा, उसे चिल्लाकर कहने लगीं, 'पाजी ललुआ कहाँ गया? काम-काज जहन्नुम में जाए! वह शैतान जहाँ मिले उसे मारते-मारते पकड़ लाओ।'

लालू के पिता उस समय नीचे उतर रहे थे। पत्नी का चीखना-चिल्लाना देखकर वे हैरान रह गए। उन्होंने पूछा, 'आखिर हुआ क्या? यह क्या कह रही हो?'

नंदरानी ने रोते हुए कहा, 'या तो ललुआ को घर से निकाल दो, नहीं तो मैं आज गंगा में डूबकर अपने पापों का प्रायश्चित्त करूँगी।'

'मगर किया क्या है उसने?'

'बिना अपराध ही गुरुदेव की कैसी गति बना दी है उसने। आओ, आकर अपनी आँखों से उसकी करनी देख जाओ।'

सभी अंदर आ गए। नंदरानी ने सब दिखाया और सुनाया, फिर पति से बोली, 'अब तुम्हीं बताओ कि इस शैतान लड़के को लेकर कैसे इस घर में रह सकते हैं?'

गुरुदेव की समझ में सारी बात आ गई। अपनी बेवकूफी पर वे खिलखिलाकर हँस पड़े। लल्लू के पिता दूसरी ओर मुँह फेरकर खड़े हो गए।

एक नौकर ने आकर उन्हें बताया, 'लल्लू बाबू कोठी में नहीं हैं।'

दूसरे ने आकर बताया कि वह मौसी के यहाँ मिठाई खा रहे हैं। मौसी ने उन्हें आने नहीं दिया।

मौसी से मतलब है, नंदरानी की छोटी बहिन। उसके पति भी वकील थे। वे दूसरे मोहल्ले में रहते थे। इसके बाद पंद्रह दिनों तक लालू ने इस मकान में पैर नहीं रखा।

कहानी

बुड्ढा सोता बहुत है···

● नरेंद्र कोहली

मेरी आँखें खुल गईं। नींद टूट गई थी या पूरी हो गई थी। शायद पूरी हो गई थी। तंद्रा का भी कोई लक्षण नहीं था। तो फिर बिस्तर छोड़कर उठ जाना चाहिए। नींद पूरी हो जाने पर भी बिस्तर पर लोट लगाना मेरे स्वभाव में नहीं था।···

लेटे-लेटे ही खिड़की से झाँककर देखा—बाहर उजाले की कोई किरण नहीं थी। अँधेरा था पूरी तरह। अरे···समय क्या हुआ है? आकाश पर बादल हैं क्या जो इतना अँधेरा है। भोर न हो गई होती तो मेरी नींद क्यों टूटती। घड़ी देखी। अरे, अभी तो तीन ही बजे थे।···तो फिर नींद क्यों टूटी। और ऐसी टूटी कि उनींदापन भी नहीं रहा। अब तीन बजे हों या चार, जब नींद पूरी हो गई है, तो उठना ही पड़ेगा।···पर उठकर करूँगा क्या? जब घर ही नहीं, नगर भर सो रहा हो, तो क्या मैं बाहर पहरा देते चौकीदार के पास जाकर बैठूँगा। उसके साथ बीड़ी पीऊँगा।···नहीं, प्रातः इस प्रकार नींद का टूटना भी एक संकेत है। मुझे राम-नाम जपना चाहिए या ध्यान करना चाहिए।···

मैं पालथी मारकर सुखासन में बैठ गया। अपने श्वास पर ध्यान टिकाने का प्रयत्न किया किंतु ध्यान था कि सारी सृष्टि में घूम रहा था। संसार भर में कोरोना का रोना था। इसने ऐसा घर में बंद किया था कि अपने घर के फाटक तक भी जाना वर्जित था।···उस दिन दाँत में ऐसा दर्द उठा कि डॉक्टर के पास जाना पड़ा। मुँह और नाक पर मास्क लगाया। पैदल जा सकता था, किंतु गाड़ी में गया, ताकि किसी प्रकार का कोई संक्रमण न हो जाए। डॉक्टर के यहाँ चार रोगी थे। उनसे दूर-दूर रहा।···किंतु डॉक्टर के निकट तो जाना ही था।···घर लौटा तो पुत्र ने कहा, "नहाकर कपड़े बदल लीजिए।"

"वहाँ मैं किसी के निकट भी नहीं फटका।" मैंने कहा।

"ठीक है, किंतु जिस कुरसी पर आप बैठे थे, उसपर पहले जाने कौन बैठा था।" वह ठीक कह रहा था। उसकी बात माननी ही चाहिए थी।

जाने यह चीन भी कैसी मुसीबत है।···पुराणों में राक्षसों के उत्पन्न होने की कथाएँ हैं। यह भी तो किसी राक्षस से कम नहीं है। कभी कोरोना फैलाता है, कभी पड़ोस के देशों की भूमि पर अपना अधिकार जमाता है। अपने देश को फैलाता है। पुराने समय के साहूकारों के समान निर्धन देशों को बंधक रखकर उनको ऋण देता है। १९६२ में भारत पर भी आक्रमण किया था। जिस भूमि पर आधिपत्य जमाया था, वह कभी लौटाई ही नहीं। सत्य तो यह है कि भारत की किसी सरकार ने धरती वापस माँगी ही नहीं। नेहरू ने तो उसी समय अक्साई चिन के विषय में कह दिया था कि वहाँ घास का एक तिनका तक तो उगता नहीं है। अर्थात् उनकी उस भूमि को लौटा लेने की कोई इच्छा ही नहीं थी। यह नेहरू भी विचित्र व्यक्ति था। तिब्बत चीन को भेंट कर दिया। देश को तो दो भागों में बाँटा ही, अपनी सेना को आगे बढ़ने से रोककर, कश्मीर का इतना बड़ा भू-भाग भी सायास पाकिस्तान को दे दिया। गोवा, हैदराबाद, जूनागढ़ कश्मीर···इन सबके विषय में उसकी नीयत साफ नहीं थी। वह तो सरदार पटेल थे, नहीं तो···मैं अपने-आप में लौटा। मैं तो ध्यान करने बैठा था।···

उपन्यास, कहानी, व्यंग्य, नाटक, निबंध, आलोचना, संस्मरण इत्यादि गद्य की सभी प्रमुख एवं गौण विधाओं में इन्होंने अपनी विदग्धता का परिचय दिया है। उपन्यास श्रृंखला में 'महासमर', 'तोड़ो कारा तोड़ो' तथा रामकथा पर उपन्यास चर्चित। इन्होंने प्रायः सौ से भी अधिक उच्चकोटि के ग्रंथों का सृजन किया है। 'शलाका सम्मान' सहित अनेक सम्मानों से अलंकृत।

मुझे अपने बड़े भाई स्मरण हो आए। उनकी नींद टूट जाती थी तो वे भाभी को भी जगा देते थे।···मैं भी अपनी पत्नी को जगाऊँ क्या? कोई बात करने को तो हो जाएगा।···पर यदि उसने कल रातवाली बातें आरंभ कर दीं तो···उसे मेरे परिवार का इतिहास याद आने लगता है। कल कह रही थी कि मेरे पिता कैसे व्यक्ति थे, जो अपने पुत्र के विवाह पर एक पैसा भी खर्च करने को तैयार नहीं थे।···कोई ऐसा भी करता है क्या? उसे कितनी ही बार बता चुका हूँ कि मेरे पिता के पास न कोई जमा पूँजी थी और न ही उनकी कोई आय थी। पचास रुपए पैंशन थी उनकी, उसमें क्या होता? वे तो अपने पुत्रों पर निर्भर थे। हमारे यहाँ तो परंपरा यही है कि पुत्र अपने परिवारों को पालें और माता-पिता की भी देख-भाल करें।··· पता नहीं बहुओं को क्यों यह समझ में नहीं आता कि ऐसे ससुर भी हो सकते हैं, जिनके पास धन न हो। पिछली पीढ़ी में तो ऐसे अनेक परिवार थे। बेटे बड़े होते थे और माता-पिता का पालन-पोषण करते थे। पुत्र ही उनका वेतन होते थे, वे ही उनकी पैंशन होते थे, वे ही भविष्य निधि और वे ही उनका जीवन बीमा होते थे। ससुर नाम का जीव सदा धन्ना सेठ नहीं होता···छोड़ो, पत्नी को क्या जगाना।

जाने क्या बात है कि आँख खुलते ही कोरोना की याद हो आती है। एक ऐसा रोग, जो सारे संसार में महाकाल के समान उपस्थित है। दिखाई देता भी है और नहीं भी दिखाई देता। प्रत्येक व्यक्ति शत्रु सा लगता है। जाने वह कहाँ-कहाँ गया होगा, किस-किस से मिला होगा। कहाँ से कैसा संक्रमण ले आया होगा। सब लोग एक-दूसरे के लिए अछूत हो गए हैं।··· और फिर टिड्डी दल का आक्रमण हो रहा है। जाने कोई खेत बचेगा भी

या नहीं। फिर आग है, बाढ़ है, भूकंप है, दुर्घटनाएँ हैं।'''मैं काँपकर उठ खड़ा हुआ।'''ऐसे में तो मैं ध्यान नहीं कर सकता। कितनी बार समझाया है स्वयं को कि जिसने यह सारा संसार बनाया है, वह यदि उसे नष्ट भी करना चाहता है, तो उसे कोई कैसे रोक सकता है।'''संभव है, वह इसका पुनर्निर्माण करना चाहता हो। और वैसे भी मुझे अब और कितना जीना है। बहुत होगा तो दो-चार वर्ष।'''पर मैं इस परिवेश में मरना भी नहीं चाहता। लोग कोविड से संक्रमित व्यक्ति के पास नहीं फटकते। और यदि कोई उससे मर जाए तो श्मशानवाले उसका अंतिम संस्कार भी नहीं करने देते।'''कोई कोविड से न भी मरे, किंतु आजकल को किसी के मरने-जीने पर सांत्वना देने के लिए भी कोई पास नहीं फटकता। बहुत हुआ तो फोन पर 'सॉरी, सॉरी' कह दिया और मन में मान लिया कि वह तो मर ही गया है। हम क्यों मरने को जाएँ।

मैं अपने पुत्र के विषय में सोचता हूँ'''यदि मैं इन दिनों मर गया तो बेचारे को कितनी कठिनाई होगी। कोई सहायता के लिए भी नहीं आएगा। वह क्या-क्या करेगा। कहाँ ले जाएगा मुझे? हे प्रभु! जाना तो मुझे है ही। किंतु थोड़ी प्रतीक्षा कर लो। यह कोरोना-वोरोना समाप्त हो जाने दो, फिर खुले परिवेश में बुला लेना। कम-से-कम डॉक्टर, अस्पताल और श्मशान का काम तो ढंग से हो जाएगा।'''इन दिनों कितने समाचार आए हैं। कोई कोरोना से मरे या किसी और रोग से, हम तो कहीं किसी की सहायता करने नहीं गए। वैसे ही लोग करेंगे'''यह सब सोचने का क्या लाभ? इससे तो अच्छा है, नहा-धो लूँ। घर के मंदिर में चला जाऊँ। किसी भी काम में लग जाऊँगा तो यह कोरोना और मरना-जलाना तो भुला पाऊँगा। तब तक कुछ उजाला भी हो जाएगा। अभी पिछले महीने तक तो पाँच बजे, अच्छा खासा उजाला हो जाता था। यह अगस्त का महीना क्या आया, समय का ठीक पता ही नहीं चलता है। कभी सूर्य नहीं निकलता, कभी मेघ छाए होते हैं।

भादों मास है तो यह तो होना ही है। रक्षाबंधन भी हो गया, जन्माष्टमी भी, स्वतंत्रता दिवस भी। बाहर निकलना ही नहीं हुआ। ऐसा लगता है कि किसी ने बंदी कर रखा है। कोरोना के भय से घर के फाटक तक जाना भी वर्जित हो गया है।'''मैं अपने लिए तो डरता ही हूँ, अपने परिवार के लिए भी डरता हूँ। मैं नहीं चाहता कि मैं उनके लिए किसी संकट का कारण बनूँ। बड़ा पोता मनीपाल से आया था तो उसे घर में ही ऊपर के कमरे में चौदह दिनों का एकांतवास मिला। फिर बेचारे को ज्वर हो गया तो फिर चौदह दिन। ऐसे में यदि मैं कहीं से किसी प्रकार की कोई छूत ले आया तो? बेटा कहता है, जाने कौन-कौन कहाँ-कहाँ से आकर फाटक को छूता है। उसको छूने से भी संक्रमण का जोखिम है।'''मैं प्राय: ये सारी बातें मानता हूँ, किंतु प्रात: समाचार-पत्र उठाने से स्वयं को रोक नहीं पाता। उसके लिए तो बेटे ने भी मुझे रोकना छोड़ दिया है।'''मैं स्नानागार में घुस गया। दाँतों को ब्रश लगा तो सारा कोरोना भूल गया। दो दाढ़ें टूट गई थीं। दो नुकीली हो गई थीं। जीभ ऐसी घायल हो गई थी कि पेस्ट भी उसको लगकर जलन पैदा करती थी। ब्रश से बचने के लिए जिह्वा हिलती-डुलती थी तो नुकीले दाँतों से घायल हो जाती थी।'''बुढ़ापा भी कैसी बला है। न आँखें ठीक, न कान ठीक-ठीक सुनने के मूड में हैं। कुछ भी खाने बैठो तो जीभ जलने लगती है। शायद एक दाँत कुछ अधिक ही खराब हो गया है। तभी तो बायाँ जबड़ा दर्द कर रहा है। पेट भी ठीक नहीं रहता। नींद भी नहीं आती। कैसे आए।'''सारे शरीर में खुजली सी होती रहती है। कभी कहीं काँटा चुभने लगता है, कभी कहीं। या तो खुजलाते रहो या फिर उठकर क्रीम उठाओ। उसको मलो'''दस-पाँच मिनट खुजली न भी हो तो क्या नींद आ जाएगी?

अब शरीर पर जहाँ-जहाँ पानी डालता हूँ, वहाँ से खुजली तो मिट ही जाती है। नींद भी बाल्टी में डूबकर बेहोश हो जाती है।'''मुझे अपनी वृद्धा दादी स्मरण हो आईं। उन्हें पीठ पर बहुत खुजली होती थी। जब अपने हाथों से उन्हें आराम नहीं मिलता था तो वे हम बच्चों में से किसी को पुकार लेती थीं।'''मुझे अपनी बारी याद है। हथेलियाँ उन्हें आराम नहीं दे पाती थीं तो वे नाखूनों से खुजलाने को कहती थीं और जब नाखूनों से भी उनका कष्ट दूर नहीं होता था तो कटोरी को उल्टा कर रगड़ने को कहती थीं।''' मुझे लगता है कि कुछ दिनों में मैं भी वही सब करूँगा'''नहाकर निकला और ऊपर छत पर बने मंदिर में चला गया। सामने प्रतिमा भगवान् कृष्ण की थी और मेरा सारा ध्यान अगरबत्ती जलाने इत्यादि में था। माचिस की आधी तीलियाँ एक दिन में ही फुँक जाती थीं। गरमी भी लग रही थी और नींद भी आ रही थी। एक मन होता था कि सो ही जाऊँ और फिर सोचता था कि सोने के लिए तो मंदिर में नहीं आया था। पूजा का क्रम पूरा कर लूँ और नीचे चलूँ। नींद आएगी तो सो जाऊँगा। पता नहीं परिवार में और कोई जागा भी है या नहीं। आधा घंटा मंदिर में लगाकर नीचे उतरा तो लगा, बहुत भूख लग रही है। वैसे उसे रोका जा सकता था किंतु अपने मधुमेह के कारण भूखा रहना नहीं चाहता था। क्या पता, कब रक्त में शर्करा की मात्रा कम हो जाए और मैं लुढ़क जाऊँ। रसोई में देखा, रसोइया आ गया था। उसे नाश्ते के लिए कह दिया।

बिस्तर पर आकर बैठा तो लगा कि अब नींद आ रही है। जब सोने का समय था, तब नींद आई नहीं और अब जबकि घर में हर प्रकार की गतिविधि आरंभ हो गई हैं, अब नींद आ रही है मुझे। कौन सोने देगा।''' रसोइया आ गया है। दूधवाला आता होगा। फिर सफाईवाली आकर घंटी बजाएगी। उधर से कूड़े की गाड़ी आ जाएगी। ड्राइवर का भी लगभग वही समय है। बेटे को कॉलेज जाना होगा। बच्चों को अपने स्कूल।'''घर में हड़बोंग मच जाएगा। सो कैसे सकता हूँ।'''रसोइया आकर नाश्ता दे गया। मैंने स्वयं को सोने से रोक रखा था। समाचार-पत्र ने थोड़ी सहायता की थी। आज मैंने हाफ फ्राई अंडा माँगा था। बिस्तर पर बैठे-बैठे ही गोद में प्लेट रखकर नाश्ता कर लिया। दो टोस्ट और अंडा। उतनी देर में कॉफी आ गई। कॉफी के गरम प्याले ने मुझे जगाए रखा। प्याला खाली कर आगे की ओर खिसका दिया और मन हुआ कि लेट जाऊँ।'''पता ही नहीं चला कि बैठा-बैठा कब खिसककर लेट गया और आँख लग गई।

सुबह की ऐसी मीठी नींद और सफाईवाली राम-राम कहने आ गई। नींद उचट गई।'''वह कमरे से बाहर निकली तो रसोइए का स्वर सुनाई दिया, "जगा दिया?"

"हाँ, मैं कोई डरती हूँ। यह बुड्ढा सोता बहुत है।" सफाईवाली ने कहा और आगे बढ़ गई। साअ

१७५ वैशाली, पीतमपुरा
दिल्ली-११००३४
narendra.kohli@yahoo.com

प्रेमचंद-साहित्य में माँ का स्वरूप

• कमल किशोर गोयनका

भारतीय संस्कृति में मानवीय संबंधों में माँ की सत्ता और महत्ता को सर्वश्रेष्ठ माना गया। माँ सृष्टि का आधार है और वह सबसे अधिक पवित्र एवं श्रद्धास्पद है। आधुनिक युग में उन्नीसवीं शताब्दी में नारी जागृति का नया युग शुरू हुआ तथा अनेक युग-पुरुषों ने परंपरा से पीड़ित नारी की मुक्ति का आंदोलन आंरभ किया। इसमें स्वामी दयानंद तथा स्वामी विवेकानंद ने बड़ा योगदान किया। स्वामी विवेकानंद ने अपने व्याख्यानों में कहा कि हिंदू संस्कृति में मातृ पद संसार का सर्वश्रेष्ठ पद है, केवल भगवत् प्रेम ही माता के प्रेम से उच्च है। माँ का पद सभी स्त्री-प्रकारों से भी सबसे ऊँचा स्थान है। हिंदू संस्कृति में स्त्री-जीवन का महान् उद्देश्य ही माता का गौरव-पद प्राप्त करना है। माँ में प्रेम की उच्चता, निस्स्वार्थता, त्याग, सहिष्णुता, निर्मलता आदि उच्च भावों का संगम है। नारी की पूर्णता, नारीत्व की सार्थकता ही मातृत्व में है और उसके जीवन का आदर्श भी, आरंभ और अंत में, माता बनने में ही है। विवेकानंद कहते हैं कि विश्व में माँ नाम से अधिक पवित्र और निर्मल दूसरा कोई नाम नहीं है, जिसके पास वासना कभी भटक नहीं सकती और यही भारत का आदर्श है।

('विवेकानंद रचनावली', खंड : १, पृष्ठ ३१२-१४, ३०९-१०; खंड : ३, पृष्ठ ४२, २०८ तथा खंड : १०, पृष्ठ २७६)

प्रेमचंद अपने युवा-काल में स्वामी विवेकानंद के विचारों के संपर्क में आए और उन्होंने स्वामी विवेकानंद पर उर्दू में एक लेख लिखा तथा एक व्याख्यान का उर्दू में अनुवाद किया। वह समय ही भारत के आत्म-ज्ञान एवं आत्म-साक्षातकार और भारत की प्राचीन उपलब्धियाँ तथा सांस्कृतिक मूल्यों के परिज्ञान का था। प्रेमचंद पर इस जागृति का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था, इस कारण उनके साहित्य में नारी चेतना की प्रबल धारा दिखाई देती है। उनके साहित्य में नारी के विविध रूप मिलते हैं—माँ, पत्नी, बहन, वधू, पुत्र, सास, ननद, भाभी, सौत, विधवा आदि। इनमें माँ सबसे आदर्श प्राणी है।

प्रेमचंद कई स्थानों पर स्वामी विवेकानंद के शब्दों में माँ का गुणगान करते हैं। वह 'मंदिर' ('चाँद', मई, १९२७) कहानी में लिखते हैं, "मातृ-प्रेम तुझे धन्य है। संसार में और जो कुछ है, मिथ्या है, निस्सार है। मातृ-प्रेम ही सत्य है, अक्षय है, अनश्वर है।" प्रेमचंद उसी प्रकार 'धिक्कार' ('चाँद', फरवरी, १९२५) कहानी में देशद्रोही पुत्र को दंडित करने वाली माँ की प्रशंसा में लेखक लिखता है, "वीर माता, तुम्हें धन्य है। ऐसी ही माताओं से देश का मुख उज्ज्वल होता है, जो देशहित के सामने मातृ-स्नेह की धूल बराबर भी परवा नहीं करतीं। उनके पुत्र देश के लिए होते हैं, देश पुत्र के लिए नहीं होता।" प्रेमचंद के साहित्य में माँ का यह देशभक्ति पूर्ण चरित्र 'रंगभूमि' की जाह्नवी में भी विद्यमान है। जाह्नवी गर्भवती होती है तो वह कामना करती है कि जाति-प्रेम से पूर्ण संतान ही उत्पन्न हो। वह सोफिया से कहती है, "एक नई अभिलाषा उत्पन्न हुई—मेरी कोख से भी कोई ऐसा पुत्र जन्म होता, जो अभिमन्यु, दुर्गादास और प्रताप की भाँति जाति का मस्तक ऊँचा करता। मैंने व्रत लिया कि पुत्र हुआ, तो उसे देश और जाति के हित के लिए समर्पित कर दूँगी।" उनके 'वरदान' उपन्यास की सुवामा तो देवी से यही वरदान माँगती है कि ऐसे पुत्र जन्म ले जो देश के लिए काम करे।

प्रेमचंद साहित्य में गर्भ में संतान के आने से लेकर प्रसव, पालन-पोषण तथा विभिन्न रूपात्मक संबंधों के अनेक दृश्य विद्यमान हैं। प्रेमचंद की रचनाओं में गर्भ-धारणा करने, प्रसव-पीड़ा तथा प्रथम संतान की आनंदानुभूति के कई दृश्य मिलते हैं। 'कर्मभूमि' की सुखदा के पहली संतान होने वाली है। उसका पति अमरकांत सुखदा को प्रसन्न रखने का

जाने-माने साहित्यकार। इकतालीस वर्षों से दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापन। अब तक प्रेमचंद पर बाईस तथा अन्य साहित्यकारों पर बीस पुस्तकें प्रकाशित। एक नवीनतम विषय 'गांधी की पत्रकारिता' पर एक पुस्तक। प्रेमचंद साहित्य के विशेषज्ञ के रूप में ख्यात। विभिन्न संस्थाओं, अकादमियों द्वारा सात पुरस्कार तथा मॉरीशस के एक पुरस्कार से सम्मानित। संप्रति केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा के उपाध्यक्ष।

प्रयत्न करता है। वह पत्नी को रामायण, महाभारत और गीता पढ़कर सुनाता है, थिएटर-सिनेमा दिखाता है और फूलों के गजरे लाता है। रेणुका अपनी बेटी के पहलौठी के प्रसव से चिंतित है और कहती है कि इसमें तो स्त्री का दूसरा जन्म होता है। सुखदा को शिशु की कल्पना से चित्त में एक गर्वमय उल्लास तो होता है, परंतु सशंकित भी रहती है कि न जाने क्या होगा। 'निर्मला' उपन्यास में निर्मला तथा 'गोदान' में झुनिया के प्रसव-काल के दृश्य हैं, किंतु उनकी परिस्थिति और सुखदा की परिस्थिति में अंतर है। प्रेमचंद कई स्थानों पर प्रथम शिशु के गर्भ में आने, माता तथा परिवार की कल्पनाएँ, गर्भिणी स्त्री की मनोदशा-आलस्य, तंद्रा, सरदर्द, भूख की कमी, दुर्बलता आदि सभी स्थितियों का दर्शन करते हैं। यदि परिस्थिति अनुकूल नहीं होती तो माता बनना बहुत कठिन और कष्टदायक है।

'खून सफेद' कहानी में देवकी का बेटा साधो पादरी के साथ चला जाता है और बड़ा होने पर वह गाँव आता है तो बिरादरी उसे ईसाई बन जाने पर जाति से बहिष्कार करती है, किंतु देवकी की ममता उमड़ आती है और वह कहती है, "मैं अपने लाल को घर में रखूँगी और कलेजे से लगाऊँगी। इतने दिनों मैंने उसे पाया है, अब उसे नहीं छोड़ सकती। चाहे बिरादरी छूट ही जाए।"

प्रेमचंद प्रसव-वेदना की मार्मिक चित्रण करते हैं। प्रसव-पीड़ा के समय सुखदा अपने पति अमर से कहती है, "अब नहीं बचूँगी। हाय! पेट में जैसे कोई बरछी चुभो रहा है। मेरा कहा-सुना माफ करना।" 'गोदान' में प्रेमचंद झुनिया की प्रसव-वेदना का चित्रण करते हुए लिखते हैं, "झुनिया ने दर्द से दाँत जमाकर 'सी' करते हुए कहा, "अब न बचूँगी दीदी! हाय! मैं तो भगवान् से माँगने न गई थी। एक को पाला-पोसा। उसे तुमने छीन लिया, तो फिर इसका कौन काम था? मैं मर जाऊँ माता, तो तुम बच्चे पर दया करना। उसे पाल-पोस देना। भगवान् तुम्हारा भला करेंगे।" प्रेमचंद जानते है कि प्रथम शिशु का आगमन माता के लिए सर्वथा आनंदमय होता है। प्रेमचंद की माता में शिशुजन्म के बाद मातृत्वजनित कोमलता आ जाती है और उसके मंगलमय कल्याण के लिए उत्सुक रहती हैं। 'निर्मल' उपन्यास में परिस्थितियों के प्रतिकूल होने पर भी निर्मल बालिका को हृदय से लगाकर सारी चिंताओं को भूल जाती है और शिशु के विकसित एवं हर्ष-प्रदीप्त नेत्रों को देखकर उसका हृदय प्रफुल्लित हो उठता है। माँ को बच्चों का बड़ा मोह होता है। वह अपनी संतान के लिए पति से भी कलह करती है, कभी घर छोड़ने को भी तैयार होती है, किंतु बच्चों का मोह उसे रोक लेता है। 'निर्मल' की कल्याणी पति से झगड़े के बाद घर छोड़ना चाहती है, किंतु बच्चों के देखकर सोचती है कि इन्हें किन पर छोड़कर जाऊँ, इन बच्चों को कौन पालेगा, ये किसके घर रहेंगे? कौन प्रात: काल इन्हें दूध और हलवा खिलाएगा, कौन इनकी नींद सोएगा, इनकी नींद जागेगा? बेचारे कौड़ी के तीन हो जाएँगे। नहीं प्यारो, मैं छोड़कर न जाऊँगी। तुम्हारे लिए सबकुछ सह लूँगी। निरादर-अपमान, जली-कटी, खोटी-खरी, घुड़की-झिड़की सब तुम्हारे लिए सहूँगी। 'गोदान' में धनिया गोबर के अनिष्ट की कल्पना से रौद्र रूप धारण कर लेती है। होरी अपने भाई का पक्ष लेने के लिए बेटे गोबर की झूठी कसम खाता है तो धनिया बेटे की रक्षा के लिए रौद्र रूप में कहती है, "अगर मेरे बेटे का बाल भी बाँका हुआ, तो घर में आग लगा दूँगी। सारी गृहस्थी में आग लगा दूँगी।" 'प्रेमाश्रम' उपन्यास में विद्या अपने पुत्र की रक्षा के लिए विष खा लेती है और सोचती है कि अपनी आँखों की पुतली और प्राणों के आधार पुत्र कैसे बचाऊँ। माँ चाहती है कि उसका पुत्र जहाँ भी रहे कुशल से रहे। 'गोदान' में गोबर जब पहली बार परदेश से लौटता है तो धनिया फूली नहीं समाती और उसे अपनी छाती से लगाती है, मानो अपने मातृत्व का पुरस्कार पा गई हो। प्रेमचंद लिखते हैं, "आज तो वह रानी है। इस फटेहाल में भी रानी है। कोई उसकी आँखें देखे, उसका मुख देखे, उसकी चाल देखे। रानी भी लजा जाएगी। धनिया के मन में कभी अमंगल की शंका न हुई थी। उसका मन कहता था गोबर कुशल से है और प्रसन्न है। आज उसे आँखों देखकर मानो उसके जीवन के धूल-धक्कड़ में गुम हुआ रत्न मिल गया है।"

प्रेमचंद की माँ में त्याग और समर्पण के उच्च गुण हैं। 'बेटों वाली विधवा' कहानी में बेटे छल-कपट से माँ से गहनों की पिटारी हथिया लेते हैं, किंतु माँ-बेटों की रक्षा के लिए गहने देने में, अपने इस त्याग में आनंद की अनुभूति करती है। प्रेमचंद कहानी में लिखते हैं, "उमानाथ और दयानाथ पिटारी ले चले, तो माता वात्सल्य-मरी आँखों से उनकी ओर देख रही थी और उसकी संपूर्ण आत्मा का आशीर्वाद जैसे उन्हें अपनी गोद में समेट लेने के लिए व्याकुल हो रहा था। आज कई महीने के बाद उसके मग्न मातृ-हृदय को अपना सर्वस्व अर्पण करके जैसे आनंद की विभूति मिली (पति की मृत्यु के बाद पुत्र और पुत्र-वधुओं ने उसे गृह-स्वामिनी के आसन से उतार दिया था)। उसकी स्वामिनी कल्पना इसी त्याग के लिए, इसी आत्मसमर्पण के लिए, जैसे कोई मार्ग ढूँढ़ती रहती थी। अधिकार या लोभ या ममता की वहाँ गंध तक न थी। त्याग ही उसका आनंद और त्याग ही उसका अधिकार है। आज अपना खोया हुआ अधिकार पाकर, अपनी सिरजी हुई प्रतिमा पर अपने प्राणों की भेंट करके वह निहाल हो गई।" माँ यदि पुत्र से अलग भी होती है, तब भी उसकी ममता नहीं जाती। 'कर्मभूमि' उपन्यास में मुन्नी अपने दो वर्षीय पुत्र को अपने कलंकित जीवन से दूर रखना चाहती है, किंतु उसे अपने मोह पर विश्वास नहीं है। 'खून सफेद' कहानी में देवकी का बेटा साधो पादरी के साथ चला जाता है और बड़ा होने पर वह गाँव आता है तो बिरादरी उसे ईसाई बन जाने पर जाति से बहिष्कार करती है, किंतु देवकी की ममता उमड़ आती है और वह कहती है, "मैं अपने लाल को घर में रखूँगी और कलेजे से लगाऊँगी। इतने दिनों मैंने उसे पाया है, अब उसे नहीं छोड़ सकती। चाहे बिरादरी छूट ही जाए।"

माँ के लिए पुत्र-वियोग असहय है। कुछ माँएँ पुत्र-वियोग में विसिप्त हो जाती हैं और कुछ वियोग में प्राण त्याग देती हैं। 'स्वर्ग की देवी' कहानी में लीला के दोनों बच्चों की हैजे से मृत्यु हो जाती है तो उसकी दशा सोचनीय हो जाती है। प्रेमचंद लिखते हैं, "संतान का दु:ख तो कुछ माता

ही को होता है।" प्रेमचंद आगे लिखते हैं कि बच्चे ही उसके प्राणों के आधार थे। जब वही न रहे, तो मरना और जीना बराबर है। 'गोदान' में झुनिया भी पुत्र-वियोग में अत्यंत शोक-मग्न है।

उसे अब लल्लू से ज्यादा उसकी स्मृति प्रिय है। अब लल्लू उसके मन में शांत, स्थिर, सुशील और साहसी बनकर बैठा है। उसकी कल्पना में अब वेदनामय आनंद था, जिसमें प्रत्यक्ष की काली छाया न थी। वह स्मृति उसके भीतर बैठी हुई जैसे उसे शक्ति प्रदान करती रही। जीते-जी उसके जीवन का मार था, मरकर उसके प्राणों में समा गया था। 'गोदान' में पुत्र की मृत्यु पर सिलिया की भी ऐसी ही दशा है। 'मंदिर' कहानी में तो विधवा चमासि सुखिया पुत्र-वियोग में प्राण त्याग देती है। 'डामुल का कैदी' कहानी में पुत्र की मृत्यु पर प्रमीला कहती है, "हाय मेरे लाल! मेरे लाड़ले! मेरे राजा, मेरे सूर्य, मेरे चंद्र, मेरे जीवन के आधार! मेरे सर्वस्व! तुझे खोकर कैसे चित्त को शांत रखूँ? जिसे गोद में देखकर मैंने अपने भाग्य को धन्य माना था, उसे आज धरती पर पड़ा देखकर हृदय कैसे सँभालू?" उसी रात शीकातुर माता संसार से प्रस्थान कर गई। इसके विपरीत 'धिक्कार' कहानी में देशद्रोही पुत्र की माँ स्वयं पुत्र की मौत के लिए मंदिर के द्वार पर पहला पत्थर स्वयं रखती है। 'रंगभूमि' में जाह्नवी ऐसा पुत्र चाहती है, जो देश-जाति के लिए समर्पित हो और जब वह अपने पुत्र विनय को उदयपुर में जनता पर अत्याचार करते देखती है तो वह उसकी जीवन-लीला ही समाप्त करना चाहती है। 'रंगभूमि' उपन्यास में जाह्नवी अपने पुत्र विनय के जनता-विरोधी कार्यों को देखकर ईश्वर से प्रार्थना करती है कि ऐसी संतान सातवें वैरी को भी न दे तथा बेटे की जीवन-लीला समाप्त हो। उसकी यह कठोर भावना बदलती है और वह बेटे के छोड़े कामों को हाथ में लेती है। 'कायाकल्प' में मनोरमा चक्रधर की माँ निर्मला से कहती है, "माताओं को चाहिए कि अपने पुत्रों को साहसी और वीर बनाएँ। एक तो यहाँ लोग यों ही डरपोक हैं, उस पर घर वालों का प्रेम उनकी रही-सही हिम्मत भी हर लेता है।" प्रेमचंद अपनी रचनाओं में मातृत्व के आत्मभिमान की सर्वत्र रक्षा करते हैं। शिवरानी देवी ने 'प्रेमचंद : घर में' पुस्तक में ऐसे दो प्रसंगों की चर्चा की है। प्रेमचंद के घर की महाराजिन का बेटा गायब हो जाने पर वह रो-रोकर भूखी-प्यासी उसका इंतजार करती है तो प्रेमचंद महाराजिन को ऐसे नालायक बेटे के लिए दु:खी होने के लिए मना करते हैं। प्रेमचंद कहते हैं कि जब ऐसे बेटें हों तो माँ का रो-रोकर मरना ठीक नहीं है। दूसरे प्रसंग में उनकी एक बूढ़ी नौकरानी के चार बेटे थे, लेकिन वे हर महीने उसकी तनख्वाह तो ले जाते थे, पर बूढ़ी माँ को कोई रोटी देने को तैयार न था। प्रेमचंद इस पर अपनी पत्नी से कहते हैं कि बचपन में ये माँ का दूध चूस-चूसकर पीते थे, अब जवान होने पर उसी का पैसा चूसने को तैयार हैं। अब उसमें और पशु में क्या फर्क है? प्रेमचंद चाहते हैं कि माँ का स्वाभिमान बना रहे और यदि पुत्र-पुत्री माँ की उपेक्षा और अपमान करते हैं और स्वार्थी हैं तो माँ में भी कठोरता आनी चाहिए। 'गोदान' में गोबर परदेश से लौटकर धनिया के मातृ-स्नेह को रुपए से तौलता है तो धनिया का हृदय चूर-चूर हो जाता है तो वह बेटे से कहती है, "माँ-बाप का मन इतना निठुर नहीं होता; हो लड़के अलबत्ता जहाँ चार पैसे कमाने लगे कि माँ-बाप से आँखें फेर लीं।" 'बेटों वाली विधवा' कहानी में तो फूलमती की ममता पुत्रों के स्वार्थ के कारण मस्तीभूत हो जाती है और एक दिन जल-समाधि ले लेती है।

प्रेमचंद-साहित्य में ऐसी कई स्त्रियाँ मिलती हैं जो दूसरे बच्चों को मातृवत् प्रेम करती हैं। 'वरदान' उपन्यास में सुवामा अपने किरायेदार की पुत्री बिरजन को अपनी पुत्री जैसा स्नेह देती है। 'प्रेमाश्रम' उपन्यास में श्रद्धा के कोई संतान नहीं है, किंतु वह अपने देवर के पुत्र मायाशंकर को, जो मातृहीन है, पुत्रवत् प्रेम करती है। उसे श्रद्धा के रूप में माँ मिल जाती है। 'कायाकल्प' उपन्यास में नागेश्वरी, लौंगी तथा मनोरमा ऐसी तीन माताएँ हैं, जो पराए बालक और बालिकाओं को माँ जैसा प्रेम देती है। ये स्त्रियाँ वास्तविक माँ से भी अधिक ममता को लुटाती हैं और प्रशंसा पाती हैं।

प्रेमचंद-साहित्य में ऐसी कई स्त्रियाँ मिलती हैं जो दूसरे बच्चों को मातृवत् प्रेम करती हैं। 'वरदान' उपन्यास में सुवामा अपने किरायेदार की पुत्री बिरजन को अपनी पुत्री जैसा स्नेह देती है। 'प्रेमाश्रम' उपन्यास में श्रद्धा के कोई संतान नहीं है, किंतु वह अपने देवर के पुत्र मायाशंकर को, जो मातृहीन है, पुत्रवत् प्रेम करती है। उसे श्रद्धा के रूप में माँ मिल जाती है। 'कायाकल्प' उपन्यास में नागेश्वरी, लौंगी तथा मनोरमा ऐसी तीन माताएँ हैं, जो पराए बालक और बालिकाओं को माँ जैसा प्रेम देती है। ये स्त्रियाँ वास्तविक माँ से भी अधिक ममता को लुटाती हैं और प्रशंसा पाती हैं। 'गबन' उपन्यास में देवीदीन और जग्गो भागकर कलकत्ता आए रमानाथ को पुत्र की भाँति रखते हैं और वे ऐसे ही चिंतित रहते हैं, जैसे माँ-बाप। 'महातीर्थ' कहानी में बुढ़िया कैलासी मालकिन के बेटे रुद्रमणी को पुत्र जैसा प्रेम करती है और वह उसकी जीवन-रक्षा करके 'महातीर्थ' का पुण्य प्राप्त करती है। 'गोदान' में मालती झुनिया के चेचकग्रस्त पुत्र मंगल की माँ से अधिक सेवा करती है। डॉ. मेहता मालती के इस प्रेम के बारे में कहते हैं, "मालती केवल रमणी ही नहीं है, माता भी है और ऐसी-वैसी माता नहीं, सच्चे अर्थों में देवी और माता और जीवन देने वाली, जो पराए बालक को भी अपना समझ सकती है, जैसे उसने मातापन का सदैव संचय किया हो और आज दोनों हाथों से उसे लुटा रही हो। उसके अंग-अंग से मातापन फूटा पड़ता था, मानो यही उसका यथार्थ रूप हो।"

प्रेमचंद पितृहीन और मातृहीन बच्चों के जीवन की भी झलक अपनी रचनाओं में अंकित करते हैं। पिता के अभाव से बड़ा अभाव है माँ का। पिता के अभाव में मातृ-स्नेह को प्राप्त करने वाले का विकास प्राय: अवरुद्ध नहीं होता। 'वरदान' में सुवामा पिता के अभाव में पुत्र प्रताप को देश का शुभचिंतक और अनाथों का रक्षक बनाती है। 'घरजमाई' कहानी में प्रेमचंद लिखते हैं कि बच्चों के लिए बाप एक फालतू सी चीज—एक विलास की वस्तु है, जैसे घोड़े के लिए चने या बाबुओं के लिए मोहन-भोग। माँ रोटी-दाल। मोहन-भोग उम्र भर न मिले, तो किसका नुकसान है; मगर एक दिन रोटी-दाल के दर्शन न हों, तो फिर देखिए, क्या हाल होता है।

पिता के दर्शन कभी-कभी शाम-सबेरे होते हैं···पर माँ तो बच्चे का सर्वस्व है। बालक एक मिनट के लिए भी उसका वियोग नहीं सह सकता।" इसके विपरीत माँ की मौत बच्चे को अनाथ बना देती है। 'गृहदाह' कहानी में सत्यप्रकाश की माँ की मृत्यु पर प्रेमचंद लिखते हैं, "मातृहीन बालक संसार का सबसे करुणा जनक प्राणी है। दीन-से-दीन प्राणियों को भी ईश्वर का आधार होता है, जो उसके हृदय को सँभालता रहता है। मातृहीन बालक इस आधार से वंचित होता है। माता ही उसके जीवन का एकमात्र आधार होती है। माता के बिना वह पंखहीन पक्षी है।" प्रेमचंद की माँ आठ वर्ष का छोड़कर स्वर्ग सिधार गई थीं और वे माँ के प्रेम के लिए तरसते रहे। प्रेमचंद ने अपनी पत्नी शिवरानी देवी से कहा था, "मैया दूध में शक्कर डालकर मुझे खूब खिलाते थे, पर माँ का वह प्यार कहाँ? मैं एकांत में बैठकर खूब रोता था।" उनके 'निर्मला' उपन्यास में माता और विमाता के प्रेम और वात्सल्य के अंतर को भी स्पष्ट किया गया है। निर्मला पति के तीन पुत्रों की विमाता है और वह सियाराम के पति से पिटने के बाद उसे छुड़ाती है और चुमकार कर चुप कराती है, किंतु सियाराम को उसमें वात्सल्य नहीं दया मालूम होती है। प्रेमचंद लिखते हैं, "मातृप्रेम में कठोरता होती थी, लेकिन मृदुलता से मिली हुई। उस प्रेम में करुणा थी, पर वह कठोरता नहीं थी, जो आत्मीयता का गुप्त संदेश है।" इस कारण से मातृहीन बच्चे का विमाता के संरक्षण में समुचित विकास नहीं हो पाता और पौधा टेढ़ा-मेढ़ा, सूखा ही रह जाता है। 'गृहदाह' कहानी में प्रेमचंद ने माता और विमाता के पुत्रों के विकास और उनके भिन्न-भिन्न स्वरूप का जो नक्शा खींचा है, वह दर्शनीय है। प्रेमचंद लिखते हैं, "दोनों लड़कों में कितना अंतर था! एक साफ-सुथरा, सुंदर कपड़े पहने शील और विनय का पुतला, सच बोलने वाला। देखने वालों के मुँह से अनायास ही दुआ निकल जाती थी। दूसरा (विमाता के पुत्र) मैला, नटखट, चोरों की तरह मुँह छिपाए हुए, मुँहफट, बात-बात पर गालियाँ बकने वाला। एक हरा-भरा पौधा था, प्रेम से प्लावित, स्नेह से सिंचित; दूसरा सूखा हुआ, टेढ़ा, पल्लवहीन, नववृक्ष था, जिसकी जड़ों को मुद्दत से पानी नहीं नसीब हुआ।" 'कर्मभूमि' उपन्यास में अमरकांत ऐसा ही नायक है, जिसे माँ का स्नेह नहीं मिलता, लेकिन जब उसे सास का स्नेह मिलता है तो वह समझता है कि माता ही स्वर्ग से लौट आई है। प्रेमचंद उपन्यास में लिखा है, "अमरकांत के जीवन में माता के स्नेह का सुख न जाना था। जब उसकी माता का अवसान हुआ, तब वह बहुत छोटा था। उसे दूर अतीत की कुछ धुँधली सी और इसलिए अत्यंत मनोहर और सुखद स्मृतियाँ शेष थीं। उसका वेदनामय बाल-रुदन सुनकर जैसे उसकी माता ने रेणुका देवी के रूप में स्वर्ग से आकर उसे गोद में मुँह छिपाकर दैवी सुख लूटने लगा। इस मातृ-स्नेह से उसे तृप्ति ही न होती थी।" इसी प्रकार 'घरजमाई' कहानी में हरिधन अपनी सास से प्रेम पाकर सास के चरणों में सब कुछ अर्पित कर देता है और 'प्रेरणा' कहानी में मातृहीन मोहन अपने फुफरे भाई सूर्यप्रकाश से प्रेम पाकर बदल जाता है और जब सूर्यप्रकाश उसे छोड़कर कश्मीर-यात्रा पर जाता है तो उसकी मृत्यु हो जाती है।

इस प्रकार प्रेमचंद माँ के विभिन्न रूपों को प्रस्तुत करते हैं। स्त्री के गर्भ-धारणा से लेकर परिवार में माँ की स्थिति, पुत्रों द्वारा उपेक्षा, मातृहीन बच्चे, विमाता आदि रूपों से समाज में माँ की स्थिति का उद्घाटन होता है और जो आज भी समान रूप से हमारे समाज में विद्यमान हैं। प्रेमचंद माँ को जो गौरव देते हैं, वह सर्वत्र उसकी रक्षा करते हैं। जब बेटे माँ का अपमान करते हैं, अपने स्वार्थों को पूरा करते हैं और छल-कपट-झूठ का सहारा लेते हैं तो वे 'बेटों वाली विधवा' कहानी के समान माँ को नदी में डुबोकर उसका अंत कर देते हैं। प्रेमचंद ने ऐसी स्त्रियों का मान बढ़ाया है, जो दूसरों के बच्चों को मातृ-स्नेह देती है और पुत्रवत् प्रेम करती हैं। प्रेमचंद ऐसे मातृ-प्रेम को 'महातीर्थ' कहते हैं और मातृ-स्नेह एवं वात्सल्य को सर्वोच्च स्थान पर स्थापित करके गौरवान्वित करते हैं, अत: स्वामी विवेकानंद और प्रेमचंद एक ही मार्ग के पथिक बन जाते हैं।

ए-९८, अशोक विहार,
फेज प्रथम, दिल्ली-११००५२
दूरभाष : ९८११०५२४६९
kkgoyanka@gmail.com

कविता

मेरी बेटी

• भविष्य कुमार सिन्हा

उसकी पसंद की कौन सी नई ड्रेस खरीदी है,
न सिर्फ उसके लिए, उसके स्वामी के लिए
बल्कि उसके सास-ससुर और करीबी रिश्तेदारों,
पड़ोसियों व पड़ोसियों के बच्चों के लिए भी।
शहर की खास मिठाइयों के साथ
फिर भी लगता, कुछ ढंग से खिला-पिला नहीं पाए,
जितना सोचा था उतना भी कर नहीं पाए,
मेरी बेटी है, मेरे जिगर का टुकड़ा है,
फोन पर आज भी उससे रोज बात होती है
उसकी आवाज से मैं जान जाती हूँ उसका हाल,
वह खुश है या उदास किसी बात से
खुलकर बताती नहीं है मुझे, बहुत जिद्दी है,
दोनों तरफ का, बड़ी संजीदगी से रखती है खयाल।
लेकिन मैं भी माँ हूँ, पता लग जाता है मुझे
क्यों उसकी आवाज में भारीपन है,
क्यों काट दिया उसने फोन बीच में ही
कुछ पूछने से पहले?

बी-७०, शेखर अपार्टमेंट्स
मयूर विहार, फेस-१
दिल्ली-११००९१
दूरभाष : ९९१०४७०३९६

कोविड-१९ : सभ्यता का संकट और समाधान

• कैलाश सत्यार्थी

करुणा का वैश्वीकरण

करुणा हमारे भीतर की उन शक्तियों के विकास का कारण है, जो चेतना के साथ मिलकर समाज, सभ्यता, संस्कृति आदि का निर्माण करती है। चेतना का रास्ता बुद्धि और ज्ञान का रास्ता है, जबकि करुणा के विकास का मार्ग भावना, अनुभूति और आनंद का मार्ग है। यही मानवता के कल्याण का मार्ग भी है। लोगों के दिलों में करुणा का भाव पैदा कर हम कोविड-१९ से उपजे सभ्यता के संकट से पार पा सकते हैं। करुणा ही वह बीज है, जिससे मनुष्य में कृतज्ञता, सहिष्णुता और उत्तरदायित्व का भाव पैदा होता है। इन चारों का बोध ही हमें सभ्यता के संकट से उबार सकता है। इसीलिए मैं करुणा के वैश्वीकरण की बात करता हूँ।

हम करुणा का वैश्वीकरण (ग्लोबलाइजेशन ऑफ कंपैशन), कृतज्ञता आपूर्ति की श्रृंखला (सप्लाई चेन ऑफ ग्रैटिट्यूड), उत्तरदायित्वों का ताना-बाना (इंटरनेट ऑफ रिस्पॉन्सिबिलिटी) और सहिष्णुता का अल्गोरिद्म (अल्गोरिद्म ऑफ टॉलरेंस) अपनाकर कोविड-१९ के श्राप को मानव मूल्यों पर आधारित नई सभ्यता के निर्माण के वरदान में बदल सकते हैं।

हम आशा और अपेक्षा कर रहे थे कि इतिहास की सबसे बड़ी साझा त्रासदी से सबक लेकर पूरे विश्व समुदाय में साझेपन की सोच जन्म लेगी, लेकिन इस बात के संकेत अभी तक नजर नहीं आ रहे। असलियत तो यह है कि दुनिया में पहले से चली आ रही दरारें, भेदभाव, विषमताएँ और बिखराव उजागर होने के साथ-साथ और ज्यादा बढ़ रहे हैं। महामारी खत्म होने और कुछ वर्षों में आर्थिक संकट से उबर जाने के बाद भी दुनिया पहले की तरह नहीं रहेगी। मैं कई कारणों से इस त्रासदी को सिर्फ स्वास्थ्य और आर्थिक संकट न मानकर सभ्यता के संकट की तरह देख रहा हूँ।

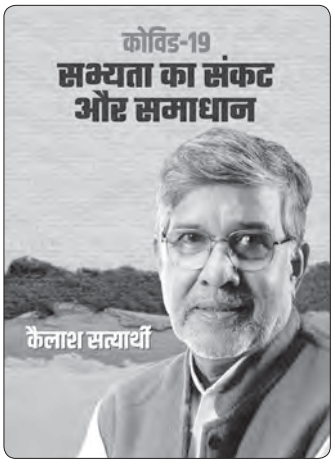

जीवन जीने के साझा तौर-तरीकों को सभ्यता कहा जा सकता है। हर बड़े युद्ध या महामारी के बाद लोगों की जिंदगियों में उथल-पुथल होती रही है, जो सभ्यताओं को भी प्रभावित करती है। अब अचानक पूरी मानव जाति पर जो अनजानी, अदृश्य आपदा टूट पड़ी है, उसका बहुत दूरगामी असर होने वाला है, क्योंकि कोरोना वायरस की वैश्विक महामारी से सभ्यता की बुनियादों से लगाकर उसको चलाने और दिशा देनेवाली शक्तियाँ कमजोर होती नजर आ रही हैं। चिंताजनक बात यह है कि इन चुनौतियों का समाधान मनुष्य की भावनात्मक बुद्धि के बजाय मशीन की कृत्रिम बुद्धि (आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस) और राजनीतिक नफा-नुकसान से ढूँढ़ा जाएगा। यदि समय रहते हमने उन बुनियादों की हिफाजत नहीं की तो मनुष्यों के रहन-सहन और खान-पान के तौर-तरीके ही नहीं, बल्कि मानवीय संबंधों के ताने-बाने, नैतिकता के मापदंड, राज्य-व्यवस्थाओं का चरित्र और वैश्विक राजनीति आदि सभी कुछ प्रभावित हुए बिना नहीं रहेंगे। मेरे विचार से ऐसी परिस्थितियों में मानव सभ्यता के पुनर्निर्माण की संभावनाएँ तलाशी जा सकती हैं।

जब समाज में अनिश्चितता और अस्पष्टता के बादल छा जाते हैं, तब नए विकल्पों और संभावनाओं का सूर्योदय होता है। आज वही स्थिति है। सामान्य तौर पर सत्ता प्रतिष्ठानों, व्यवस्था के ठेकेदारों, पारंपरिक सोचवाले बुद्धिजीवियों और अर्थशास्त्रियों द्वारा ढूँढ़े गए समाधान यथास्थितिवादी, सुधारवादी या प्रतिक्रियावादी होते हैं। मैं उनकी नीयत पर सवाल नहीं उठा रहा हूँ, लेकिन परिवर्तन के लिए नई सकारात्मक, व्यावहारिक और सृजनात्मक सोच रखनेवालों के लिए यही सबसे अच्छा मौका है, जिसमें मानवीय मूल्यों पर आधारित नई सभ्यता का निर्माण किया जा सके।

चौमुखी पहल

मेरे मन में एक चौमुखी समाधान की परिकल्पना आ रही है। ये समाधान हैं—करुणा (कंपैशन), कृतज्ञता (ग्रैटिट्यूड), उत्तरदायित्व

(रिस्पॉन्सिबिलिटी) और सहिष्णुता (टॉलरेंस)। ये चारों अलग-अलग होते हुए भी एक-दूसरे के पूरक हैं। इन्हें एक चक्र में पिरोकर व्यवहार में लाने से कोविड-१९ महामारी के दौरान और बाद में मानव सभ्यता तथा विकास में होनेवाले अपूरणीय नुकसान से बचा जा सकता है। यहाँ मैं कोई नई बात नहीं कह रहा हूँ। सभ्यताओं की जड़ों में ये चारों चीजें कहीं-न-कहीं पहले से मौजूद हैं। ये हजारों साल के अंतराल में धर्मों, संस्कृतियों, मनुष्य के स्वभाव या जरूरतों से पैदा हुई हैं।

करुणा का वैश्वीकरण

मैं कई वर्षों से यह कहता रहा हूँ कि जब तक हम दूसरों के दु:ख और परेशानियों को अपने दु:ख की तरह महसूस करके उनको दूर करने के उपाय नहीं करते, तब तक एक सभ्य समाज की रचना नहीं की जा सकती। यही करुणा है। करुणा का यह भाव हमारी राजनीति, आर्थिकी, धर्मतंत्र और सामाजिक जीवन की रीढ़ होना चाहिए। हम मनुष्यों से ही नहीं, बल्कि पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों, नदियों, समुद्रों, पहाड़ों और रेगिस्तानों के साथ करुणा के रिश्ते बनाकर सतत विकास (सस्टेनेबल डवलपमेंट) कर सकते हैं। करुणा को सार्वजनिक जीवन की प्राणवायु बनाना जरूरी है, इसीलिए मैं करुणा के वैश्वीकरण की वकालत करता रहा हूँ।

किसी पर रहम करना, सहानुभूति दिखाना, संवेदना प्रकट करना अथवा दूसरे के दु:ख में दु:खी हो जाना अच्छे मानवीय गुण हैं, परंतु करुणा नहीं। दूसरे के दु:ख को महसूस करना सहानुभूति होती है। किसी के दु:ख में खुद भी दु:खी हो जाना संवेदना है, जबकि किसी के भी दु:ख और कष्ट को अपने दु:ख की तरह महसूस करते हुए उसी प्रकार से उस दु:ख को दूर करने की कोशिश का भाव करुणा होता है। करुणा वह अकेला भाव है, जो अलगाव को खत्म करके खुद की तरह दूसरे से जोड़ता है और उसकी परेशानी का समाधान करने की प्रेरणा, साहस और ऊर्जा पैदा करके मनुष्य को क्रियाशील बनाता है।

हमारे शरीर के किसी अंग में किसी कीड़े के काटने या चोट लगने से जिस तरह हमारे मस्तिष्क सहित शरीर के सभी अंग खुद-ब-खुद सक्रिय हो जाते हैं, उसी तरह बिना प्रयत्न किए दूसरों का दु:ख दूर करने की शक्ति करुणा से आती है। श्रीकृष्ण ने 'गीता' में जिस निष्काम कर्मयोग की व्याख्या की है, मेरे विचार से वह करुणा से प्रेरित कार्य ही है। ईश्वर पर भरोसा करनेवाले लोग ऐसे किसी भी कार्य को ईश्वर की सबसे बड़ी पूजा या उपासना मान सकते हैं, जो निष्काम भाव, यानी फल की इच्छा किए बिना उसकी सृष्टि में किसी अन्य की पीड़ा दूर करने के लिए किया जाए।

दूसरों की तरह खुद के लिए करुणामय होना भी उतना ही जरूरी है, लेकिन यह काम ज्यादा मुश्किल है। अपने प्रति आसक्त, स्वार्थी और अहंकारी होना आसान है, लेकिन खुद को कष्ट देनेवाले भीतर बसे कारणों को महसूस करके उनका निराकरण करना बहुत कठिन है। कुछ न कर पाना या ठीक ढंग से न कर सकना, करने के बाद भी जैसा चाहा वह हासिल न कर पाना या गलत होने पर पछताते रहना रोजमर्रा के दु:ख होते हैं। अपनी असफलता या किसी दूसरे दु:ख के लिए खुद को दोषी ठहराना, स्वयं को अलग-थलग कर लेना और अपने आप में घुस जाना

दुनिया के सबसे प्रतिष्ठित 'नोबेल शांति पुरस्कार' से सम्मानित श्री कैलाश सत्यार्थी पहले ऐसे भारतीय हैं, जिनकी जन्मभूमि भारत है और कर्मभूमि भी। उन्होंने अपना नोबेल पुरस्कार राष्ट्र को समर्पित कर दिया है, जो अब राष्ट्रपति भवन के संग्रहालय में आम लोगों के दर्शन के लिए रखा है। श्री सत्यार्थी पहले ऐसे भारतीय हैं, जिन्हें 'नोबेल पुरस्कार' के साथ-साथ 'डिफेंडर्स ऑफ डेमोक्रेसी अवॉर्ड', 'मेडल ऑफ इटैलियन सीनेट', 'रॉबर्ट एफ. कैनेडी ह्यूमन राइट्स अवॉर्ड', 'हार्वर्ड ह्यूमैनिटेरियन अवॉर्ड' जैसे दुनिया के सम्मानित पुरस्कारों से अलंकृत किया जा चुका है।

मानसिक बीमारियाँ होती हैं। ये स्वयं के प्रति प्रेम के लक्षण नहीं, बल्कि दु:ख के ऐसे विषाणु होते हैं, जो मन की शांति के साथ-साथ पूरे व्यक्तित्व को मटियामेट कर देते हैं। पुरानी कहावत है कि हम जितना खुद के दु:ख से दु:खी नहीं होते, उतना दूसरों के सुख से दु:खी होते हैं। गुस्सा, बदले की भावना, निराशा, पछतावा, लालच जैसी भीतर बसी बीमारियाँ दु:ख का कारण बनती हैं। साथ ही सकारात्मक ऊर्जा को भी नष्ट करती रहती हैं, इसीलिए खुद के प्रति करुणा जगाना जरूरी है।

निजी जीवन में करुणा के आचरण के साथ-साथ उसे सार्वजनिक व्यवहार बनाना भी जरूरी है। भविष्य की सभ्यता के निर्माण में करुणामय राजनीति (कंपैशनेट पॉलिटिक्स), करुणामय अर्थव्यवस्था (कंपैशनेट इकोनॉमी) और करुणामय धार्मिक संस्थान कंपैशनेट रिलीजियस इंस्टीट्यूशन) बनाना जरूरी है। मतदाताओं, कार्यकताओं, सहयोगियों और अन्य नागरिकों के साथ करुणा का रिश्ता राजनीतिज्ञों को न केवल अच्छा इनसान बनाने में मदद करेगा, बल्कि राजनीति में पारदर्शिता, जवाबदेही, समानता और समावेशिता पैदा करेगा। इसी तरह व्यापार जगत् में उपभोक्ताओं, उत्पादकों, प्रबंधकों और मालिकों के बीच करुणा पर आधारित आपसी रिश्तों से विषमता, धोखाधड़ी और शोषण का दुष्चक्र टूट सकेगा। धार्मिक संस्थानों में करुणा का भाव जगाने से गुरुडम, पाखंड, पोंगापंथी, अंधभक्ति, लूट, भेदभाव और ऊँच-नीच जैसी बुराइयों का अंत हो सकेगा। साथ ही करुणा से भरे धर्मगुरु समाज में नैतिक कल्पना दृष्टि (मॉरल इमेजीनेशन) पैदा कर सकते हैं और बढ़ा सकते हैं।

इन प्रयासों से हम न केवल कोविड-१९ से उपजे सभ्यता के संकट से उबर पाएँगे, बल्कि इससे सबक लेकर मानव सभ्यता को और ज्यादा बेहतर तथा मजबूत बना सकते हैं।

कृतज्ञता की सप्लाई चेन

दूसरा है, व्यक्तिगत रिश्तों, औद्योगिक प्रबंध और शासन व्यवस्थाओं में कृतज्ञता की जीवन-शैली अपनाना। हमें यह भाव भी किसी से उधार लेने की जरूरत नहीं है। अपने भीतर थोड़ी सी ईमानदारी और विनम्रता उत्पन्न करने से वह अपने आप बाहर आ जाएगा। सामाजिक-आर्थिक संतुलन के लिए ही नहीं, बल्कि सुरक्षा, स्थायित्व और सतत विकास के लिए सभी के प्रति अपनी मानसिकता, व्यवहार और संबंधों में बुनियादी बदलाव कराना

होगा। जरा सोचिए कि जिन घरों में हम सुरक्षित बैठे हुए हैं, वे किसने बनाए? उनकी एक-एक ईंट-पत्थर, सीमेंट, रंग-रोगन, लोहा-लक्कड़ और बिजली-पानी जैसी सुविधाओं में आखिर किनका खून और पसीना लगा है? आप जो कपड़े पहने हुए हैं, उनको बनाने की लंबी प्रक्रिया में अलग-अलग स्तरों पर कितने लोगों की मेहनत लगी है? जिन चीजों का भी इस्तेमाल आप करते हैं, वे आपमें से ज्यादातर लोगों ने नहीं बनाईं। आपकी जिंदगी को चलाने के लिए जो भोजन आपकी प्लेट में सजा होता है, उसे यहाँ तक पहुँचाने में ऐसे अनगिनत लोगों की जिंदगियाँ खप रही हैं, जिन्हें आप जानते तक नहीं। उनमें सिर्फ पकानेवाले ही नहीं, खाने में इस्तेमाल होनेवाली हरेक चीज, जैसे अनाज, दूध, तेल, घी, चीनी, मसाले, अंडे, मांस, मछली और सब्जियाँ पैदा करनेवालों और ढोने तथा बेचनेवालों की लंबी श्रृंखला है। वे हिंदू, मुसलमान, ईसाई, ब्राह्मण, दलित, महिलाएँ, पुरुष, काले, गोरे आदि कोई भी हो सकते हैं। क्या हम कभी उनका कोई एहसान मानते हैं? उत्पादन, बिक्री और मुनाफे की श्रृंखला 'शोषण की श्रृंखला' होती है, जबकि उसे 'कृतज्ञता की श्रृंखला' होना चाहिए।

जिन प्रवासी मजदूरों के खून पसीने से शहरों की तरक्की नजर आ रही है, उनके प्रति सभी को कृतज्ञ होना चाहिए था। लेकिन, जिस तरह वे उपेक्षा, अपमान और निराशा के शिकार होकर शहरों से अपने गाँवों की तरफ लौट रहे थे, वह बहुत दर्दनाक था। इसकी चर्चा मैं पहले कर चुका हूँ। प्रवासी मजदूरों के शहरों से सैकड़ों मील पैदल चलकर भूखे-प्यासे अपने घर लौटते देखकर मैंने एक कविता लिखी थी—

बिन मौसम के पतझड़ आया
मेरे दरवाजे के बाहर घना पेड़ था,
फल मीठे थे
कई परिंदे उस पर गुजर-बसर करते थे
जाने किसकी नजर लगी
या जहरीली हो गई हवाएँ।

बिन मौसम के आया पतझड़ और अचानक
बंद खिड़कियाँ कर, मैं घर में दुबक गया था
बाहर देखा बदहवास से भाग रहे थे सारे पक्षी
कुछ बूढ़े थे तो कुछ उड़ना सीख रहे थे।

छोड़ घोंसला जाने का भी दर्द बहुत होता है
फिर वे तो कल के ही जनमे चूजे थे
जिनकी आँखें अभी बंद थीं, चोंचें खुली थीं
उनको चूम चिरैया कैसे भाग रही थी
उसका क्रंदन, उसकी चीखें, उसकी आहें
कौन सुनेगा कोलाहल में।

घर में लाइट देख परिंदों ने
शायद ये सोचा होगा
यहाँ जिंदगी रहती होगी,
इनसानों का डेरा होगा
कुछ ही क्षण में खिड़की के शीशों पर,
रोशनदानों तक पर
कई परिंदे आकर चोंचें मार रहे थे
मैंने उस माँ को भी देखा, फेर लिया मुँह
मुझको अपनी, अपने बच्चों की चिंता थी।

मेरे घर में कई कमरे हैं; उनमें एक पूजाघर भी है
भरा हुआ फ्रिज है, खाना है, पानी है
खिड़की-दरवाजों पर चिड़ियों की खटखट थी
भीतर टीवी पर म्यूजिक था, फिल्में थीं।

देर हो गई, कोयल-तोते,
गौरैया सब फुर्र हो गए
देर हो गई, रंग, गीत, सुर,
राग सभी कुछ फुर्र हो गए।

ठगा-ठगा सा देख रहा हूँ आसमान को
कहाँ गए वो जिनसे हमने सीखा उड़ना
कहाँ गया एहसास मुक्ति का, ऊँचाई का
और असीमित हो जाने का।

पेड़ देखकर सोच रहा हूँ
मैंने या मेरे पुरखों ने नहीं लगाया,
फिर किसने यह पेड़ उगाया?
बीज चोंच में लाया होगा उनमें से ही कोई
जिनने बोए बीज पहाड़ों की चोटी पर
दुर्गम-से-दुर्गम घाटी में, रेगिस्तानों, वीरानों में
जिनके कारण जंगल फैले, बादल बरसे
चलीं हवाएँ, महकी धरती।

धुँधला होकर शीशा भी अब
दर्पण सा लगता है
देख रहा हूँ उसमें अपने बौनेपन को
और पतन को।

भाग गए जो मुझे छोड़कर
कल लौटेंगे सभी परिंदे
मुझे यकीं है, इंतजार है
लौटेगी वह चिड़िया भी चूजों से मिलने
उसे मिलेंगे धींगामुश्ती करते वे सब मेरे घर में
सभी खिड़कियाँ, दरवाजे सब खुले मिलेंगे
आस-पास के घर-आँगन भी
बाँह पसारे खुले मिलेंगे।

मैं यहाँ कृतज्ञता के उस जरूरी मानवीय गुण पर जोर दे रहा हूँ, जो व्यक्ति और समाज को बेहतर बना सकता है। यदि हम ईमानदारी से यह

महसूस करने लगें कि हमारा वजूद केवल हमारे कारण नहीं हैं, बल्कि इसमें बहुत लोगों की प्रत्यक्ष या परोक्ष भागीदारी है तो हमारा पूरा व्यक्तित्व और चरित्र ही बदल सकता है। एक-दूसरे के प्रति सम्मान, परस्पर जिम्मेवारियों का एहसास, हर तरह के भेदभाव से छुटकारा, विनम्रता, नैतिक जवाबदेही और समानता जैसे गुण कृतज्ञता से उपजते हैं। कृपा करने में देनेवाले का हाथ ऊपर और लेनेवाले का नीचे बना रहता है, जिससे निजी अहंकार और सामाजिक ऊँच-नीच बढ़ती है। इसी से मिलता-जुलता भाव दया का है। दया के भाव से संतुष्टि और सुख मिलता है, लेकिन दाता होने का अहंकार पैदा नहीं होता। दयालुता, घमंड और क्रूरता को नष्ट करके विनम्रता पैदा करती है। इन दोनों से अलग कृतज्ञता की भावना है, जिसमें मदद या किसी के भी काम आनेवाला खुद को उपकृत मानता है। कृतज्ञ होने और ऋणी होने की भावनाएँ एक जैसी लगती हैं, इसलिए उनमें बड़ा फर्क है। कर्जदार के मन में कर्ज उतारने का दबाव रहता है, परंतु जरूरी नहीं कि कर्जदाता के लिए सम्मान का भाव हो। कृतज्ञता में दबाव नहीं, आत्मिक सुख और दूसरों के लिए सम्मान महसूस होता है। इससे सामाजिक समरसता और आपसी जिम्मेदारी भी बढ़ती है।

सहिष्णुता का अल्गोरिद्म

मैं सहिष्णुता के संबंध में अल्गोरिद्म की बात इसलिए कर रहा हूँ कि विविधताओं और भिन्नताओं से समझौते किए बिना उनको स्वीकार करते हुए उन्हीं से त्वरित और प्रभावी हल खोजे जा सकते हैं। इसे सहिष्णुता का अल्गोरिद्म भी कहा जा सकता है। हमें नहीं भूलना चाहिए कि असहिष्णुता, यानी विविधता और भिन्नता को सहन न करना, आपसी रंजिशों, हिंसा और मुद्दों से लगाकर सभ्यताओं के टकराव का बहुत बड़ा कारण होती है और परिणाम भी।

युद्धों, महामारियों या अन्य प्रकार की त्रासदियों के दौरान सहानुभूति और मानवीय संवेदनाओं में एक तरह का उफान आ जाता है। दान-पुण्य, राहत और दूसरों की मदद के कार्यों में बढ़ोतरी होती है, लेकिन उसके बाद में स्वार्थों के दायरे सिकुड़ने लगते हैं। अपनों-परायों का भेद फिर से नागरिकों और सत्ताधारियों को नस्लीय, जातीय, वर्गीय, राष्ट्रीय तथा सांस्कृतिक पहचानों और हितों की तरफ मोड़ देता है। यह प्रक्रिया असहिष्णुता को बढ़ाती है। पहले से ही विचारों, पूजा-पद्धतियों, खान-पान, कपड़ों और राजनीतिक प्रतिबद्धताओं की भिन्नताओं को सहन नहीं किया जाता, परंतु अब नए दौर में असहिष्णुता और अतिवादिता बढ़ने का और ज्यादा खतरा है।

जिम्मेदारी की तरह सहिष्णुता को भी अच्छे और बुरे अर्थों में प्रयोग में लाया जाता रहा है। सहमत हुए या समझौता किए बिना किसी अलग या विपरीत असलियत को स्वीकार करना सहिष्णुता का मानवीय गुण है, लेकिन अन्याय, अत्याचार और बुराई को चुप्पी साधकर सहते रहना सहिष्णुता नहीं, बल्कि कायरता होती है। मानव सभ्यताओं को ये दोनों ही प्रभावित करते हैं। संस्कृत भाषा में दो मिलते-जुलते शब्द हैं, 'समज' और 'समाज'। समज का मतलब है 'भीड़ या जानवरों का झुंड' और समाज का अर्थ है, 'सह-अस्तित्व में शांतिपूर्वक रह सकने वाला मानव समूह'। 'म' के साथ लगनेवाली आ की मात्रा में सारा रहस्य छुपा है। यहाँ इस 'आ' का अर्थ है 'विवेक'। जरूरी नहीं कि बुद्धिमान व्यक्ति विविधता और असहमतियों के बीच एक-दूसरे के साथ प्यार से रह सके, किंतु विवेकवान व्यक्ति ऐसा कर सकता है, क्योंकि वह असलियत को पसंद न करते हुए भी स्वीकार करता है।

मनुष्य की खंडित पहचानें सहिष्णुता में सबसे बड़ी बाधा हैं। सैकड़ों सालों में अलग-अलग मत-पंथों के अनुयायियों ने आस्था और पूजा-पद्धतियों के साथ-साथ अपनी ऐसी बाहरी पहचानें बना रखी हैं, जो एक-दूसरे को नहीं सुहातीं। उनमें पूजास्थल, पवित्र ग्रंथ, पुजारी, तीर्थ और शरीर पर सजाए गए चिह्न, जैसे पहनावा, चोटी, दाढ़ी, तिलक, जनेऊ, क्रॉस आदि शामिल हैं। ये पाँचों पहचानें बाहरी होते हुए भी पूरी मानवजाति को भीतर से बाँटे रखती हैं। पंथों के अनुयायी ईश्वर और मनुष्य के प्रति आस्था को भूलकर बाहरी पहचानों को ही धर्म मान बैठे हैं। यहाँ मैं स्पष्ट कर दूँ कि मैं बोलचाल की भाषा का इस्तेमाल करते हुए मत, मजहब पंथ और धर्म शब्दों का एक-दूसरे के लिए इस्तेमाल कर रहा हूँ; हालाँकि धर्म की परिभाषा बाकी शब्दों से अलग है। इनके अलावा दुनिया भर में राजनीतिक पार्टियाँ अपने फायदे के लिए वैचारिक असहिष्णुता को बढ़ावा देती हैं। आजकल मीडिया तो सबसे आगे है। खासकर सोशल मीडिया से बिना किसी खर्चे के पलक झपकने से पहले झूठ और नफरत फैलाई जाती है।

कोविड-१९ के श्राप को वरदान में बदलें

भारतीय पौराणिक कथाओं में सृष्टि के निर्माता ब्रह्मा के चार मुँह बताए गए हैं। ये चारों दिशाओं में साथ-साथ सृजन, संरक्षण, उन्नति और परिवर्तन के प्रतीक हैं। वर्तमान संकट से उबरने और भविष्य में सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों पर आधारित सभ्यता की रचना के लिए ऊपर लिखी गई चारों बातें उपयोगी हो सकती हैं, क्योंकि वे अपने आप में सार्वभौमिक मूल्यों का ही व्यवहारीकरण (एप्लीकेशंस ऑफ यूनिवर्सल वैल्यूज) है। हजारों साल पहले जीवन के परम सत्य का साक्षात्कार करनेवाले वेद के ऋषियों ने पूरे विश्व को एक परिवार मानकर 'सर्वे भवन्तु सुखिनः', यानी सभी के कल्याण की कामना की थी। केवल अपने लिए नहीं। उन्होंने हमको 'धियो यो नः प्रचोदयात्', यानी हम सब की बुद्धि को साथ-साथ प्रकाशित करने का मंत्र दिया था। हमारे ऋषियों ने हमें वेदों के द्वारा साथ-साथ चलने, साथ-साथ बोलने, साथ-साथ विचार करने और साथ मिलकर ज्ञान का सृजन करने का संकल्प कराया। यहाँ तक कि प्रकृति को माँ मानते हुए उससे जो कुछ भी प्राप्त किया जाए, उसे साथ मिलकर उपयोग करने का संदेश दिया था, इसलिए फिर दोहरा दूँ कि मैंने इस पुस्तक में जिन उपायों की चर्चा की है, वे सब भारत तथा दुनिया के दूसरे भागों के प्राचीन संतों और मनीषियों के संदेशों से ही उपजे हैं।

हम करुणा का वैश्वीकरण (ग्लोबलाइजेशन ऑफ कंपैशन), कृतज्ञता आपूर्ति की शृंखला (सप्लाई चेन ऑफ ग्रैटिट्यूड), उत्तरदायित्वों का ताना-बाना (इंटरनेट ऑफ रिस्पॉन्सिबिलिटी) और सहिष्णुता का अल्गोरिद्म (अल्गोरिद्म ऑफ टॉलरेंस) अपनाकर कोविड-१९ के श्राप को नई सभ्यता के निर्माण के वरदान में बदल सकते हैं।

साअ

('कोविड-१९ : सभ्यता का संकट और समाधान' पुस्तक से साभार)

और लहरा उठा तिरंगा!

● प्रकाश मनु

अजीब हैं परमेश्वर बाबू···एकदम अजीब। लगता है, आज की दुनिया के तो हैं ही नहीं। पता नहीं, कहाँ से आया है यह बंदा और करना क्या चाहता है, जिसके लिए रात-दिन मारा-मारी, रात-दिन भागमभाग··· ! हमेशा साँस फूली सी रहती है और बिस्तरबंद तैयार। आज यहाँ, कल वहाँ, परसों कहीं और। पूरे देश की हजारों बार परिकमा कर चुके, पर चैन नहीं। पूछो तो एक ही जवाब, "अभी तो किया ही क्या है मैंने ? मुझे बहुत काम करना है, बहुत काम। देश पुकार रहा है, भारत माता पुकार रही है··· !"

जाननेवाले बताते हैं, अभी कुछ बरस पहले तक इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर थे परमेश्वर बाबू। आराम का जीवन था, मजे में लिखते-पढ़ते थे।···पर दिल में एक उधेड़बुन सी थी कि इस देश को आजादी के लिए बहुत लोगों ने खुद को कुर्बान किया। कितने ही शहीदों का लहू बहा, पर हम तो ठीक से उनके नाम तक नहीं जानते। याद करना तो दूर की बात है। और उन शहीदों में से कुछ तो एकदम गुमनाम··· ! किसी-न-किसी को तो जगह-जगह घूमकर उनका पता लगाना चाहिए और फिर उन पर एक बड़ा सा ग्रंथ··· !

और फिर यह हलचल बढ़ी तो बढ़ती ही चली गई। मन एकदम बेकाबू। उन्होंने फौरन नौकरी से इस्तीफा दिया और काम में जुट गए।

घरवालों ने समझाया, दोस्तों ने भी, यह क्या परमेश्वरी बाबू··· ? भला यह कैसा पागलपन!···पर परमेश्वरी बाबू सोच चुके थे। मन-ही-मन काम की पूरी योजना भी बना ली थी। जगह-जगह घूमे। हर शहर, हर कसबे में गए। कुछ जगहों पर तो कई-कई बार।···और उनके हाथ लगा एक अनमोल खजाना, जो समय के साथ बढ़ता ही जाता था। इतनी जोशीली कहानियाँ थीं उसमें कि कभी-कभी परमेश्वरी सुनाने बैठते तो सुननेवालों की आँखों में आँसू उमड़ते और दिल में जोश की आँधी!

पूरे बीस बरस हो गए। परमेश्वरी बाबू की किताब अब काफी बड़ी हो गई है। वे सोच रहे थे, हाथ से लिखे पूरे डेढ़ हजार पन्ने हो गए। कम-से-कम चार-पाँच खंड तो बनाने ही होंगे। उन्होंने मन-ही-मन तय किया, जल्दी से एक बार आखिरी नजर डालकर पांडुलिपि प्रकाशक के हवाले की जाए, ताकि उनका यह जीवन-यज्ञ पूरा हो।

पर संयोग की बात। अगले ही दिन उनके बचपन के मित्र देवकांत घोषाल का पत्र आ गया। उन्होंने बड़ी कशिश के साथ लिखा था—

'मेरे प्यारे मित्र परमेश्वरी, बरसों से तुमसे मुलाकात नहीं हुई। पर यह मत समझो कि मुझे कुछ पता नहीं। तुम्हारे काम की बराबर खबर रहती है। तुमने यूनिवर्सिटी की प्रोफेसरशिप छोड़ दी, इसकी भी। तुम्हें सनकी कहनेवाले लोग बहुत हैं। कहें, पर अनगिनत चाहनेवाले भी तो हैं।···इस छोटे से शहर सुरजापुर में भी तुम्हारे प्रशंसक बहुत हैं और ऐसे दो शहीदों की कथा तुम्हारे हाथों कलमबंद होने की प्रतीक्षा कर रही है, जिनकी याद ही रुला देती है।···

'शायद तुम्हें पता नहीं, मेरे प्यारे दोस्त परमेश्वरी कि इस सुरजापुर की धरती पर ही तकली बाबू आकर रहे थे। उन्होंने पूरे सुरजापुर में अलख जगाया और फिर तहसील पर तिरंगा लहराते हुए शहीद हुए। और यहीं वह नन्हा शहीद हरींद्र जनमा था, जो भले ही आज नहीं है, पर उसकी यादों की पुकार हवाओं में उठती है तो मन विकल होता है।···वह तो देश पर अपनी जान कुर्बान करके वहाँ चला गया, जहाँ पुण्यात्मा जाते हैं, पर उसके बूढ़े दादाजी अभी हैं। गौरी दा। होंगे कोई पंचानबे बरस के।···

'तुम कभी आओ तो मिलकर उनके घर चलेंगे। शायद उनके मुँह से सुन सकें हम वह कहानी, जो वे हर किसी को नहीं सुनाते, पर सुनाते हैं तो उनका खुद पर काबू नहीं रहता। पूरा शरीर हवा में पत्ते की तरह काँपने लगता है!'

चिट्ठी में देवकांत ने घर का पता भी लिखा था, मकान नंबर ६५५, पीपलवाला चौक, बंगाली टोला, सुरजापुर।

□

देवकांत घोषाल मित्र की चिट्ठी का इंतजार कर रहे थे। चिट्ठी तो नहीं आई, पर तीसरे दिन सुबह-सुबह चार बजे दस्तक हुई। उन्होंने दरवाजा खोला तो चौंके, "अरे, परमेश्वरी तुम··· ?"

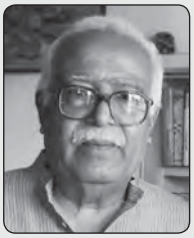

वरिष्ठ कवि-कथाकार। 'यह जो दिल्ली है', 'कथा सर्कस' और 'पापा के जाने के बाद' उपन्यास चर्चित हुए। 'एक और प्रार्थना', 'छूटता हुआ घर' कविता-संग्रह तथा 'अंकल को विश नहीं करोगे', 'अरुंधती उदास है' समेत ग्यारह कहानी-संग्रह। शिखर साहित्यकारों से मुलाकात, संस्मरणों और आलोचना की कई पुस्तकें। साहित्य अकादमी के पहले बाल-साहित्य पुरस्कार, उ.प्र. हिंदी संस्थान के 'बाल-साहित्य भारती' पुरस्कार तथा हिंदी अकादमी के 'साहित्यकार सम्मान' से सम्मानित।

परमेश्वर बाबू धधाकर मिले। बोले, "देबू, तुमने पहचान लिया? वाह, भई! मैं तो फिर भी बदल गया, पर तुम्हारा हुलिया तो बिल्कुल नहीं बदला!"

देवकांत बचपन के मित्र को आदर से अंदर लाए। खिड़की के पास सामान जमाया। फिर बैठने के लिए बेंत की कुरसी सरकाते हुए बोले, "आओ बैठो मित्र। इतने बरस कहाँ रहे, जरा सुनाओ हाल।···वैसे मैं तो शुरू से ही जानता हूँ तुम्हें। आगरा कॉलेज में साथ पढ़ते थे अपन, तब भी तुम कई-कई दिन के लिए गायब हो जाते थे। और फिर लौटते थे तो तुम्हारे पास सुनाने को इतनी सारी बातें होती थीं, इतनी बातें कि महीनों तक खत्म ही नहीं होती थीं।···याद है न?"

इस पर परमेश्वरी बाबू हँसने लगे। बोले, "यह तो एक ऐसा कीड़ा है मित्र, कि एक बार काट लेता है तो उसका असर जिंदगी भर नहीं जाता।···मेरी हालत भी कुछ ऐसी ही समझो!"

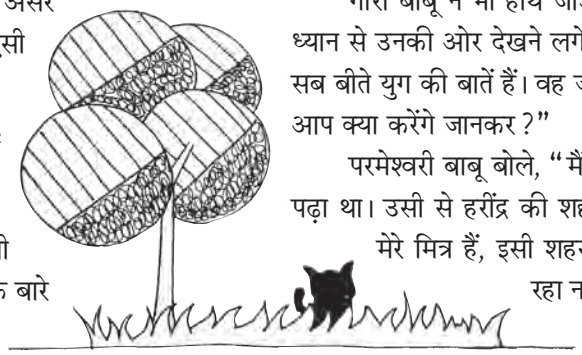

कुछ देर बाद उन्हें याद आया, "हाँ देबू, तुमने चिट्ठी में लिखा था कि इस शहर में एक ऐसा नन्हा शहीद हरींद्र था, जिसने अपनी जान देकर भी तिरंगा फहराया! और तकली बाबा की शहादत।···मैंने भी कहीं पढ़ा है उनके बारे में। पर ज्यादा नहीं जानता। तो क्या चलें हम लोग··· ?" कहते-कहते देवकांत के चेहरे पर नजरें गड़ा दीं परमेश्वरी बाबू ने।

"सच पूछो तो अंदर से हिम्मत नहीं होती, परमेश्वरी। लोग कहते हैं कि गौरी दा इन दिनों ज्यादा बात नहीं करते। पर तुम आए हो तो चलेंगे। जरूर चलेंगे। मैं खुद बहुत दिनों से सोच रहा था। शायद आज मिलना हो पाए गौरी दा से!"

देवकांत अपनी लहर में थे। बताने लगे, "एक बात बताऊँ परमेश्वरी, कभी इस शहर के सबसे धनी आदमी थे गौरी दा। कपड़े का बहुत बड़ा व्यापार था। खूब सारे नौकर-चाकर, पर काम ईमानदारी से करते थे। परिवार में देशभक्ति की भावनाएँ थीं।···एक बार तो गांधीजी भी आकर ठहरे थे उनके घर। वह चित्र बड़े आदर से उन्होंने अपनी बैठक में लगाया हुआ था। कई लोग कहते थे, अरे गौरी दा, बैठक में यह फोटो क्यों? कहीं अंग्रेज सरकार की नजर पड़ गई तो··· ? इस पर उनका जवाब होता था कि गांधीजी तो हर हिंदुस्तानी के दिल में हैं। सरकार किस-किस को पकड़ेगी?···तो मित्र, इन्हीं गौरी दा का बहादुर पोता था हरींद्र। आगे की बातें तुम उन्हीं से सुनना।···"

"तो फिर चलो, देबू। देर क्यों की जाए? चलते हैं अभी।" परमेश्वरी उठने को हुए।

"अरे, अभी तो आए हो, मित्र। नहा-धो लो। चाय पीकर फिर निकलेंगे।" देवकांत बोले।

□

थोड़ी देर बाद ही दोनों मित्र एक रिक्शे पर बैठे थे। रिक्शा पुराने शहर की ऊबड़-खाबड़, तंग गलियों से होकर गुजरने लगा। कोई आधे घंटे में वे बड़े चौक के सामने एक पीले रंग के मकान के सामने जा पहुँचे। मकान के गेट पर दोनों ओर काले पत्थर के दो विशालकाय हाथी।

"शहर में सब इसे हाथीवाली कोठी कहते हैं।" देवकांत ने बताया।

परमेश्वरी बाबू ने दस्तक दी तो एक अधेड़ उम्र के नौकर ने आकर दरवाजा खोला। पूछने पर देवकांत ने उसे बताया, "गौरी दा से कहो, इलाहाबाद से परमेश्वरी बाबू आए हैं मिलने। शहीद हरींद्र के बारे में कुछ जानना चाहते हैं!"

उसी नौकर ने उन्हें बैठक में ले जाकर बैठाया। कुछ देर में हाथ में छड़ी का सहारा लिये आहिस्ता-आहिस्ता चलते गौरी बाबू आए, तो परमेश्वरी और देवकांत ने हाथ जोड़कर नमस्कार किया।

गौरी बाबू ने भी हाथ जोड़े और चुपचाप कुरसी पर बैठ गए। फिर ध्यान से उनकी ओर देखने लगे। कुछ देर बाद धीरे से बोले, "अब तो ये सब बीते युग की बातें हैं। वह जमाना कुछ और था, आज का कुछ और। आप क्या करेंगे जानकर?"

परमेश्वरी बाबू बोले, "मैंने कहीं तकली बाबा के बारे में एक लेख पढ़ा था। उसी से हरींद्र की शहादत के बारे में भी पता चला।···देवकांत मेरे मित्र हैं, इसी शहर में रहते हैं। इनसे आपका पता चला तो रहा नहीं गया। इलाहाबाद से टिकट कटाया और आज यहाँ सुरजापुर··· !"

कुछ देर बाद उन्होंने इसरार किया, "गौरी दा, कुछ थोड़ा सा आप बताएँ तो··· !" वाक्य अधूरा ही छूट गया।

"अब कहाँ से शुरू करूँ, क्या बताऊँ आपको?" गौरी बाबू कुछ देर कशमकश में रहे। असहज से। फिर धीरे से उन्होंने सुर उठाया—

अच्छा, आप···आप लोग इतनी दूर से आए हैं, तो याद करके कुछ बताता हूँ। कहने को बहुत बातें हैं, पर अब कुछ सूझता नहीं है। मेरा एक ही पोता था, हरींद्र। पूरे घर का लाड़ला। घर का चिराग।···मुझसे तो उसका कुछ ज्यादा ही प्यार था। अपने माँ-बाप से भी ज्यादा। वैसे बचपन से ही वह कुछ अलग सा था। बातें करने का शौकीन, कहानियों का भी। मेरे छोटे-मोटे काम दौड़-दौड़कर कर दिया करता था। फिर पास बैठकर कहता, "दादाजी, कहानी सुनाइए, कोई नई कहानी!"

अब मुझे ज्यादा कहानियाँ तो याद नहीं थीं। वह गुलामी का समय था। मन अंदर-ही-अंदर कचोटता था। तो मैं उसे सुनाया करता था कहानियाँ। ज्यादातर गांधी बाबा की, तिलक महाराज की, जवाहरलाल नेहरू और सरदार पटेल के जीवन की कहानियाँ। या फिर झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की वीरता की कहानी। आजादी के लिए कितनी कुर्बानियाँ दी हैं लोगों ने। वही सब कहानियों की शक्ल में सुनाया करता था। और बड़े ही ध्यान से सुनता था हरींद्र। छोटा सा था, पर बड़ा समझदार।···मैं उसे देश के महापुरुषों के बारे में बताता तो उसकी आँखें बराबर मुझ पर टिकी रहतीं, जैसे एक-एक शब्द पी रही हों···

"पर बाबा, इतने बहादुर लोग हुए अपने यहाँ, फिर भी हमें आजादी नहीं मिली?" एक दिन उसने बड़े दुख से भरकर पूछा।

"इसलिए कि अब तक हममें उसके लिए तड़प नहीं है। जिस दिन सारा देश एक हो जाएगा, तो अंग्रेज पलभर भी यहाँ टिक नहीं पाएँगे।" मैंने उसे समझाया।

हरींद्र पसोपेश में पड़ गया, "पता नहीं दादाजी, यह कब होगा, कैसे होगा?" फिर एकाएक बोल उठा, "अगर बच्चे मिलकर करें तो कुछ हो सकता है?"

"हाँ बेटे, क्यों नहीं? जरूर हो सकता है!" मैंने कहा तो हरींद्र के चेहरे पर तसल्ली नजर आई। क्या पता, वह क्या सोच रहा था।

उसी समय शहर में गांधीजी की स्वदेशी की भावना को लेकर एक पाठशाला खुली। उसमें बहुतों का योगदान था, कुछ मेरा भी। नाम रखा गया, 'स्वदेशी पाठशाला'। हरींद्र को मैंने उसमें पढ़ने डाल दिया। हरींद्र खुश था और रोज स्कूल की कोई-न-कोई नई बात बताता था। स्कूल में कई बड़े अच्छे अध्यापक थे, जो उसे अपने विषय के अलावा देश के बारे में बहुत सी बातें बताते थे। हरींद्र को अच्छा लगता।

उन्हीं दिनों शहर में तकली बाबा आए। उनकी कहानी भी बड़ी अजब है। कहते हैं, वे बड़े उद्योगपति थे। पूना में कपड़े की बड़ी मिल थी। पर उन्हें सब बेकार लगा। उन्होंने सोचा, "भला मुझे कितना धन चाहिए? करूँगा क्या इतने पैसे का?" बहुत दिनों तक सोचा उन्होंने। फिर वह कारखाना मजदूरों को ही सौंप दिया और खुद गांधीजी के चरणों में आ बैठे। बोले, "मैं सबकुछ छोड़ आया हूँ बापू। अब आप मुझे काम बताइए।"

गांधीजी के कहने पर वे सुरजापुर आए और यहीं उन्हें यह नाम 'तकली बाबा' मिला। असली नाम तो शायद बालकृष्ण बजाज था, पर वह तो किसी को याद नहीं। बस वे तकली बाबा हो गए।···जगह-जगह जाते, लोगों को इकट्ठा करके बोलते, भाषण देते। पर हाथ में तकली रहती। थोड़ा भी खाली समय मिलता तो तकली चलाने लगते। काफी सारा सूत तैयार हो जाता तो किसी गरीब परिवार को दे देते। कभी किसी कार्यकर्ता को शाबाशी देनी होती तो अपने हाथ से बना सूत भेंट करते। कहते, "अब तो मेरे पास देने को बस यही है।" सुननेवाले कहते, "ऐसा क्यों कहते हैं? यह तो अनमोल उपहार है, तकली बाबा!"

हर रोज वे किसी स्कूल में जाते और बच्चों से बातें करते। स्वदेशी स्कूल में तो रोज उनकी कक्षा लगती थी। बातों-बातों में बच्चों को देश की समाज की बातें बताते। कहते, "देखो, हमारा देश दुनिया के सबसे संपन्न देशों में से था। फिर आज हमारी यह हालत कैसे हो गई?" और फिर पूरी कहानी सुनाते। स्कूल के सारे बच्चे उन पर जान छिड़कते। छुट्टीवाले दिन उनकी कुटिया में जाते। कभी-कभी उनके साथ सभाओं में भी जाते। तकली बाबा के कहने पर बच्चों ने अपने घर में सत्याग्रह शुरू कर दिया कि सब लोग खद्दर पहनेंगे। और वाकई उनकी जीत हुई।···यों होते-होते सुरजापुर का माहौल बदलने लगा।

फिर आया सन् १९४२ का अगस्त महीना। हवा में एक अलग गंध थी। जोश था। दीवानगी का आलम। हर चीज कुछ बदली-बदली सी लग रही थी। जनता आजादी के लिए बेकरार थी। लगता था, कुछ होगा, कुछ होकर रहेगा।···

गांधीजी ने जब 'अंग्रेजो, भारत छोड़ो!' का नारा दिया तो शहर में भी जोश की आँधी उठने लगी। पर अभी तक वह लोगों के दिलों में थी। फिर कुछ ऐसा हुआ कि सारा मंजर ही बदल गया!

असल में तकली बाबा ने तय किया था कि 9 अगस्त को सुरजापुर की तहसील पर तिरंगा फहराया जाएगा। कुछ भरोसेमंद कांग्रेस कार्यकर्ताओं को साथ लेकर वे उसकी योजना बनाने लगे। योजना को काफी गुप्त रखा गया था। फिर भी शायद अंग्रेज सरकार को कुछ भनक लग गई।

उस समय तहसीलदार एक अंग्रेज था—मि. हेरी रॉबस्टन। खासा जालिम। उसने सुना तो आगबबूला हो गया।

तकली बाबा शांत थे। एकदम चुप, गंभीर। लेकिन सब लोग जानते थे कि वे एक बार जो तय कर लेते हैं, वह टल नहीं सकता, चाहे कुछ हो जाए। कुछ भरोसेमंद कार्यकर्ताओं को उन्होंने साथ लिया था। पर उनका सबसे ज्यादा भरोसा था अपनी बालमंडली पर। उन्होंने एक दिन स्वदेशी स्कूल के अपने शिष्यों को बुलाकर कहा—

"देखो, ९ अगस्त को तहसील पर हमें अपना प्यारा तिरंगा झंडा फहराना है। हो सकता है कि झंडा फहराते समय मेरी जान चली जाए।··· पर तुम्हें वचन देना होगा कि उस दिन तिरंगा जरूर फहराया जाएगा। मैं नहीं तो तुम फहराना, ताकि वह हवा में लहर-लहर लहराए और लोग देखें। इससे लोगों के मन में भी जोश उमड़ेगा, डर खत्म होगा।···चाहे कुछ हो जाए, हमें यह करके दिखाना ही है। यह हिम्मतवालों का काम है, डरनेवालों का नहीं। बताओ तो तुममें से कौन-कौन ऐसे हिम्मती हैं, जो किसी चीज से नहीं डरते?"

"हम···हम···हम···हम···हम!" पाँच आवाजें एक साथ सुनाई दीं। उनमें हरींद्र का स्वर सबसे तेज था। उसके चेहरे पर चमक थी। आँखों में आत्मविश्वास। बिना कहे ही उसकी आँखें कह रही थीं, 'हाँ, यह मैं कर सकता हूँ। करूँगा, जरूर करूँगा।' साथ ही राघव, बलवंत, सुखविंदर और आसिफ। ये पाँचों बच्चे पढ़ाई में भी अच्छे थे, खेल में भी। और जो काम उन्हें सौंपा जाता, वह जरूर पूरा होता था। उनमें दोस्ती भी ऐसी थी कि लोग देखते और हैरान होते थे।···

□

गौरी बाबू कुछ थक से गए थे। थोड़ी देर साँस लेने के लिए रुके। बोलते-बोलते शायद आँखें भर आई थीं। उन्होंने पास में रखा रूमाल उठाया। आँखें पोंछीं। कुछ देर एकदम चुपचाप शून्य में आँखें गड़ाए कुछ देखते रहे। फिर हिम्मत की। कहानी का छूटा हुआ सुर फिर से पकड़ लिया···

आखिर वह दिन भी आया, जब तिरंगा फहराया जाना था। उस दिन तहसील पर पुलिस कुछ ज्यादा सतर्क थी। पर तकली बाबा वेश बदलकर पहुँच गए। जोगिया कुरता-धोती। काली दाढ़ी, लंबे बाल। इस वेश में भला उन्हें कौन पहचानता? उनके साथ हरींद्र और बलवंत थे, जो उनका हाथ पकड़कर चल रहे थे। बाद में एक-एक करके आसिफ, राघव और सुखविंदर भी आ गए। अब इंतजार हो रहा था, सही समय का, जब अपनी

योजना को पूरा किया जाए। और वह भी जल्दी ही आ गया।

अंग्रेज तहसीलदार आया तो कुछ भगदड़ सी मची। पुलिसवालों ने दौड़कर उसे सैल्यूट किया। हेरी रॉबस्टन को तरह-तरह की बातें सुनने को मिल रही थीं। इसलिए वह चौकन्ना था। उसने सभी पुलिसवालों को अपने कमरे में बुलाया, ताकि जरूरी निर्देश दे सके।

यह शानदार मौका था। तकली बाबा भला कैसे चूक सकते थे? उन्होंने इशारा किया। एक साथ कोई दर्जन भर लोग अपनी तेजी से अपनी-अपनी जगह उठे और उस ऊँचे चबूतरे के पास आकर खड़े हो गए, जहाँ यूनियन जैक फहरा रहा था। तकली बाबा और उनके साथी पलक झपकते उस चबूतरे के ऊपर चढ़ गए। पाँचों बच्चे भी।···तकली बाबा ने साथियों के कंधों पर खड़े होकर बड़ी फुर्ती से यूनियन जैक उतारा। वे वहाँ तिरंगा फहराना ही चाहते थे कि किसी पुलिसवाले की निगाह पड़ गई। उसने वहीं से गोलियाँ चलानी शुरू कीं तो तकली बाबा खड़े न रह सके। तड़पकर नीचे गिरे। अफरा-तफरी मच गई। "मारो, पकड़ो···! पकड़ो···पकड़ो! गोली···पुलिस···!" की आवाजें गूँजने लगीं। चारों तरफ हड़कंप।···

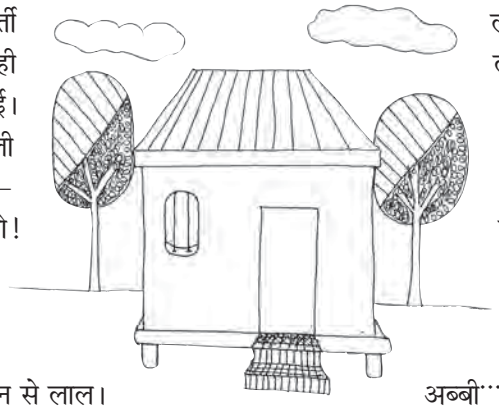

तकली बाबा की हालत खराब थी। गोली छाती में लगी थी, शरीर खूनमखून। कपड़े भी खून से लाल। असह्य वेदना थी, फिर भी उन्होंने हिम्मत नहीं हारी। जोर से नारा लगाया, "भारत माता की जय, गांधी बाबा की जय···!"

"जय-जय···! भारत माता की जय···!" चारों तरफ से आवाजें सुनाई पड़ रही थीं। जनता भी जोश में थी। आसपास के बहुत से युवक वहाँ आकर खड़े हो गए और जोर से भारत माता का जय-जयकार करने लगे। पुलिस अब कैसे गोली चलाए, किस-किस पर चलाए?

तकली बाबा के साथियों का जोश और बढ़ गया। वे तकली बाबा की परिचर्या करना चाहते थे, पर घायल पड़े बाबा उसी हालत में निर्देश दे रहे थे, "जिस काम के लिए हम यहाँ आए हैं, उसे भूलो मत। मुझे छोड़ो, अपना लक्ष्य पूरा करो।···"

पुलिस की गोलियों और हवाई फायर के बीच भी किसी ने हिम्मत नहीं हारी। तकली बाबा के चारों ओर घेरा और मजबूत हो गया। उसमें बहुत से जनता के लोग भी थे। इतने में हरींद्र को अपना कर्तव्य समझ में आ गया। वह झट बिजली की सी फुरती से तिरंगा फहराने के लिए आगे आ गया। उसके आसपास और बच्चे भी थे, जिन्होंने हरींद्र के चारों ओर घेरा बनाया हुआ था। सबने पलक झपकते हरींद्र को ऊँचा उठाया और जहाँ पहले यूनियन जैक था, वहाँ अब शान से तिरंगा झंडा लहरा रहा था। हरींद्र ने नारा लगाया, "भारत माता की जय···!" और देर तक जय-जय की आवाजें आती रहीं।

पर अफसोस, तभी एक गोली उसके सीने में लगी और वह कटे हुए परिंदे की तरह नीचे आ गिरा। फिर भी वह जोर-जोर से नारे लगा रहा था, "भारत माता की जय···भारत माता की जय···!" हरींद्र के दोस्तों ने उसे चारों और से घेरा हुआ था। देखते ही देखते और लोग भी घेरा बनाकर खड़े हो गए।

जो लोग तहसील में अपने कामों से आए थे, वे काम-धाम भूलकर इस ऐतिहासिक दृश्य के साक्षी बन गए थे। तिरंगे के आसपास लोगों का बेशुमार भीड़ थी। अब भी बीच-बीच में गोलियाँ चलतीं, पर लग रहा था किसी को गोलियों की परवाह नहीं है। इस बीच लोग हरींद्र और तकली बाबा के लिए पानी लेने भागे। कुछ लोगों ने झट अपने कपड़े फाड़े, तकली बाबा और हरींद्र को पट्टियाँ बाँधने लगे।···

अजब दृश्य था। तहसील का पूरा अहाता भारत माता के जय-जयकार के नारों से गूँज रहा था। गोलियाँ चलतीं तो लोग जमीन पर लेट जाते, फिर खड़े होकर नारे लगाने लगते।

अंग्रेज तहसीलदार हेरी रॉबस्टन चौंका। यह हो क्या रहा है? वह गुस्से में फनफनाता हुआ बाहर आया, पर तब तक तकली बाबा के बहादुर शिष्य तिरंगा फहरा चुके थे।···

इस पर अंग्रेज तहसीलदार हेरी रॉबस्टन को गुस्सा आ गया। उसने तिरंगे को देखा तो चीखते हुए बोला, "उतारो, उतारो इसे अब्बी···! आई से···!"

तकली बाबा वेश बदलकर आए थे, पर अब तक लोगों ने उन्हें पहचान लिया था। अंग्रेज तहसीलदार को भी पता चल गया था। वह चिल्ला रहा था, "पकड़ो टैकली बाबा को, अम सबको जेल भेजेगा···! कोई भागने न पाए!"

पर भाग कौन रहा था? लोग तो अपनी जान देने के लिए खुद-ब-खुद आगे आ गए थे। सबके चेहरे पर निर्भयता। जो बात तकली बाबा और उनके साथियों ने भी नहीं सोची थी, वह यहाँ देखने को मिल रही थी। जनता इस तरह जोश में घेरा बनाकर खड़ी थी, जैसे सब के सब आजादी के सिपाही हों।

तब तक साठ-सत्तर पुलिसवाले वहाँ पहुँच गए थे। सबके सब हथियारों से लैस। उन्होंने आगे बढ़कर तिरंगे को उतारने की कोशिश की, तो घायल तकली बाबा धीरे से बुदबुदाए, "तिरंगा मत उतरने देना···!"

बस बच्चे अपनी जगह अड़ गए, "नहीं, तिरंगा नहीं उतरेगा! नहीं उतरेगा!" साथ में और लोग भी।

इतने में फिर से अंग्रेज तहसीलदार धम-धम करता हुआ आगे आया। उसने उबलकर कहा, "जे झंडा किसने टाँगा···? जरूर टैकली बाबा, टुमने···? हमको पता, टुमने इस शहर की हवा खराब की है। लड़कों को बिगाड़ रहे हो। तुम्हें इसकी सजा···!" कहकर घायल पड़े तकली बाबा को उसने जोर से पैर की ठोकर मारी और सिपाहियों से कहा, "गिरफ्तार कर लो सबको।···जल्दी!"

पर तकली बाबा को ठोकर मारते हुए वहाँ जिन-जिन लोगों ने देखा, सबकी आँखों में खून उतर आया। इसकी इतनी हिम्मत···? और देखते-

ही-देखते वहाँ जनता का सैलाब इकट्ठा हो गया। सड़क पर चलते लोग भी वहाँ आकर इकट्ठे होते जा रहे थे। सब जोश की लहर पर सवार। ऐसे गगनभेदी नारे लग रहे थे कि तहसील की दीवारों से भी गूँजने लगा था, "जय-जय, भारत माता की जय...गांधी बाबा की जय!"

कुछ नौजवान छाती निकालकर अंग्रेज तहसीलदार के आगे आकर खड़े हो गए, "हमें मारो...! मारो गोली, मारो ठोकर...!"

लोगों की आँखों में खौलते क्रोध की लपटें देखीं तो एकबारगी तो अंग्रेज तहसीलदार भी सहम गया। चुपके से कमरे के अंदर जाकर छिप गया। वहीं से उसने कलेक्टर को फोन किया, "सर, हालात ठीक नहीं हैं। आप और पुलिस फोर्स भेजिए...जल्दी!"

कुछ ही देर में लारियों से धमाधम कूदते पुलिसवाले। बड़ी संख्या में और पुलिस दल आ गया। तहसील पुलिस छावनी में बदल गई थी। पुलिस ने तकली बाबा और हरींद्र दोनों को ही सरकारी अस्पताल में दाखिल करवाया। दोनों की हालत नाजुक। इलाज चल रहा था। कुछ और लोग भी गोलियों से घायल हुए थे। दो बच्चे राघव और आसिफ भी। वे भी अस्पताल में भरती थे।

अस्पताल के बाहर स्वदेशी स्कूल के बच्चे इकट्ठा थे। धीरे-धीरे शहर के सारे स्कूलों के बच्चे वहाँ इकट्ठे होते गए। सबके चेहरे गमगीन।

"तकली बाबा को ठोकर मारी तहसीलदार ने! उन्हें गोली लगी, हरींद्र को भी...!" हवा में बस ये दो ही बातें गूँज रही थीं।

□

गौरी बाबू फिर थोड़ी देर साँस लेने के लिए रुके। चेहरा आरक्त। जैसे अंदर जोश की आँधी उठ रही हो, और उन्हें चैन न लेने दे रही हो। जल्दी वे फिर सुर में आ गए।

हाँ, तो परमेश्वरी बाबू, शाम के समय वहाँ इतने बच्चे इकट्ठे हो गए थे कि पुलिस को जबरन उन्हें हटाना पड़ा। पर कोई घर नहीं जाना चाहता था। देखते-ही-देखते बच्चों का बड़ा सा जुलूस बन गया और वह शहर की ओर चल पड़ा। अब शहर की सड़कों पर नारा गूँज रहा था, "भारत माता की जय, गांधी बाबा की जय!"

बच्चों का यह जुलूस अभूतपूर्व था। देखते-ही-देखते पूरा शहर इसमें शामिल हो गया। किसकी हिम्मत थी, जो इस जुलूस को रोक पाए?

उस दिन अंग्रेज तहसीलदार हेरी रॉबस्टन पुलिस के साए में छिपकर और डरा-डरा सा अपने घर गया। पूरे शहर में पुलिस की सीटियों की आवाज गूँज रही थी। पर लोग निडर थे, बेखौफ। उसी रात को हरींद्र ने और अगली सुबह को तकली बाबा ने दम तोड़ दिया। दोनों की एक साथ बड़े सम्मान से अंत्येष्टि हुई। अपने बलिदान से उन्होंने पूरे सुरजापुर को झिंझोड़कर जगा दिया।...

गांधीजी जेल में थे, पर उनके पास भी समाचार पहुँच गया था। जेल से छूटकर वे सुरजापुर आए तो लोग उन्हें सुनने के लिए उमड़ पड़े। गहरे दु:ख के साथ उन्होंने कहा, "मेरे प्यारे भाइयो, तकली बाबा का दु:ख तो मेरे अंदर, बहुत अंदर है। लगता है कि उसे सह भी लूँगा। पर हरींद्र...! वह तो छोटा बच्चा ही था। उसने अभी दुनिया देखी ही क्या थी? उसके दादा गौरीशंकरजी के घर मैं गया हूँ। वे सच्चे देशभक्त हैं। पर मैं क्या कहकर उनके दिल को समझाऊँ? मैं बिल्कुल नहीं जानता। सच पूछिए तो मेरा दिल करता है, मैं आप सबके सामने एक बच्चे की तरह फूट-फूटकर रो पड़ूँ, तब भी शायद यह दुख हलका नहीं होगा!"

कुछ देर रुककर बोले, "तकली बाबा लगातार मुझे चिट्ठियाँ लिखते थे कि बापू, इस शहर में बच्चे ऐसे वीर बहादुर हैं कि बड़ों को भी मात दें। पाँच बहादुर बच्चों की टोली है और उनका नायक है हरींद्र। उसके जोश का तो कहना ही क्या!...आज सारी दुनिया ने देख लिया कि वह सच्चा वीर था, सच्चा शहीद।...इसका सबसे बड़ा सबूत तो यही है कि इस छोटे से शहर सुरजापुर में भी सभा में कोई दस हजार लोग इकट्ठे हो गए। इसका मतलब यह है कि अब लोगों को कोई डर नहीं। डरे तो वह अंग्रेज अफसर, जो हमेशा पुलिस के साए में छिपकर आता-जाता है। आजादी के सिपाही को कैसा डर?"

पूरे शहर की आँखें नम थीं। कुछ लोग तो फफककर रो रहे थे।...

□

गौरी बाबू अब काफी थक गए थे। सुनाते हुए फिर कुछ देर के लिए रुके। जैसे अपने दुख पर काबू पाने की कोशिश कर रहे हों। फिर धीरे से उठे। डगमगाते कदमों से अलमारी तक गए। अंदर से एक फोटो निकाला, हँसता हुआ हरींद्र...! फिर एक और फोटो। उसमें पाँचों दोस्त तकली बाबा के साथ खड़े थे। तकली बाबा खद्दर के कुरते-पाजामे में, सिर पर खद्दर की टोपी थी। बच्चे गोल-मटोल। खुशदिल। मुसकराते हुए।

गौरी दा काँपती सी आवाज में कह रहे थे, "बस, एक यही निशानी अब बची है मेरे पास...! कभी-कभी सीने से लगा लेता हूँ तो बड़ी ठंडक पड़ती है।..."

परमेश्वरी बाबू की आँखें नम थीं। देवकांत घोषाल भी जैसे कानों से सुन रहे थे, और आँखों से वह सारा कुछ देख रहे थे, जो अभी-अभी गौरी दा ने बताया।

दोनों चुप। एक-दूसरे की ओर देखा, फिर कमरे की दीवारों पर नजर गड़ा दी। भूल गए थे, क्या कहना है क्या नहीं? फिर उन्होंने गौरी बाबू की ओर देखा। पर वे तो जैसे अपनी दास्तान सुनाकर स्मृतियों में कहीं और ही पहुँच गए थे।

परमेश्वरी बाबू धीरे से उठ पड़े, देवकांत भी। दोनों हाथ जोड़कर उन्होंने नमस्कार किया, तो बूढ़े गौरी दा के भी हाथ जुड़ गए। बोले, "आप लोग आए, अच्छा लगा। वरना तो आज किसको पड़ी है...!"

परमेश्वरी बाबू और देवकांत वहाँ से लौटे, तो जैसे पैर चल ही नहीं पा रहे थे। दोनों चुप, एकदम चुप। न परमेश्वरी कुछ बोल पा रहे थे, न देवकांत घोषाल। दोनों के दिल भरे हुए थे।

सा/अ

५४५, सेक्टर-२९, फरीदाबाद-१२१००८ (हरियाणा)

दूरभाष : ०९८१०६०२३२७

prakashmanu333@gmail.com

इस अंकुर सा रोज उगूँ

● विज्ञान व्रत

: एक :

क्यों उनका मेयार जिऊँ,
मैं अपना किरदार जिऊँ।

मैं अपना किरदार जिऊँ,
जीने के आसार जिऊँ।

जीने के आसार जिऊँ,
जब तक हूँ खुद्दार जिऊँ।

जब तक हूँ खुद्दार जिऊँ,
खुद से इक तकरार जिऊँ।

खुद से इक तकरार जिऊँ,
दोधारी तलवार जिऊँ।

: दो :

वो मेरा चेहरा न हुआ,
मैं भी शर्मिंदा न हुआ।

उसका मैं हिस्सा न हुआ,
मुझको ये धोखा न हुआ।

सब उसका सोचा न हुआ,
वो मेरा रस्ता न हुआ।

जब उसकी भाषा न हुआ,
तो मेरा चर्चा न हुआ।

होने को क्या-क्या न हुआ,
मैं ही बस अपना न हुआ।

: तीन :

खामोशी मेरी जबाँ है,
वो मगर सुनता कहाँ है।

सामने हैं आप लेकिन,
आप तक रस्ता कहाँ है।

जानता हूँ दुश्मनों को,
फिर मुझे खतरा कहाँ है।

छोड़िए भी मुसकराना,
दर्द चेहरे से बयाँ है।

ढूँढ़ना क्या है तुझे अब,
मैं जहाँ हूँ तू वहाँ है।

: चार :

कुछ दिन बे-पहचान रहूँ,
अपना चेहरा किसको दूँ।

और उन्हें अब क्या लिक्खूँ,
खत में खुद को ही रख दूँ।

खुद को कुछ ऐसे छेड़ूँ,
जैसे कोई नगमा हूँ।

इक अंकुर सा रोज उगूँ,
और फसल सा रोज कटूँ।

अब उनकी तसवीर बनूँ,
खुद को फिर तहरीर करूँ।

पहले खुद से तो निबटूँ,
फिर इस दुनिया को देखूँ।

शाम को जितना घर लौटूँ,
ये समझो बस उतना हूँ।

: पाँच :

वो सितमगर है तो है,
अब मेरा सर है तो है।

आप भी हैं मैं भी हूँ,
अब जो बेहतर है तो है।

जो हमारे दिल में था,
अब जबाँ पर है तो है।

दुश्मनों की राह में,
है मेरा घर है तो है।

'बाहर धूप खड़ी है', 'चुप की आवाज', 'जैसे कोई लौटेगा', 'तब तक हूँ', 'मैं जहाँ हूँ', 'लेकिन गायब रोशनदान', 'याद आना चाहता हूँ (गजल-संग्रह); 'खिड़की भर आकाश' (दोहा-संग्रह); 'नेपथ्यों में कोलाहल' (नवगीत-संग्रह), 'अक्कड़-बक्कड़ इल्ली-गिल्ली' (बाल-गीत-संग्रह)। 'अंतरराष्ट्रीय वातायन सम्मान', 'सुरुचि सम्मान', 'परंपरा सम्मान', 'आधारशिला कला भूषण सम्मान', 'हिंदी गौरव सम्मान', 'कंवल सरहदी सम्मान' एवं अन्य अनेक सम्मान।

एक सच है मौत भी,
वो सिकंदर है तो है।

पूजता हूँ बस उसे,
अब वो पत्थर है तो है।

: छह :

या तो मुझसे यारी रख,
या फिर दुनियादारी रख।

खुद पर पहरेदारी रख,
अपनी दावेदारी रख।

जीने की तैयारी रख,
मौत से लड़ना जारी रख।

लहजे में गुलबारी रख,
लफ्जों में चिंगारी रख।

जिससे तू लाचार न हो,
इक ऐसी लाचारी रख।

: सात :

और सुनाओ कैसे हो तुम,
अब तक पहले जैसे हो तुम।

अच्छा अब ये तो बतलाओ,
कैसे अपने जैसे हो तुम।

यार सुनो घबराते क्यों हो,
क्या कुछ ऐसे-वैसे हो तुम।

क्या अब अपने साथ नहीं हो,
तो फिर जैसे-तैसे हो तुम।

ऐशपरस्ती ? तुमसे ? तौबा !
मजदूरी के पैसे हो तुम।

: आठ :

सिर्फ किस्सों में सुना हो,
काश ऐसा फैसला हो।

सुर्खियों में जो रहा हो,
क्या पता अब गुमशुदा हो।

कुर्बतों को शर्म आए,
आपसे यों फासला हो।

कौन किसको अब सुनेगा,
बोलना ही जब मना हो।

उस किले को कौन जीते,
जो हवाओं में बना हो।

एन-१३८ सेक्टर-२५
नोएडा-२०१३०१ (उ.प्र.)
दूरभाष : ९८१०२२४५७१

परंपरा के पुरुषार्थ : पं. विद्यानिवास मिश्र

● अजयेंद्रनाथ त्रिवेदी

समकालीन भारतीय संस्कृति-चिंतन में पंडित विद्यानिवास मिश्र का हस्तक्षेप एक युगांतरकारी घटना है। भारतीय संस्कृति की बीज संकल्प-नाओं के संबंध में पंडितजी ने मौलिक परंतु लोक एवं शास्त्र सम्मत उद्‌भावनाएँ की हैं। इनसे इस क्षेत्र में किए गए चिंतन की एकरेखीयता टूटी है, उपनिवेशकालीन चिंतन की धूल छँटी है तथा भावी पीढ़ी के लिए एक प्रशस्त आलोक-सरणी निर्मित हुई है। पं. विद्यानिवास मिश्र को एक ललित निबंधकार के रूप में समझने के प्रयास में अकसर उनके इस हस्त-क्षेप के प्रति हमारा ध्यान नहीं जा पाता। पंडितजी के अगाध पांडित्य और गंभीर लोकनिष्ठा से बलवती हुई उनकी भविष्यदृष्टि के संबंध में अनेक अधिकारी विद्वानों ने गहन विचार किया है। इन विद्वानों का विचार है कि पंडितजी के हस्तक्षेप से भारतीय संस्कृति को समझने में बाधक पूर्वग्रहों का बहुत हद तक मार्जन हुआ है तथा आनेवाले समय में इस दिशा में और काम किया जा सके इसकी पृष्ठभूमि भी तैयार हुई है।

पंडितजी ने अपने व्याख्यानों, आलेखों, शोधग्रंथों, संस्मरणों, साक्षात्कारों तथा संपादकीय प्रयासों से भारतीय संस्कृति की प्राय: सभी बीज संकल्पनाओं को पूर्वग्रही पाश्चात्य परिप्रेक्ष्य से हटाकर भारतीय मनीषा के प्रकाश में उपस्थित किया है। इन संकल्पनाओं में धर्म, लोक, संवाद, इतिहास, रसशास्त्र तथा परंपरा प्रमुख हैं। पराधीनता की कालरात्रि में भारत के समस्त प्रातिभ अवदान तिरोहित होते चले गए। हालाँकि उन अवदानों पर पाश्चात्य विचारकों ने विचार अवश्य किया था। तथापि उनके निष्कर्ष चूँकि देश की सनातन प्रज्ञा के अनुरूप नहीं थे, अत: लोकमानस को स्वीकार नहीं हुए। तथापि इससे हममें अपने समृद्ध अतीत के प्रति भ्रांति उपजी तथा उसके प्रति लज्जाबोध का भी अनुभव होने लगा। इसका दुष्परिणाम देश के स्वाभिमान पर पड़ा। विदेशी शिक्षा-पद्धति से निकले लोगों को भारतीय मनीषा की पाश्चात्य व्याख्या ने आकर्षित किया तो अवश्य पर जन सामान्य इसके प्रति शंकालु ही रहा। विदेशी उपलब्धियों के प्रति एक वर्ग में व्यामोह जगा तो दूसरा वर्ग अपनी पुरातन व्यवस्था से चिपक गया। इस घटाटोप में राजनीतिक स्वाधीनता के क्षितिज पर भारतीय विचार का सूर्योदय नहीं हो पाया। ऐसी शोचनीय दशा में पं. विद्यानिवास मिश्र ने भारतीय सांस्कृतिक चिंतन को स्वकीय दृष्टि से देखा तथा अपने अथक प्रयासों से अन्य भी उसे देख सकें ऐसा विमर्श आलोक फैलाया।

इस क्रम में पं. विद्यानिवास मिश्र ने परंपरा के स्वरूप पर गहन चिंतन-मनन किया है। परंपरा शब्द से हमें उसके अंग्रेजी पर्याय ट्रेडिशन की याद आ जाती है। ट्रेडिशन में अनुकरण का भाव है। यथावत् स्वीकरण की बात है। परंपरा भारतीय चिंतन का एक आयाम भर नहीं, यह अन्य सभी संबंधित चिंताओं का परिप्रेक्ष्य भी है। परंपरा वह भित्ति है, जिस पर अन्य सभी मानवीय सरोकारों एवं संव्यवहारों की छवि उकेरी गई है। खेद का विषय है कि आधुनिक शिक्षा प्राप्त विचारकों के प्रभाव से भारत में परंपरा को लेकर एक भ्रांत तथा अर्थभ्रष्ट विचार को प्रोत्साहन मिला। स्वयं को जागरूक तथा प्रगतिशील कहनेवालों के एक वर्ग ने परंपरा को नकारात्मक बताया तथा उसे प्रगति के मार्ग का रोड़ा ठहराया। उन्होंने परंपरा से मुक्त होने का बाकायदा अभियान भी चलाया। फलस्वरूप समय की कसौटी पर खरी उतरी मान्यताएँ दकियानूसी कहकर तिरस्कृत की गईं और वैज्ञानिकता के नाम पर अवज्ञामूलक आचार-विचार को प्रोत्साहन मिला। एक तरह से हम आत्महीन होते चले गए।

जिन समकालीन विचारकों ने देश को इस अवांछित दशा से उबारने का यत्न किया, उनमें पं. विद्यानिवास मिश्र का अन्यतम स्थान है। परंपरा को लेकर उनका चिंतन अनेक पुस्तकों और सांस्कृतिक प्रयासों में व्यक्त हुआ है। उनकी पुस्तक परंपरा बंधन नहीं (१९७६), इस संबंध में उनका प्रस्थान है। इसी कड़ी में नैरंतर्य एवं चुनौतियाँ (१९८८) तथा भारतीय परंपरा (१९८९) के प्रकाशन को भी देखा जा सकता है। परंपरा शब्द अपने अंग्रेजी पर्याय (ट्रेडिशन) की वजह से अर्थ-संकोच का शिकार हो गया है। पंडितजी परंपरा के मूलार्थ के उद्‌घाटन के लिए अजीवन कटिबद्ध रहे। भारतीय संदर्भ में परंपरा को वे इतिहास चक्रव्यूह को तोड़नेवाली, मनुष्य को स्वाधीनता का व्योम-विहार करानेवाली तथा विचारों से मनुष्य को बाँधनेवाली ऊर्जा मानते हैं। वे कहते हैं कि यही वजह है कि भारतीय

पारंपरिक दृष्टि में कयामत का कोई दिन आएगा, ऐसी कल्पना नहीं मिलती। यहाँ सत्ता का कोई एक केंद्र नहीं है, श्रद्धा का कोई एकल बिंदु भी नहीं है। वे परंपरा को उषा की तरह पुरानी युवती कहते हैं, जो हर प्रात: नवीन होती, हर-हर दोपहरी प्रखर होती तथा हर शाम ध्यानस्थ होती है।

पं. विद्यानिवास मिश्र की परंपरा में अखंड आस्था थी। उनका घोष था—परंपरा बंधन नहीं। परंपरा के स्वरूप के प्रति विद्यमान भ्रामक धारणा को निर्मूल सिद्ध करने के लिए दिए गए उनके योगदान को व्यापक मान्यता मिली। उनके योगदान का मूल्यांकन करते हुए अनेक पुस्तकें लिखी गईं तथा अनेक प्रबंध प्रस्तुत किए गए। अपने जीवन के नवें दशक में प्रवेश करने जा रहे अद्यावधि विद्यासाधनारत कोलकाता निवासी डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र की पुस्तक 'परंपरा का पुरुषार्थ' पंडितजी की चिंता-रेखाओं पर प्रकाश डालती हुई एक अनन्य पुस्तक है। हिंदी पत्रकारिता पर अपने शोधप्रबंध तथा रामकृष्ण परमहंस के लीला प्रसंग पर 'कल्पतरु की उत्सव लीला' नामक कृति के लिए डॉ. मिश्र ने देशव्यापी कीर्ति अर्जित की है। उनके प्रति पं. विद्यानिवास मिश्र अत्यंत कृपालु तथा वत्सल रहे हैं। एक लंबे समय तक दोनों के बीच पत्राचार चला तथा सान्निध्य बना रहा। पंडितजी को समझने के लिए डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र की यह पुस्तक अर्थ तथा भाव दोनों ही दृष्टियों से एक पुष्ट कृति है।

डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र ने 'परंपरा का पुरुषार्थ' नामक पुस्तक में पं. विद्यानिवास मिश्र के व्यक्तित्व को कई कोणों से देखने की चेष्टा की है। पुस्तक की भूमिका में वे स्पष्ट करते हैं कि पं. विद्यानिवास मिश्र ने बड़ी समृद्ध स्रोतों से रस तथा संस्कार अर्जित किए हैं। लेखक मानते हैं कि जिन विषयों पर पंडितजी ने विमर्श का मार्ग बनाया है, वे साहित्य, कला तथा संस्कृति के गहन प्रसंगों से भरे पड़े हैं। इसे समझने के लिए अधिगम की नहीं, प्रज्ञा की प्रखरता तथा प्रतिभा की अनन्यता आवश्यक है। पुस्तक में स्पष्ट किया गया है कि परंपरा का पुरुषार्थ सीमित अर्थ में समीक्षा नहीं है, वह पं. विद्यानिवास मिश्र की संवेदना प्रत्यय और व्यक्तित्व से साक्षात्कार की लेखक द्वारा की गई चेष्टा है।

परंपरा का पुरुषार्थ में लेखक ने पं. विद्यानिवास मिश्र के अवदान को उनकी लोकसंसक्ति, यात्राप्रियता, संवेदना की जागरूकता संस्कृति की सुमुखता, वैदुष्य, रसज्ञता आदि में रेखांकित किया है। परंपरा के प्रबल समर्थक तथा उसके अप्रतिम व्याख्याता पं. विद्यानिवास मिश्र के लिए इस पुस्तक में अध्यायों की जो योजना की है, उससे उनकी परंपरा संबंधी अवधारणा को समझने में हमें काफी सहायता मिलती है। इस पुस्तक में लेखक ने पं. विद्यानिवास मिश्र के पांडित्य से उज्ज्वल तथा उनके चरित्र एवं उनकी गुरु परंपरा से सुप्रतिष्ठित वर्णों, छवियों एवं गुणों को उभारने की सफल चेष्टा की है।

अपनी विरासत की विशिष्टता के बोध और साथ-ही-साथ नए मूल्यों को स्वीकार करने की उदारता से परंपरा बनती और बढ़ती है। आधुनिकता के साथ विरासत का संतुलन साधने में ही संस्कृति का रूप निखरता है। अन्यथा अंधानुकरण की चेष्टा में हम नकलची बंदर की दशा को प्राप्त जाते हैं। परंपरा का अर्थ रूढ़ि का अंगीकारण नहीं है। परंपरा के

सुपरिचित लेखक। हिंदी की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं, जर्नलों में निबंध, शोध-आलेख प्रकाशित। संप्रति मुख्य प्रबंधक (राजभाषा), यूको बैंक, गुवाहाटी।

पोषण का अर्थ है प्राप्त संपदा का निरीक्षण-परीक्षण, सार का ग्रहण तथा असार का त्याग। पं. विद्यानिवास मिश्र ने परंपरा को पर-से-पर अर्थात् उत्कृष्ट-से-उत्कृष्टतर की यात्रा कहा है। उनके अनुसार इससे ज्ञान का संरक्षण, चरित्र का उन्नयन तथा लोक का संग्रह संभव हो पाता है।

परंपरा का पुरुषार्थ में पं. मिश्र के जिन आयामों का वर्णन हुआ है उनमें प्रथम है—'माटी की महिमा का उल्लास।' परंपरा कोई वायवीय वस्तु नहीं है। इसके रूपायन के लिए आधार चाहिए। वह आधार है हमारी माटी। डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र पंडितजी के परंपरा संबंधी चिंतन में माटी की महिमा को सर्वत्र उल्लसित देखते हैं। डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र पं विद्यानिवास मिश्र के व्यक्तिव्यंजक निबंधों को लोक संसक्त विमर्श कहा है। पंडितजी की लोक संसक्ति सिर्फ मानुष से ही नहीं है। इसमें वनस्पतियाँ भी हैं, पर्यावरण भी है, पर्व भी हैं और तीर्थ भी। इन सबको मिलाकर जो परिदृश्य बनता है, वह पं. विद्यानिवास मिश्र की नजर में लोक है। यही लोक-परंपरा की भूमि है। यहीं से परंपरा का स्रोत फूटता है और यहीं उसकी परीक्षा-निरीक्षक भी होती चलती है। इस परीक्षा-निरीक्षा के लिए लोकपरक जागृति आवश्यक है, जो लोक अनुभवों से संपृक्त लोक साहित्य के अनुध्यान से आती है। लोक साहित्य मौखिक रूप में पीढ़ियों से संचरित होता है। इसके लिए अक्षर ज्ञान की आवश्यक्ता नहीं रही। अत: यह सबके लिए सुलभ रहा। विरासत के प्रति श्रद्धा से संबलित लोक की अपने जाग्रत् विवेक के साथ जुगलबंदी से परंपरा का परिवर्धन होता चलता है।

परंपरा गड़ही का जल नहीं, प्रवाह का दूसरा नाम है। परंपरा का प्रवाह किसी एक स्रोत से नहीं बनता। वह चलता तो किसी एक स्रोत से है पर उसे गति मिलती है अन्य अनेक स्रोतों के संगम से। पदार्थ में जब गति का संयोग होता है तो प्रवाह बनता है। परंपरा का पुरुषार्थ में लेखक ने पंडितजी की यात्राप्रियता का विस्तृत उल्लेख किया है। यात्राओं से जीवन के अनुभव न सिर्फ कसौटी पर कसे ही जाते हैं, वरन् उनमें यथोचित गहराई आती है और एक समावेशी चरित्र विकसित होता है। पंडितजी को अपनी यात्राओं के दौरान परंपरा के सातत्य के अनेक अभिलक्षणों को निकट से देखने के अवसर मिले। इस विषय में उनकी पुस्तक 'भ्रमरानंद के पत्र' को देखा जा सकता है। इसमें पंडितजी ने स्वयं को विदेश में हुए अपने अनुभव के आलोक में देखा है। एक स्थान पर केंद्रित लोग जैसे मत्सरग्रस्त हो जाते हैं, वैसे ही एक स्थान से बँधा चिंतन और चित्त भी रूढ़ हो जाता है। पं. विद्यानिवास मिश्र का कहना है कि यात्रा मार्ग की नहीं, अपनी पहचान होती है। भीड़ में जाकर ही, समाज में रहकर ही हमें अपनी अच्छाई-बुराई, श्रेष्ठता-हीनता आदि की पहचान होती है। रूढ़ियाँ तो देशकाल सापेक्ष हो सकती हैं, यदि परंपरा इनसे निरपेक्ष रह सकी, तभी वह

स्वीकार्य और विकसनशील हो पाती है।

पं. विद्यानिवास मिश्र की अनवरत यात्रा-साधना ने उनके व्यक्तित्व को महत् ऊँचाई दी है। यात्राओं ने उन्हें सिखाया कि स्वकीय अनुभव ही अनुभव नहीं है। अपने अनुभव को बाँटने से परंपरा पुष्ट और स्वीकार्य बनती है। मेरी बात हमारी बात में पर्यवसित हो जाए, मेरा अनुभव हमारे अनुभव को सत्य ठहराए तभी विश्वास जन्म लेता है। इस विश्वास का बिंब पंडितजी ने हिरण-हिरणी के एक व्यवहार में देखा है। हिरण अपने सींग से हिरणी की आँखों को खुजला रहा है। हिरणी आश्वस्त है कि हिरण उसकी आँखों को नुकसान नहीं पहुँचा सकता। विश्वास से उपजी यह आश्वस्ति परंपरा ही हमें देती है। पंडितजी को अभिप्रेत पारस्परिकता का यह माहात्म्य हमारी परंपरा से अनुप्राणित है।

आधुनिक भारत की ज्वलंत समस्याओं पर विचार करते समय पं. विद्यानिवास मिश्र ने रामावतार शर्मा, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, राहुल सांकृत्यायन, लक्ष्मण शास्त्री जोशी, विधुशेखर भट्टाचार्य, हजारी प्रसाद द्विवेदी, अज्ञेय सदृश आधुनिकतावादी विचारकों के चिंतन को बहुमान दिया है। समाज की संवेदना को समझने में सदा सतर्क रहनेवाले उक्त लोकनायकों ने अपने प्रयासों से अतीत से प्राप्त ज्ञानराशि को अपने समय के अनुभव-आलोक में जाँचा-परखा है तथा भविष्य के लिए नुस्खा तैयार किया है। पं. विद्यानिवास मिश्र की संपादकीय टिप्पणियों में समकालीन परिदृश्य की शोचनीय दशा को परंपरा प्राप्त निदानों के परिप्रेक्ष्य में देखने की चेष्टा की गई है।

टूटते सपनों की कसक परंपरा को आहत करती है। परंपरा का पुरुषार्थ में 'समय संवेदना से सर्जनशील सरोकार : टूटते सपने का दर्द' में डॉ. मिश्र ने कहा है कि 'परंपरा समय की संवेदना को पहचानकर आगे बढ़ती है।' आधुनिक युग के संदर्भ में पं. विद्यानिवास मिश्र ने पुरुषोत्तम दास टंडन, डॉ. संपूर्णानंद, आचार्य नरेंद्रदेव और डॉ. लोहिया जैसे लोकनायकों की साधना की ऊष्मा से अंकुरित मूल्यों की याद करते हुए बड़ी व्यथा के साथ कहा था, 'नैतिक मूल्य की बात कर्मकांड हो गई और देश तिरोहित हो गया। केवल रहे राज्य और राज्य की सत्ता।' लोकनायकों का स्वप्न लोकजीवन में दिग्सूचक यंत्र की सूई की तरह होता है। इसकी सहायता से भावी पीढ़ी अपना मार्ग खोजती है। इस खोज के लिए परंपरा का आलोक चाहिए। सपनों को चरितार्थ करने के लिए हम अपनी सामूहिक इच्छाशक्ति का विनियोग करते हैं। इससे हमारे समक्ष एक दिशा स्वयं ही उद्घाटित हो जाती है। परंपरा के निर्माण में इस उद्घाटन का खास महत्त्व है। डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र ने 'नवभारत टाइम्स' के प्रधान संपादक की हैसियत से पंडितजी द्वारा पत्रकारिता को माध्यम बनाकर परंपरा के स्वरूप पर किए गए विमर्श का गहन अध्ययन 'परंपरा का पुरुषार्थ' में किया है।

आधुनिक भारत की ज्वलंत समस्याओं पर विचार करते समय पं. विद्यानिवास मिश्र ने रामावतार शर्मा, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, राहुल सांकृत्यायन, लक्ष्मण शास्त्री जोशी, विधुशेखर भट्टाचार्य, हजारी प्रसाद द्विवेदी, अज्ञेय सदृश आधुनिकतावादी विचारकों के चिंतन को बहुमान दिया है। समाज की संवेदना को समझने में सदा सतर्क रहनेवाले उक्त लोकनायकों ने अपने प्रयासों से अतीत से प्राप्त ज्ञानराशि को अपने समय के अनुभव-आलोक में जाँचा-परखा है तथा भविष्य के लिए नुस्खा तैयार किया है। पं. विद्यानिवास मिश्र की संपादकीय टिप्पणियों में समकालीन परिदृश्य की शोचनीय दशा को परंपरा प्राप्त निदानों के परिप्रेक्ष्य में देखने की चेष्टा की गई है।

संस्कृति की सतत लयकारी परंपरा को मुखर करती चलती है। संस्कृति हमारे कर्तृत्व की सुगंध है। लोक की पहचान बताते हुए पंडितजी ने उसके अंतर्गत समस्त दृश्य जगत् का अंतर्भाव किया है और संस्कृति की व्याख्या करते हुए शील को उसका मानदंड माना है। उन्होंने कहा है कि शील का परीक्षण लोक मान्यताओं से होता है। उनके अनुसार स्वयं जीवन ही संस्कृति के घटकों का परिणाम है। 'कला कला के लिए' या 'कला जीवन के लिए' जैसे विवाद को पं. विद्यानिवास मिश्र अनावश्यक मानते हैं। उनके अनुसार कला या काव्य जीवन के साथ ओतप्रोत होते है। इनके बिना जीवन अपना छंद खो बैठता है। यह छंद है संस्कृति। भटकाव की घड़ी में हमें उसी छंद में, जिसे संस्कृति कहते हैं विश्राम मिलता है। पं. विद्यानिवास मिश्र संस्कृति को प्रदर्शन की वस्तु नहीं मानते। उनके अनुसार संस्कृति दिखने-दिखाने की चीज नहीं स्वयं जीवन का प्रयोजन ही है।

पंडितजी द्वारा की गई परंपरा के स्वरूप की व्याख्या के संदर्भ में डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र ने 'परंपरा का पुरुषार्थ' में 'वैदुष्य की सहज सरणि' नामक एक अध्याय लिखा है। उसमें बताया गया है कि संस्कृति का लालित्य यदि लोक उल्लास में है तो उसका ओज वैदुष्य में है। वैदुष्य का गौरव वाद-विवाद में नहीं; सभी वादों, विवादों को एक संवाद में बदल देने में निहित है। यह संवाद संस्थाओं, प्रासादों, विद्या-केंद्रों से लेकर घर आँगन तक; जनसंमर्द से लेकर विजन वन तक; गुफा-गह्वर से लेकर नदी की विशाल रेती तक व्याप्त लोक से जुड़ने की अपेक्षा करता है। इस वैदुष्य में चिड़ई-चुरुंग तक ओझल नहीं। इस वैदुष्य में हर बालिका देवी की प्रतिमा लगती है और हर बच्चा रामलला लगते हैं। यह वैदुष्य हमारा दंभ मिटाता जाता है और हमारा स्वरूप विमर्श पुष्ट से पुष्टतर बनाता जाता है। यही वैदुष्य हमें रूढ़ियों के चक्रव्यूह में फँसने से बचाता भी है।

पं. विद्यानिवास मिश्र के परंपरा संबंधी चिंतन के प्रसंग में शिवोन्मुख सौंदर्य कहकर डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र ने उनके रस-विमर्श की ओर हमारा ध्यान खींचा है। पंडितजी ने माना है कि परंपरा काठ से नहीं बनती, न ही वह कोई सिद्ध वस्तु ही होती है। उसमें एक प्रवाह होता है, जो रस का धर्म है। रस सहृदय का प्राण है। सहृदय ही संस्कृति को और संस्कृति परंपरा को सहेजना जानती है। रस राग-बोध जगाता है। वे मानते हैं कि रागबोध हमें चराचर से संपृक्त करता है। इस राग-बोध को पुष्ट आधार देते हैं मंदिरों के स्थापत्य शिल्प, भित्ति-चित्र, शास्त्रीय और उप-शास्त्रीय संगीत, खेत-पथार के गीत। पंडितजी मानते हैं कि पदार्थ का सारतत्त्व ही

कलाकृति में अपना उन्मेष पाता है। भारतीय परंपरा में कला की महनीयता उसमें निहित चैतन्य से होती है और कलाकार का उद्देश्य होता है उस चैतन्य का उद्घाटन करना।

पं. विद्यानिवास मिश्र के अनुसार मानव के समस्त कर्तृत्व मुक्ति की कामना से प्रेरित होते हैं। इनमें अभिव्यक्ति के स्तर पर तो भेद हो सकते हैं, पर उनमें जो अभिव्यक्त होना चाहता है, वह एक ही है। वह है आनंद। हम अतीत से जुड़कर वर्तमान की संभावना का विस्तार करना चाहते हैं, ताकि भविष्य की ओर आत्मविश्वास के साथ कदम उठा सकें। पं. विद्यानिवास मिश्र के अवदान का मूल्यांकन करते समय विद्वानों ने कभी उन्हें गाँव का मन कहा है तो कभी रसपुरुष कहा है। डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र ने उनके विषय में 'परंपरा का पुरुषार्थ' विरुद्ध का प्रयोग किया है। पंडितजी का विपुल निबंध संभार संबंधों की मधुर आँच पर सीझा हुआ एक वांङ्मय रूप नैवेद्य है। इस इस नैवेद्य को को उन्होंने लोकविग्रह के चरणों में अर्पित किया है। उनके साहित्य में उनकी लोकोन्मुख संवेदना सर्वत्र मुखर है। जैसा कि पंडितजी ने कहा भी है—लोक का अर्थ है, वह सब जो दृष्टि का विषय है। वह सब जो कभी था, वह सब जो आज है, और वह सब जो आगे भी रहेगा।

लोक की आस्था साझेदारी में सार्थक होती है। विगत से वर्तमान और वर्तमान से अनागत अर्थात् भविष्य की ओर जो लोक धावन कर रहा है, परंपरा उसकी रेख है। संवेदना-शून्य बुद्धिवादी प्रतिभा के आतंक से परंपरा की वह रेख क्षीणतर होती चली जा रही थी। पं. विद्यानिवास मिश्र ने अपनी संवेदना तथा लोकराग सम्मत प्रतिभा से क्षीण होती जा रही उस रेख को उभारकर लोक में प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है। इस प्रयास का ही एक ललित मूलांकन है 'परंपरा का पुरुषार्थ'। पुस्तक में डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र ने जातीय संवेदना की समग्रता पर केंद्रित परंपरा भित्तिक साधना की उपलब्धि को पं. विद्यानिवास मिश्र के साहित्य के संदर्भ में रेखांकित करने का अपना उद्देश्य हर दृष्टि से पूरा किया है।

मुख्य प्रबंधक, राजभाषा
यूको बैंक, अंचल कार्यालय
शिलपुखुरी, गुवाहाटी-७८१००३
दूरभाष : ९८७४४५९७६७
trivediajoyendranath@gmail.com

देव दीपावली

कविता

• श्रीधर द्विवेदी

देवाधिदेव हैं महादेव,
उनकी नगरी अक्षय काशी,
जो मोक्षदायिनी अविनाशी,
अद्भुत कातिक की पुनवासी।
जोड़ती अयोध्या को कासी से,
रावण विनाश त्रिपुरारी से,
शिवभक्तराम को त्रिनेत्र से,
सरयू को माँ भागीरथी से,
लोक की दीवाली को,
देवों की दीपावली से।
रघुकुल चंदन का अभिनंदन,
त्रिपुरासुर अरि पूजन वंदन,
दो तीर्थ सजे दो तीर सजे,
थे दीपान्वित माँ के आँगन।
हैं धन्य आदि शंकराचार्य,
प्रारंभ देवदीपावली की,
साक्षी था पंचगंगा स्थल,
काशीवासी हो उठे मगन।
पूरे कार्तिक भर गंगा में,
स्नान ध्यान औ दीपदान,
माँ भागीरथी को चुनरी परिधान,
पूर्णिमा समापन अनुष्ठान।
वह मनोकामना चिरसंचित,
माँ गंगा के दोनों दुकूल,
रेता तट औ नगरीय घाट,
लक्षाधिक दीपों से प्रदीप्त।
उत्फुल्ल प्रहर्षित दीप्तिमान,
प्रज्वलित दीप घोषित करते,
भारत आध्यात्मिकता चिन्मयता,
सांस्कृतिक विरासत कीर्तिमान।
प्रकाश के इस महापर्व का
समापन हुआ,
हर हर महादेव
हर हर गंगे,
जो बोले सो निहाल,
सत श्री अकाल,
निनाद महाघोष से।
समग्र देश को संदेश मिला,
अत्याचारी रावण के नाश का,
त्रिपुरासुर के महाविनाश का,
गुरु नानक के प्रादुर्भाव का।
अंतस्तल के दीप को,
सर्वदा प्रज्वलित रखने का,
जिससे अंतस का तम
छिन्न-भिन्न हो सके,
हमारे अंदर की काशी
प्रभासित रह सके।

चिकित्सा विषय पर हिंदी में लिखनेवाले प्रतिनिधि लेखक। नई दिल्ली स्थित जामिया हमदर्द के 'हमदर्द इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेज एंड रिसर्च' में डीन व प्राचार्य पद पर रहे। 'हृदयवाणी' (काव्य-संग्रह), 'तंबाकू चित्रावली', 'मैं बनारस हूँ' कृतियाँ प्रकाशित।

हमदर्द इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइंस ऐंड रिसर्च
एसोसिएटेड हकीम अब्दुल हमीद सेंटेनरी हॉस्पिटल
जामिया हमदर्द (हमदर्द यूनिवर्सिटी)
नई दिल्ली-११००६२
दूरभाष : ९८१८९२९६५९
shridhar.dwivedi@gmail.com

कहावतों-मुहावरों में कविता

● बालस्वरूप राही

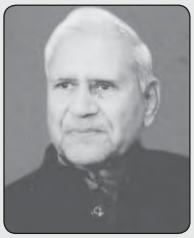

जाने-माने रचनाकार। मूलतः गीतकार। 'मेरा रूप तुम्हारा दर्पण', 'जो नितांत मेरी हैं', 'जिद बाकी है' (गीत-संग्रह), 'राग-विराग' (ऑपेरा), 'राही को समझाए कौन' (गजल-संग्रह), 'दादी अम्माँ मुझे बताओ', 'हम जब होंगे बड़े', 'बंद कटोरी मीठा जल', 'हम सबसे आगे निकलेंगे', 'गाल बने गुब्बारे', 'सूरज का रथ' (बाल-गीत-संग्रह, हिंदी व अंग्रेजी में)। उत्कृष्ट लेखन के लिए प्रकाशवीर शास्त्री पुरस्कार, साहित्यकार सम्मान, अक्षरम् सम्मान, परंपरा पुरस्कार सहित अन्य अनेक सम्मान।

काला अक्षर भैंस बराबर

पढ़ते-पढ़ते ऊबी बबली,
खूब पढ़ी वह ध्यान लगाकर,
समझ न पाई थककर बोली,
'काला अक्षर भैंस बराबर?'
बबलूजी ने भी दुहराया,
'काला अक्षर भैंस बराबर!'
फिर उसने जोड़ा मजाक में—
पढ़ना मच्छर भैंस बराबर!
बबली चौंकी तुकबंदी पर,
बोली और अधिक घबराकर,
'पढ़ो न मन से तो लगता है
काला अक्षर भैंस बराबर!'

अँगूठा दिखाना

उँगली से है बड़ा अँगूठा,
होता इसका खेल अनूठा,
उँगली भले दिखाओ सबको
किंतु दिखाना नहीं अँगूठा।
वह सोचेगा मित्र नहीं हो
प्रेम-व्रेम सारा है झूठा,
हँसकर बातें नहीं करेगा,
तुम पाओगे वह है रूठा।
काम तुम्हें जो सौंपा उसने
तुम न करोगे वह समझेगा,
मौका लगा कभी तो वह भी
ऐसा ही कौतुक कर देगा।

ऊँची दुकान फीका पकवान

ऊँची दुकान फीका पकवान सुना जब से,

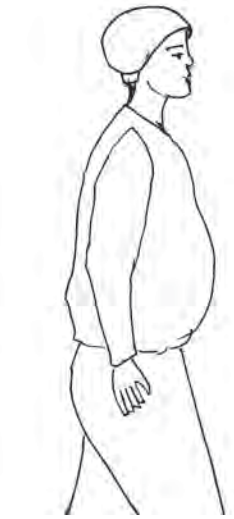

स्वीटीजी बेहद परेशान हैं बस तब से।
जब भी शॉपिंग करने जातीं वह कहीं कभी,
सब से पहले तो यही देखतीं छोड़ सभी—
कैसी दुकान है, क्या इसकी ऊँची है छत,
ऊँची दुकान होगी तो होगा बड़ा गलत।
हम इस दुकान से जो भी माल खरीदेंगे,
फीका होगा कितने ही पैसों में लेंगे!
ऊँची दुकान का मतलब समझ नहीं पाई,
बस इसीलिए वह बाजारों में चकराई।
ऊँची दुकान का मतलब तामझाम होता,
जिसमें जाकर ग्राहक अपने पैसे खोता।
छत नाप-नापकर शंका करना है फजूल,
स्वीटीजी कब समझेंगी अपनी यही भूल।

दाल में काला

बस तो ठीक समय पर आई
गौरव लौटा नहीं मगर,
मम्मी को चिंता ने घेरा
बैठ गई दरवाजे पर।

उसको लगा कि कुछ गड़बड़ है
कहीं दाल में काला है,
किसी मित्र के साथ चल दिया
बच्चा जरा निराला है।
गौरव ने आकर बतलाया,
'निकल गए थे हम पिक्चर,
इसीलिए अपनी बस छूटी
आए हैं लेकर स्कूटर।'
मम्मी की आशंका सच थी
यही दाल में काला था,
गौरवजी ने बिना बताए
प्रोग्राम रच डाला था।

जिसकी लाठी उसकी भैंस

लल्लू ने आकर दादू से
माँगे रुपए दो सौ बीस,
दादू बोले—'भर तो दी है
हमने कब की तेरी फीस।'
लल्लू बोला—'दादूजी मैं
परसों जाऊँगा बाजार,
लाठी एक खरीदूँगा मैं
नहीं करूँगा कुछ बेकार।'
जिसकी लाठी भैंस उसी की
सुनी आप ने होगी बात,
लाठी ले आऊँगा मैं तो
भैंस मिलेगी हाथोहाथ।'
दादू हँसे जोर से, बोले—
'लल्लू, तू तो है मासूम,
यह तो एक कहावत भर है
तुझे नहीं यह भी मालूम!'
इसका मतलब बस इतना है—
बलवानों का चलता राज,
जो समर्थ है बस उसके ही
सध पाते हैं सारे काज।

डी-१३ ए/१८ द्वितीय तल,
मॉडल टाउन, दिल्ली-११०००९
दूरभाष : ०११-२७२१३७१६

पाठकों से निवेदन

- जिन पाठकों की वार्षिक सदस्यता समाप्त हो रही है, कृपया वे सदस्यता का नवीनीकरण समय से करवा लें। साथ ही अपने मित्रों, संबंधियों को भी सदस्यता ग्रहण करने के लिए प्रेरित करने की कृपा करें।
- सदस्यता के नवीनीकरण अथवा पत्राचार के समय कृपया अपने सदस्यता क्रमांक का उल्लेख अवश्य करें।
- सदस्यता शुल्क यदि मनीऑर्डर द्वारा भेजें तो कृपया इसकी सूचना अलग से पत्र द्वारा अपनी सदस्यता संख्या का उल्लेख करते हुए दें।
- चैक साहित्य अमृत के नाम से भेजे जा सकते हैं।
- ऑन लाइन बैंकिंग के माध्यम से बैंक ऑफ इंडिया के एकाउंट नं. 600120110001052 IFSC–BKID 0006001 में साहित्य अमृत के नाम से शुल्क जमा कर फोन अथवा पत्र द्वारा सूचित अवश्य करें।
- आपको अगर साहित्य अमृत का अंक प्राप्त न हो रहा हो तो कृपया अपने पोस्ट ऑफिस में पोस्टमैन या पोस्टमास्टर से लिखित निवेदन करें। ऐसा करने पर कई पाठकों को पत्रिका समय पर प्राप्त होने लगी है।
- सदस्यता संबंधी किसी भी शिकायत के लिए कृपया फोन नं. 011-23257555, 8448612269 अथवा sahityaamritindia@gmail.com पर इ-मेल करें।

कहानी

इस गरीब की 'कास्ट' क्या है

● मुकेश शर्मा

आदर्श लाल मेरे पुराने घनिष्ठ मित्र हैं। हम दोनों एक ही गाँव के हैं और स्कूल के समय के सहपाठी हैं। बी.ए. करने और स्टेनोग्राफी का कोर्स करने के बाद भी आदर्श को कई साल तक नौकरी नहीं मिली। लिहाजा धोती, बनियान में उसे खेत में ही फावड़ा चलाना पड़ा। उन दिनों उसे गाँव में आद्दू बावला कहते थे। फिर किस्मत ने जोर मारा और उसे सेल्स टैक्स विभाग में स्टेनो की नौकरी मिल गई। स्टेनो की नौकरी मिलते ही गाँव का आद्दू बावला गाँव का लाड़ला आदरस बन गया।

प्रमोशनी कूद-फाँद करते-करते आद्दू बावला से आदरस, फिर आदरस से आदरस भाई साहब और फिर केवल साहब कहलाने लगा, यानी कल का स्टेनो समय बीतते-बीतते सेल टैक्स ऑफिसर बन गया। अब साहब हो चुका था कागजों का कीड़ा, चपरासी से सेल टैक्स ऑफिसर तक कहाँ-कहाँ क्या खेल होता है, कागजों में कमी कैसे निकालते हैं, कोई कमी हो तो उसे दूर कैसे करते हैं, हर बात में हरफनमौला। अधिकारी बनने के बाद भी स्टेनोवाली आदतें गई नहीं थीं, इसलिए साहब हर छोटा-छोटा हिसाब लगाकर अपना मौखिक बिल व्यापारी को सुना देते थे।

साहब की लाइफ के फंडे बड़े क्लीयर थे। वे कहते थे—पहला नियम, यदि रुटीन का सही काम समय पर निपटाने के नाम पर ही सुविधा-शुल्क मिल जाए तो भला बेईमानी क्यों करें? दूसरा नियम, यदि थोड़ी-बहुत गड़बड़ करके ही ठीक-ठाक 'फीस' मिल जाए तो यहाँ तक परहेज नहीं होना चाहिए। तीसरा नियम, यदि फाइल कवर को छोड़कर बाकी फाइल के अंदर के सारे पेपर बदलने पड़ जाएँ और ऐसा करने से उनके साथ-साथ किसी अन्य भाई का भी भला होता हो तो किसी का भला क्यों नहीं करें? अब सरकारी काम तो यों ही चलते रहते हैं। किसी का काँटा निकाल दिया तो कोई पाप कर दिया क्या? अन्य विषयों पर भी उनकी कुछ ऐसी ही फिलॉसफी थी।

अब आप सोच रहे होंगे कि ये तो सरकारी दफ्तरों की बातें आम हैं, मैं भला ये भूमिका क्यों बना रहा हूँ? भूमिका की जरूरत क्यों पड़ी, ये अभी आपको स्पष्ट हो जाएगा। दरअसल बचपन का सहपाठी होने के कारण मैं हूँ साहब का शुभचिंतक, लिहाजा मैं उन्हें कुछ भलाई के मशवरे देता रहता हूँ। शाम को साथ-साथ 'ठंडा-गरम' पीते-पीते मैंने साहब के दिमाग में एक बात बैठा दी थी कि महीने में जो भी 'नंबर दो की इनकम' होती है, उसमें से दस फीसदी राशि अलग निकालकर दान-पुण्य में खर्च करता रहे, ताकि उसके पाप-पुण्य का संतुलन बना रह सके। फिर मैं समय-समय पर उससे इस तरह के खर्च कराता रहता था। यद्यपि स्वभाव से मूँजी (कंजूस) होने के बावजूद दो-चार थपकी मारने पर वह ऐसे खर्च करने को तैयार हो जाता था और ऐसे मौकों पर वह स्वयं को कुछ महान् महसूस करता था।

अब तक तीन पुस्तकें लघुकथा पर, एक कहानी-संग्रह; एक पुस्तक कानून पर अंग्रेजी में। कहानी-लेखन में हरियाणा साहित्य अकादमी से प्रथम पुरस्कार। रचना-कर्म पर एम.फिल., विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम में लघुकथा शामिल। संप्रति विश्व भाषा अकादमी (रजि.), भारत में चेयरमैन पद का दायित्व।

किसी मंदिर, धर्मशाला (उनकी बिरादरी की, दूसरी नहीं) में चंदा देना हो, किसी गरीब विद्यार्थी की स्कूल, कॉलेज की फीस भरनी हो, किताबें दिलानी हों तो साहब अपनी श्रद्धानुसार कुछ राशि दे देते थे। ये सब करते-करते उन्हें कुछ धर्म-कर्म पर लैक्चर देना भी अच्छा लगने लग गया था। व्यापारी से सारी काररवाई निपट जाने के बाद ही वे अपना ऐसा लैक्चर शुरू करते थे, इससे पहले नहीं। सबकुछ ठीक-ठाक चल रहा था, किंतु तभी हमारा वास्ता पड़ गया एक गरीब विद्यार्थी से, जिसका नाम आर.जे. था।

माली-हालत दयनीय होने के बावजूद आर.जे. एक प्राइवेट कॉलेज से इंजीनियरिंग कर रहा था। पार्ट-टाइम ट्यूशन पढ़ाने के बाद भी कई बार फीस भरने की स्थिति में नहीं होता था। दो बार मैं उसकी मदद कर चुका था। वह मुझे 'असामी' न समझने लगे, इसलिए दूसरी बार मदद करते समय मैंने उसे स्पष्ट कर दिया था कि तीसरी बार वह मेरे पास फीस भरवाने के लिए न आए। वह नहीं आया। तभी किसी जानकार ने बताया कि फीस न भर पाने के कारण उसने अन्य जानकार लोगों से भी मदद माँगी, किंतु किसी ने उसकी मदद नहीं की। इसलिए आज वह कॉलेज के बाहर फूट-फूटकर रो रहा था। फिर दया आ गई। संदेशा भेजकर आर.जे. को बुलवा लिया। अब साहब भला कब काम आएँगे?

मिला दिया साहब को फोन, "गरीब विद्यार्थी है, फीस भरनी है, इसी दस तारीख तक।" इसके एवज में साहब ने जो पूछा, उससे दिमाग चकरा गया। उन्होंने पूछा, "अरे भई, इस गरीब की 'कास्ट' क्या है?" आर.जे. से मैंने कभी उसकी जाति नहीं पूछी थी, कभी यह बात दिमाग में आई ही नहीं तो भला पूछता किससे? अब मुझे उसकी जाति पता हो तो बताऊँ। लेकिन साहब की राय स्पष्ट थी, "भई, अब पूरे देश का ठेका तो उठाया नहीं जा सकता।" अब यदि गरीब आदमी साहब की कास्ट का हो तो उसके पास भेज दूँ, नहीं तो उसे अपने स्तर पर ही फारिग कर दूँ। ये भी उन्होंने स्पष्ट कर दिया था। और कहीं से मदद मिलने की उम्मीद नहीं। अब तो कास्ट पूछनी ही पड़ेगी।

शनिवार की शाम थी। मतलब आज साहब और मैं, दोनों साथ बैठ कर पैग लगा लेंगे और एक-दूसरे को अपने दुखड़े सुना लेंगे। आर.जे. को भी घर ही बुला लिया। प्रोग्राम शुरू करने से पहले इससे निपट लेते हैं।

दोनों महानुभाव पहुँच गए तो नौकर ड्राइंगरूम में जूस के तीन गिलास रख गया। आर.जे. की हवाइयाँ उड़ी हुई थीं और मैं समझ नहीं पा रहा था कि ये 'कास्ट' वाली बात कैसे शुरू करूँ? साहब ने मेरी मुश्किल को हल कर दिया। उन्होंने सीधे-सीधे ही पूछ लिया, "बेट्टा, कौन सी बिरादरी का है?"

"बिरादरी मींस रिलीजन?" आर जे झिझका।

"रिलीजन नहीं बेट्टा, जात : गौत? (जाति : गौत्र)

"कास्ट? अंकल, वो तो मुझे भी नहीं मालूम?"

"अबे बावली बूच··· तुझे अपनी कास्ट भी नहीं पता। कैसे इंजीनियर बनेगा तू?" साहब ने चुटकी ली, "तेरे पाप्पा का नाम क्या है? पूरा नाम बोलियो।"

"अंकल···"

"अबे अंकल का नहीं, पाप्पा का नाम बोल!"

साहब के सीधे प्रहार के सामने आर.जे. पस्त हो गया। जाति बताने के नाम पर उसने जो अपनी आप-बीती सुनाई, उसे सुनकर साहब के साथ-साथ मैं भी बगलें झाँकने लगा।

आर.जे. ने बताया कि जब उसका जन्म हुआ तो उसके माँ-बाप उसे कस्बे की आयुर्वेदिक डिस्पेंसरी के बाहर छोड़कर गायब हो गए थे। इस डिस्पेंसरी को एक बूढ़े डॉक्टर शुक्ला चला रहे थे। लावारिश शिशु को देखकर डॉक्टर साहब का दिल पसीज गया। उन्होंने पुलिस को सूचना दी, कस्बे में लापता शिशु के परचे भी लगवाए, किंतु कोई परिणाम नहीं निकला। जब मसले का कोई हल नहीं निकला तो डॉक्टर साहब ने अपने नौकर के दम पर शिशु के पालन-पोषण की जिम्मेदारी ले ली। उसे जन्म देनेवाले माँ-बाप किस जाति या धर्म के थे, यह पता ही नहीं चल पाया। डॉक्टर साहब भगवान् से डरनेवाले, पूजा-पाठ करनेवाले ब्राह्मण थे और उन्होंने अब मुझे अपने पुत्र के रूप में अपना लिया था, इसलिए यहाँ तक मेरी जाति बाह्मण समझी जाए।

लोग कहते हैं कि शिशु का नामकरण करने के लिए डॉक्टर साहब कई दिन परेशान रहे। लोग टोकते तो वे कहते, "अरे भइया, ये इंडिया है। यहाँ नाम भी सोच-समझकर ही रखना पड़ता है। काफी सोच-विचार करने के बाद उन्होंने मेरा नाम रख दिया, राम जॉन मोहम्मद सिंह उर्फ राम उर्फ जॉन उर्फ जान मोहम्मद उर्फ आर.जे.एम. सिंह। वे कहते थे बेटे, मौके के मुताबिक तुम्हें अपना नाम बताना है। हिंदू पूछे तो राज, मुस्लिम पूछे तो जान मोहम्मद, सिख पूछे तो आर.जे.एम. सिंह और कोई क्रिश्चियन पूछे तो जॉन। तभी यहाँ ठीक से सैट हो पाएगा। लंबा नाम था, इसे थोड़ा शार्ट करके मैंने मित्रों को बताया—आर.जे.। अब सभी मुझे आर.जे. बोलते हैं।

लेकिन बदनसीबी ने यहाँ भी मेरा पीछा नहीं छोड़ा। जब मैं छठी कक्षा में पढ़ता था तो डॉक्टर साहब का निधन हो गया। विदेश से उनके बच्चे आए और सारे क्रिया-कर्म करके, कस्बे के उनके पुराने मकान और डिस्पेंसरी को बेचकर वापस विदेश चले गए। मैं दोबारा लावारिस हो गया। डिस्पेंसरी में झाड़ू लगाने आता था सफाई कर्मचारी रामदीन। रामदीन के विवाह को पंद्रह वर्ष हो चुके थे और उसे कोई संतान नहीं थी। डॉक्टर साहब के नौकर ने मुझे रामदीन के हवाले कर दिया और स्वयं अपने गाँव चला गया।

रामदीन और उसकी पत्नी ने मुझे छाती से लगा लिया और सही मायनों में मुझे वही प्यार दिया, जो माँ-बाप अपने बच्चो को देते हैं। मैं उनके अहसानों को चुका नहीं सकता। अब मेरी माँ का नाम है—रामप्यारी और मेरे पिता का नाम है—रामदीन। इस दृष्टि से मेरी जाति है दलित। सर, गरीब की कोई कास्ट होती है क्या? गरीब तो गरीब ही है, फिर वह चाहे ब्राह्मण हो या दलित? और मैं तो सर, ब्राह्मण और दलित दोनों ही हूँ, तो क्या आप इस दलित-ब्राह्मण की मदद करेंगे?"

साहब बगलें झाँक रहे थे। मैंने विषय बदलने की कोशिश करते हुए तुरंत नौकर को सोडा, बर्फ, बोतल लाने का आदेश दे दिया। इतने में साहब सँभल गए, "बेट्टे! सोमवार को मेरे ऑफिस में आकर मुझसे मिलो।" और उन्होंने ऑफिस का रास्ता भी आर.जे. को समझा दिया।

सोमवार को मैं लंच-टाइम तक अपने काम से फ्री हो गया। आर.जे. की कहानी सुनकर सिर घूमा हुआ था। साहब ने आर.जे. की कॉलेज फीस का भुगतान किया था या नहीं किया था। यह भी जानना था।

क्योंकि हमारे साहब बहादुर न तो ब्राह्मण हैं और न ही दलित। इसलिए थोड़ा अंदेशा भी था कि कहीं वह गरीब की कास्ट के चक्कर में गच्चा न दे जाएँ। लिहाजा मैं भी साहब के ऑफिस पहुँच गया। वहाँ पहुँचकर पता चला कि आर.जे. तो आया ही नहीं।

शाम के चार बज गए थे। तभी कमरे का परदा हटाकर मुसकराता हुआ आर.जे. भीतर आ गया।

"लेट हो गए!"

"हाँ सर! कुछ मसला ही ऐसा था।"

"हूँ···ठीक!"

"सर! आज मेरी फीस को लेकर सभी विद्यार्थियों ने मीटिंग की और दो प्रस्ताव पास कर दिए। जब सारे विद्यार्थी कॉलेज की मैनेजमेंट से जाकर मिले तो मैनेजमेंट को उनकी बात माननी पड़ी। अब सभी सत्रों के लिए मेरी फीस माफ कर दी गई है, सर···" आर.जे. खुशी से गद्गद था।

"ये प्रस्ताव पास किया?"

"नहीं सर! सभी विद्यार्थियों ने दो प्रस्ताव पास किए। एक तो कोई भी विद्यार्थी अपने नाम के साथ सरनेम नहीं लिखेगा, ताकि यह कास्ट के आधार पर भेदभाव न हो सके।"

"और दूसरा··· ?"

"दूसरा यह कि जब हम विवाह योग्य हो जाएँगे तो अपने माता-पिता को कहेंगे कि आपसी सहमति से हमारा अंतरजातीय विवाह करें, ताकि रिश्तेदार बन जाने पर अलग-अलग जाति के परिवारों में आपस में समरसता आ जाए।"

"खों-खों-खों···" साहब को लगातार खाँसी आ गई।

मैंने तुरंत साहब की मेज पर रखी घंटी बजाई और पीने को पानी लाने के लिए बोल दिया।

साअ

म.नं.-१४२, पार्ट-६, सेक्टर-५
गुरुग्राम-१२२००१ (हरियाणा)
दूरभाष : ९८१००२२३१२

पुस्तकों का गाँव 'भिलार'

• दामोदर खड़से

पाठकों की प्रतीक्षा में पुस्तकें बंद अलमारी के शीशों के अंदर से बड़ी हसरत से ताकती हैं। पिछले कुछ वर्षों से तमाम तरह के दूसरे माध्यमों ने पाठकों को अपनी ओर खींच लिया है। इंटरनेट के कई माध्यमों ने अपना प्रभाव जमा लिया है। युवा-वर्ग इस दिशा में मुड़ता दिखाई देता है। पहले रेडियो, फिर प्रारंभिक अवस्था के टी.वी.-दूरदर्शन ने अपना स्थान बना लिया, पर इस पर अधिकांशत: पुस्तक-संस्कृति के बदले हुए रूप का प्रभाव था। बाद में समय के साथ तेज गति के बहुचैनल वाला टी.वी. आया और मनोरंजन का असीमित 'सिमसिम' खुल गया। इसके साथ ही इंटरनेट ने भी अपनी अहमियत दाँव पर लगा दी। भौतिकता और स्पर्धात्मकता के दौर ने हाथ से पुस्तक छीनकर मोबाइल व कंप्यूटर थमा दिया। यह समय-चक्र पुस्तकों के प्रति उदासीनता बो गया है।

सामान्यत: पुस्तकें साहित्य के भंडार के रूप में जानी जाती रही हैं। इसमें ज्ञान और मनोरंजन के साथ जीवन के प्रतिबिंब देखे जाते हैं। मनुष्य के भीतरी विकास के लिए जीवन के लिए विविध चित्रों के साथ सामाजिक, राजनैतिक, आध्यात्मिक आदि विशेष स्थितियों और अनुभूतियों को जानने की प्यास पुस्तकों से बुझाई जाती रही है। दुनिया के प्रगति-प्राप्त देशों की तुलना में हमारे देश में पुस्तकें कम मात्रा में प्रकाशित होती हैं। एक सर्वेक्षण २००६ में आया, जिसके अनुसार उस वर्ष अमेरिका में ७५ हजार, इंग्लैंड में ५३ हजार, चीन में ३२ हजार और भारत में २८ हजार पुस्तकें प्रकाशित हुईं। वहीं पाकिस्तान में १३, इंडोनेशिया में १० और बांग्लादेश में ९ हजार पुस्तकों का प्रकाशन हुआ। बढ़ते समय के साथ इनकी संख्या निरंतर बढ़ रही है। २०१३ के सर्वेक्षण में पुस्तकों की संख्या में जबरदस्त उछाल देखा जा सकता है। इसमें पहले स्थान पर चीन पहुँच गया है—चीन में ४ लाख ४० हजार, अमेरिका में ३ लाख ५ हजार, इंग्लैंड में १ लाख ८४ हजार, भारत में ९० हजार और पाकिस्तान में ३८११ पुस्तकें प्रकाशित हुईं। यह संख्या रिकॉर्ड की गई पुस्तकों की है। हमारे देश की ९० हजार पुस्तकों का यदि भाषावार हिस्सा देखें तो हिंदी का सबसे अधिक २६ प्रतिशत, अंग्रेजी २४ प्रतिशत और शेष ५० प्रतिशत भारत की अन्य क्षेत्रीय भाषाओं का है। इन आँकड़ों को देखने से स्पष्ट होता है कि पुस्तकों की संख्या तो वर्ष-दर-वर्ष बढ़ रही है। २०१६ में मराठी साहित्य सम्मेलन पिंपरी, पुणे में आयोजित किया गया था। इस सम्मेलन में ४०० बुक-स्टाल लगाए गए थे। इन चार दिनों में छह करोड़ रुपयों की पुस्तक-बिक्री रिकॉर्ड की गई।

सुपरिचित कवि-कथाकार। अब तक नौ कविता-संग्रह, आठ कथा-संग्रह, चार उपन्यास, तीन यात्रा एवं भेंट-वार्त्ता तथा इक्कीस पुस्तकों का मराठी से हिंदी में अनुवाद; कुछ पुस्तकों का संपादन भी। केंद्रीय साहित्य अकादेमी नई दिल्ली का अकादेमी पुरस्कार, महाराष्ट्र भारती अखिल भारतीय हिंदी सेवा सम्मान तथा कई अन्य सम्माान। अमेरिका, दक्षिण अफ्रीका, नेपाल, थाईलैंड, मॉरीशस, इंगलैंड की विदेश-यात्रा।

उपर्युक्त आँकड़े पुस्तक-प्रकाशन की स्थिति दरशाते हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि पुस्तक-संस्कृति पर संकट क्यों गहरा रहा है? इन आँकड़ों से ऐसा लगता है कि साहित्येतर पुस्तकों की ओर पाठकों, जरूरतमंदों का रुझान अधिक है। ज्ञान, तकनीक और व्यावहारिकता की ओर लोग अधिक झुक रहे हैं और साहित्य की ओर रुझान संभवत: कम प्रतीत हो रहा है। इंटरनेट पर तमाम पत्रिकाएँ और पुस्तकें भी उपलब्ध हैं; लेकिन साहित्यिक सामग्री का रसास्वादन पुस्तकों को हाथ में लेकर पढ़ने में मिलता है। इसके लिए बहुत बड़े पैमाने पर वाचन-संस्कृति को विकसित करने की आवश्यकता है। ऐसा वातावरण बनने पर पुस्तक-संस्कृति को पुनर्स्थापित करने में मदद मिल सकती है।

मुंबई में 'बुक्स ऑन व्हील्स' है, जो मराठी साहित्य और हिंदी-मराठी पुस्तकों की बिक्री करती है। पुणे में कुछ प्रकाशकों की ऐसी मिनी बसें हैं, जो अलग-अलग क्षेत्रों में पुस्तकों को लोगों तक पहुँचाती हैं।

मराठी साहित्य सम्मेलन के अवसर पर 'ग्रंथ दिंडी' अर्थात् झाँकी निकाली जाती है, ताकि लोगों में पुस्तक-वाचन के प्रति रुचि बढ़ सके। भारत के विभिन्न स्थानों पर पुस्तक-मेलों का आयोजन होता है। जनवरी में दिल्ली में 'विश्व पुस्तक-मेला' का आयोजन पुस्तकों के प्रति जन-जागरण और पुस्तक-प्रसारण में सहायक सिद्ध होता है।

अभी हाल ही में मैं महाबलेश्वर की यात्रा में था। यात्रा में मील के पत्थर, गाँव-शहरों की तख्तियाँ, दूरियों की जानकारी अनायास ध्यान खींच लेते हैं। यात्रा गतिशील थी। अचानक आँखों के सामने पुस्तकों का गाँव ८७ कि.मी. तख्ती पढ़ते ही नजर भीतर तक ठिठक गई। महीनों पहले 'भिलार' गाँव चर्चा में आया था, जिसे महाराष्ट्र सरकार ने 'पुस्तकों का गाँव' घोषित किया और उद्घाटन किया। जिसकी खबरें पढ़ी थीं, वही भिलार गाँव। इसकी दिशा मालूम ही थी। महाबलेश्वर की ही दिशा में है या कहीं और ? नजर अब 'पुस्तकों का गाँव' की तख्ती पर लगी रही। फिर रुककर स्थानीय लोगों से पूछने पर मालूम हुआ कि भिलार गाँव महाबलेश्वर के बिल्कुल पास में ही है। बस क्या था, पहले 'पुस्तकों के गाँव' ही पहुँच गया। जगह-जगह पुस्तकों के चित्र, तख्तियाँ ''भारत का प्रथम पुस्तकों का गाँव!

ग्रामीणों के घरों में पुस्तकें '''लगभग २५ घरों में लगभग १५ हजार पुस्तकों का भंडार। घर के सामने तख्ती लगी है—विधा की और दीवारों पर विधा से संबंधित विविध चित्र। प्रवेश करते ही उपन्यास का घर, फिर बाल साहित्य, विज्ञान, इतिहास, जीवनी, क्रीड़ा, शिवकालीन इतिहास-किले, परिवर्तन-आंदोलन, कहानी, स्त्री-साहित्य, कविता, संत-साहित्य, प्रकृति-पर्यटन-पर्यावरण, लोक-साहित्य, ललित-वैचारिक, हास्य-व्यंग्य, विविध कला विषयक, विविध लोकप्रिय व पुरस्कार प्राप्त पुस्तकें अलग-अलग घरों में रखी गई हैं। वहाँ बैठने की व्यवस्था है। पुस्तकों की सूची है। हर केंद्र में प्रतिक्रिया-स्वरूप 'भेंट पुस्तिका' रखी गई है। पुस्तकों का आदमकद स्टैंड, एक बड़ी अलमारी, चार कुरसियाँ और एक टी-पॉय सरकार द्वारा उपलब्ध कराए गए हैं। पुस्तकें बिल्कुल नई और महत्त्वपूर्ण हैं। जिनके घरों में पुस्तकें रखी गई हैं, उन्होंने स्वयं अपने यहाँ स्थान और रख-रखाव का प्रस्ताव रखा। बहुत आतिथ्यशील और पुस्तक-प्रेमी स्वप्रेरित आयोजकों ने विभिन्न जानकारी दी और लगभग सभी ने बताया कि प्रारंभ से अब चार महीने तक लगभग एक हजार पाठकों ने इस प्रयास का लाभ उठाया है।

भिलार गाँव में ही महाराष्ट्र सरकार के सांस्कृतिक कार्य विभाग ने एक कार्यालय स्थापित किया है, जहाँ कार्यालय में स्थायी कर्मचारी हैं। यह वर्ष ज्ञानपीठ द्वारा सम्मानित विंदा करंदीकर का जन्म-शताब्दी वर्ष है। इस अवसर पर विभिन्न पोस्टर, जानकारी, पुस्तकें इस कार्यालय में उपलब्ध हैं। सभी संबंधितों में उत्साह, सदाशयता, आतिथ्यशीलता और पुस्तक-प्रेम अनायास ही झलकता है। पूरा गाँव स्ट्रॉबेरी के उत्पादन का मुख्य केंद्र है। आज सारा समाज जहाँ राजनीति की चर्चा में व्यग्र है, वहाँ यह गाँव पुस्तक-संस्कृति के लिए जिस तरह समर्पित है, यह एक उत्साहजनक मील का पत्थर है।

ऐसा अभिनव गाँव महाबलेश्वर से ८ कि.मी. और पंचगनी से ३ कि.मी. की दूरी पर है। सह्याद्रि की तराई में बसा साफ-सुथरा, प्रकृति की अद्भुत छटाओं का भागीदार, स्ट्रॉबेरी की उन्नत फसलों के लिए विख्यात, संपन्न और सुरुचि-संपन्न गाँव भिलार जब देश का पहला 'पुस्तकों का गाँव' बना, तब सबका ध्यान इस ओर गया। महाराष्ट्र के पूर्व मुख्यमंत्री देवेंद्र फडणवीस ने इसका उद्घाटन किया। महाराष्ट्र के शिक्षा और संस्कृति मंत्री श्री विनोद तावड़े इस अवसर पर उपस्थित थे। इसका उद्घाटन भी अभिनव ढंग से हुआ। पूरे गाँव और पच्चीस केंद्रों पर एक फिल्म तैयार की गई और इस अवसर पर दिखाई गई। सरकार की पहल और ग्रामीणों के सहभाग का यह अनोखा संयोग है। ब्रिटेन में इस प्रकार का 'हे ऑन वे' नामक पुस्तकों का गाँव है। शिक्षा मंत्री ने अपने ब्रिटेन के दौरे के अवसर पर इस गाँव को भेंट दी थी और ऐसा गाँव महाराष्ट्र में साकार करने का निश्चय किया। भिलार गाँव इस निश्चय का भागीदार बना।

विश्व की पहली पुस्तक 'गुटनबर्ग बाइबल' थी, जो १४५५ में छपी। भारत में पहली पुस्तक १५५६ में गोवा में पुर्तगाली भाषा में प्रकाशित हुई। भारत में १५७८ में 'टंपीरण वड़क्कम' तमिल भाषा में छपी। हिंदी की पहली पुस्तक, जो हिंदी व्याकरण के रूप में थी, १७९६ में प्रकाशित हुई। इसे कलकत्ता (वर्तमान कोलकाता) के क्रॉनिकल प्रेस ने छापा था। विश्व में पुस्तकों का पहला गाँव ब्रिटेन में है और भारत का पहला 'पुस्तकों का गाँव' ४ मई, २०१७ को भिलार बना।

आज की स्थिति यह है कि पुस्तकों की ओर समाज का ध्यान कम जा रहा है। अन्यान्य कारणों से पाठक-वाचक पुस्तकों के प्रति कुछ विमुख दिखाई देने लगे हैं। विज्ञान के अन्वेषणों ने नए माध्यमों के विकल्प दिए हैं। लेकिन गतिशीलता और तात्कालिकता से ऊपर पुस्तकों का अपना यह महत्त्व अक्षुण्ण रहेगा। विभिन्न स्तरों पर पठन-पाठन के प्रति रुचि और जागृति पैदा होने से पाठक अनायास ही पुस्तक-संस्कृति के संवर्धन के लिए आगे आएँगे।

बी-५०३-५०४, हाई ब्लिस, कैलाश जीवन के पास,
धायरी, पुणे-४११०४१
दूरभाष : ९८५००८४९६
damodarkhadse@gmail.com

हमारा असली नववर्ष

• गोपाल चतुर्वेदी

दिसंबर की आधी रात से जो शुरू होता है, वह भारतीय नववर्ष न होकर एक अंग्रेजी उत्सव है, जो अंग्रेज हमें अपनी भाषा की गुलामी के साथ 'बाई वन, गैट वन' फ्री में दे गए हैं। मूल रूप से यह शहरों का त्योहार है, वहाँ के वासियों में से भी कुछ गिने-चुने लोगों का। सात-तारा होटलों से प्रेरित होकर हमारे नगर के 'ढाबे' भी इस अवसर पर विशेष रूप से सजते ही नहीं, स्पेशल 'मैन्यू' भी प्रस्तुत करते हैं। उन्हें एक ही दु:ख है। उस दिन वह नाच-गाने का कार्यक्रम किसी प्रसिद्ध सिने तारिका के साथ आयोजित नहीं कर पाते हैं। न ठीक आधी रात को कुछ पलों के लाइट ऑफ करके 'हैप्पी न्यू ईयर' का बेसुरा कोरस दोहराने में सक्षम हैं। यों इस पराए नए का वर्ष बेसुरा स्वागत होना ही होना। मोटी प्रवेश शुल्क की राशि चुकाकर, और एवज में फ्री की दारू चढ़ाकर, वह सुर क्या, होश से भी बेसुध हैं। कुछ उलटी कर रहे हैं, कुछ करने के कगार पर हैं। बड़े अफसर, सियासत की हस्तियाँ मुफ्त में आमंत्रित हैं। उन्हें 'पास' की सुविधा है, जो उनके भक्तों अर्थात् उद्योगपतियों ने अपने निहित स्वार्थ के खातिर, मोटी राशि देकर खरीदी और उन्हें उपलब्ध कराई है।

कुछ इन 'खासों' में भी खासमखास हैं। उनके लिए 'सुइट' का प्रबंध है। चाहे तो वहीं रात बिताएँ। दुनिया की नजरों से छिपकर रँगरलियाँ करें और सुबह नहा-धोकर, तरो-ताजा होकर नए साल की आगवानी। यह ठाठ सीमित संख्या में भी, सीमित भाग्यशालियों के हैं, वरना अधिकांश बाबू-बड़े बाबू तो गिफ्ट-भेंट से ही संतुष्ट हैं। इनमें भी कुछ छँटे, स्कूटर नहीं, तो सस्ती छोटी कार भी हथिया लेते हैं, अपनी लंबी और बिना उफ की गई मालदार ठेकेदार की सरकारी सेवा के लिए। न ठेकेदार के बिल पर आपत्ति लगती है, न उसके ठेके की अनाप-शनाप राशि पर। यह भेंट-गिफ्ट की त्योहारी परंपरा अंग्रेजों की ही आयातित देन है। कंपनी काल से सामंती राजा-बादशाहों को वह अपने हित व स्वार्थ-साधन के लिए कुछ-न-कुछ 'नजराना' देते रहे। गोरों की इस छोटी सी भेंट में इन शासकों को ऐसा उल्लू बनाया कि कब वह शासक से शासित हो गए, उन्हें पता ही नहीं चला।

सरकार ऐसे अपने दो हाथ की मानसिकता वाले कर्मचारियों के प्रति खासी उदार है। वह एक हाथ से लेते और दूसरे हाथ से देते हैं। जो वह ऐसी दरियादिली से लुटाते हैं, वह हमारी-आपकी कमाई की खून-पसीने की रकम पर लगा आयकर है। जानकारों का मत है कि यह भ्रष्टाचार न होकर सदाचार का सामूहिक प्रयास है। इसकी 'दर' आम राय और बाजार के रुख से निर्धारित होती है। इसके पीछे महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि सरकारी कर्मी और ठेकेदार दोनों में उसे किसी को भी यह दंड न लगकर कागज या फाइल का नॉर्मल भ्रमण या एक मेज से दूसरी तक जाने के सफर का व्यय है। कहने को भारतीय रेल जनता की संपत्ति है। पर उसमें भी सफर का शुल्क तो लगता ही है। बाबू-बड़े बाबू भी दिन-रात सरकार की सेवा में निस्स्वार्थ जुटे रहते हैं। यदि उनके भी रसद-राशन का प्रबंध इस तकनीक द्वारा हो जाए तो इस में किसे आपत्ति होगी?

वेतन तो दहेज, मंदिर के प्रसाद, पान-सिगरेट, हारी-बीमारी जैसे फुटकर और अनिवार्य खर्चों के लिए सुरक्षित रहे, वरना सरकार में काम करने का लाभ ही क्या है? ज्ञानी-विज्ञानी सभी कहते हैं कि वर्तमान सदी तकनीक का युग है। लाजमी है कि सरकारी कर्मी भी इसका पालन करें। इस तकनीक में से किसी को शिकायत क्यों हो? इसके पीछे मिल बाँट के खाने, पूरे दफ्तर के सहअस्तित्व और 'सर्वजन सुखाय' की शक्ति निहित है। यह प्रबंधन का अनुकरणीय भारतीय उसूल है। धीरे-धीरे इसका व्यापक अनुकरण लाजमी है और प्रसार होना ही होना। अनिवार्य है कि ऐसा होकर रहे। कोई आश्चर्य नहीं जबकि विश्व भारत को ज्ञान का ही नहीं, प्रबंधन का भी गुरु मानने लगे। भारतीय व्यवस्था कोरोना जैसी संक्रमणीय है। एक बार किसी को लगे तो उसका कोई निदान नहीं है, न उसके उन्मूलन की कोई वैक्सीन है। वक्त के साथ विश्व को स्वीकार करना पड़ेगा कि जैसे हमने सूझ-बूझ के साथ कोरोना का प्रबंधन किया है, वैसे ही हम दफ्तर प्रशासन की कार्यकुशलता में भी सक्षम हैं। कोर्ट-कचहरी कितना भी प्रयास करें। करते-करते इस व्यवस्था में ढलें भले ही, परिवर्तन लाने में असमर्थ हैं। भ्रष्टाचार आज सरकारी कर्मियों की साँसों में दौड़ रहा है, इसकी 'डायलिसिस' कैसे हो?

दरअसल, परिवर्तन लचीलेपन का द्योतक है। इसके दर परिविर्तनशील है। इसके दर हैं कि लगातार ऊपर बढ़ते हैं। जब कभी

बाजार नीचे आता है तो उनका भी नीचे आने में यकीन है जैसे हालिया कोरोना काल में हुआ वरना फाइल की यात्रा के स्टील फ्रेम में इसके शुल्क में नीचे आने की काल्पनिक गुंजाइश भी नहीं होती है। अनुभवी ज्ञान देते हैं कि नीचे आना एक अकल्पनीय अपवाद है, नहीं तो सरकार है कि ठप्प पड़ जाए। फाइल पर बिना किसी लालच चिड़िया कौन बिठाए? कई बुजुर्गों की मान्यता है कि वेतन तो संघर्ष करके दफ्तर पहुँचने का खर्च है, जैसे हर मौसम में तय समय पर बिस्तर तजकर तैयार होना, बच्चों को स्कूल छोड़ना, इस बीच चाय पीना, सुबह-सुबह दूध लाना, सिटी बस पर हर बाधा पारकर बैठना, दफ्तर के पास उतारना रोजाना का युद्ध नहीं तो और क्या है? काम एक अलहदा मसला है। या तो यह 'ऊपर-टाइम' से संपन्न होता है या फाइल के सफर के शुल्क से। कइयों का आरोप है कि सरकार और भ्रष्टाचार दो ऐसे शब्द हैं, जो एक-दूसरे के पर्याय हैं। इनकी अक्ल में यह नहीं आता है कि प्राइवेट कंपनी के 'कार्यालयों की भी वैसी ही दुर्दशा है। नहीं तो त्योहार, उत्सव, नए वर्ष के अवसर पर भेंट-गिफ्ट का प्रबंध कैसे होता? यह तो त्योहार की भेंट है। रस्म है। उत्सव को मनाने का अंदाज है। पुरानी परंपरा के अनुरूप है। अंग्रेजों के शासन में नए साल के उत्सव की डाली-भेंट अब तो दशकों से चली आ रही है। इसे भ्रष्टाचार या करप्शन कहना नाइनसाफी के अलावा और क्या है? गोरे साहब तो कबके विदा हो गए, उनके काले साहबों की मानसिकता का कोई क्या करे जिन पर उनका प्रभाव है। सूट-बूट-टाई से किसे परहेज होगा, पर जनसेवक कहलाना और जनता के लिए वास्तविक सेवा-भाव का अभाव दर्दनाक और आलोचना के मुद्दे हैं। दुखद है कि पुलिस भी यही करे और जिले का प्रशासनिक हाकिम भी। यह प्रजातंत्र के मखौल का विषय है।

नया वर्ष धूमधाम से मनाएँ पर भेंट-गिफ्ट की लूट तो न हो? हमें विश्वास है कि ऐसा न अब इंग्लैंड तक में नहीं होता है। वह हमें डाली-प्रणाली सिखा गए और इस लूट से खुद बच निकले? कौन कहे, उनका इरादा यही हो कि ऐसी विषबेल बोकर जाओ कि भविष्य की पीढ़ियाँ भ्रष्ट हो जाएँ? हर त्योहार में अंदर का उत्सव न हो बस बाहर की लूट का आकर्षण बचे? कँपकँपाती हुई ठंड में नए वर्ष का स्वागत अपनी जान पर खेलकर कौन करेगा? मौसम का प्रभाव है कि रात को पूरी-की-पूरी सड़क खाली है, बस सजावट की रंग-बिरंगी लाइट की लड़ियाँ अपनी किस्मत को जैसे कोस रही हैं।

नया वर्ष धूमधाम से मनाएँ पर भेंट-गिफ्ट की लूट तो न हो? हमें विश्वास है कि ऐसा न अब इंग्लैंड तक में नहीं होता है। वह हमें डाली-प्रणाली सिखा गए और इस लूट से खुद बच निकले? कौन कहे, उनका इरादा यही हो कि ऐसी विषबेल बोकर जाओ कि भविष्य की पीढ़ियाँ भ्रष्ट हो जाएँ? हर त्योहार में अंदर का उत्सव न हो बस बाहर की लूट का आकर्षण बचे? कँपकँपाती हुई ठंड में नए वर्ष का स्वागत अपनी जान पर खेलकर कौन करेगा? मौसम का प्रभाव है कि रात को पूरी-की-पूरी सड़क खाली है, बस सजावट की रंग-बिरंगी लाइट की लड़ियाँ अपनी किस्मत को जैसे कोस रही हैं। यही हाल ढाबे वाले का है। लोग घरों में रहकर अपनी जान की खैर मनाएँ कि बाहर आकर ढाबे को कृतार्थ करें? उसने अनुमान लगाया था कि आज ग्राहक अधिक पधारेंगे, उसकी विशेष 'डिश' 'पनीर दो प्याजा' को चखने के लिए। कुछ तो उसे घर भी ले जाते हैं नान-पराँठे के साथ।

त्योहार के दिन रसोई को आराम देकर सब उत्सव की दावत उड़ाएँ। पर यहाँ तो उलटा आलम है। नियमित ग्राहक तक नहीं पधारे हैं, पौवा चढ़ाकर, मिलावटी पनीर और मैदे के बने पराँठे के जहरीले मिश्रण का स्वाद लेने। अधिकतर इन में तीन पहियों के स्कूटर चालक और कभी-कभार मजबूर दिहाड़ी के मजदूर होते हैं, जो पैसे लुटाकर अपना निजी दारू का उत्सव मना लेते हैं। फिर घर जाकर बीबी-बच्चों पर हाथ उठाकर नशा उतारते हैं।

इनसे भी उदास आज ढाबे का मालिक है। उसका जी कर रहा है कि रोशनी की लड़ियाँ नोचकर फेंक दे। ऐसा निराशायुक्त नववर्ष! जहाँ शुरुआत ही इतनी त्रासद और नुकासनदेह है, वहाँ भविष्य का क्या होगा? इतना माल और पैसा लगाकर लजीज पकवान बनाए हैं, उन्हें क्या फेंकना पड़ेगा? रोटी-पराँठे तो भविष्य में काम आ जाएँगे पर मिलावटी माल तो टिकेगा भी नहीं? 'पनीर दी प्याजा' कल तक ऐसा सड़ेगा कि दूर-दूर तक गँधाएगा। इनसान तो उस गंध से दूर रहकर बिदकेंगे, सड़क पर टहलते ढोर-मवेशरी शायद खा लें। ऐसे समय के साथ जानवरों के नखरे भी कुछ ज्यादा हो गए हैं। बासी तक तो वह खा लेते हैं, पर इस सड़ाँध से गँधाते पनीर और अन्य सब्जी सामग्री से शायद उनको भी एतराज हो? क्या कहें? उनके दिमाग भी सातवें आसमान पर हैं। दरअसल ढाबों की पूरी कतार है। सब उदार हैं, उन्हें बासी खिलाने में। वह इसे धर्म-परोपकार समझते हैं। पैसे ग्राहक को 'चीट' कर कमाए तो कुछ पुण्य भी कमा लें, भूखे पशु-ढोरों का पेट भरकर। इस पुण्य की साध में बड़ा प्रतियोगी वातावरण बन गया है। ग्राहकों के पास भी चयन की सुविधा है, ढोरों के पास भी। दोनों उसका उपयोग करने को स्वतंत्र हैं। बहरहाल इस बार का अंग्रेजी नववर्ष ढाबों को भारी पड़ा है और सात-पाँच तारा होटलों को भी। ऐसा कम ही होता है पर इस बार कोरोना का टिका प्रदूषण और नए साल का दुर्भाग्यपूर्ण आगमन साथ-साथ होकर, सबके लिए वैसे ही निराशाजनक और हानिकारक है, जैसे किसी गंभीर मरीज से उसके जन्मदिन पर पार्टी की अपेक्षा।

गनीमत है कि यह दुर्दशा शहरों तक सीमित है। गाँव अब भी तुलानात्मक रूप से इस कोरोना-प्रदूषण से मुक्त हैं। वैसे वहाँ नए वर्ष की खबर तो है पर उसके उत्सव मनाने का न कोई आयोजन है, न प्रबंध। यों फार्महाउसों के नकली गाँववालों ने नए वर्ष के उत्सव मनाने का दृढ़ निश्चय किया है। मास्क लगाए लोग अँगीठी तापते दारू चढ़ाए शीतयुद्ध

से संघर्षरत हैं। उन्हें एक ही पीड़ा है। सामाजिक दूरी के प्रचलित चलन ने उन्हें सुंदर सजी-धजी महिलाओं के शारीरिक ताप से विवशाता में दूर रखा है। पर वह मन को समझाते हैं कि 'जान है तो जहान है।' इस बार नहीं तो न सही, अगले वर्ष तो नए शरीर की नावेल्टी मुमकिन होगी। वह अब इसी के लिए लालायित हैं। फिर भी शहरों के फार्म हाउस में कुछ नए वर्ष की रौनक तो है। शहरों के महत्त्वपूर्ण व्यक्ति, नेता, अफसर, उद्योगपति, संपादक आदि सब ही इन पार्टियों का आनंद उठाते हैं। होटलों का आकर्षण अब उतार पर है। अब जोर ऐसे नकली किसानों के शानदार आयोजनों पर है। इनमें महत्त्वपूर्ण सौदे तय होते हैं। यह महत्त्वपूर्ण व्यक्ति सोचते हैं कि वह देश का भविष्य बना-बिगाड़ रहे हैं।

दीगर है कि यह ऐसे व्यक्तियों का मात्र मुगालता है। भारत ऐसे किसी भी देष की किस्मत का फैसला चंद व्यक्तियों के फैसलों पर न निर्भर है न प्रभावित। ऐसी खामखयाली केवल इनके अहम की तुष्टि के साधन हैं। वरना यह केवल इनके अपने मुनाफे का सौदा है। एक दो करोड़ अंटी में आए। नेता की नियमित निजी आमदनी में इजाफा भी हो। ऐसी विशेष पार्टियों का आयोजन भी आसान है। हजारों रुपयों में कोई-न-कोई पेशेवर 'इवैंट-मैनेजर' इनका प्रबंध कर देता है। प्रशंसा फार्महाउस वाले आयोजक की सुरुचि की होती है। जबकि सब जानते हैं कि इसमें उसका कोई हाथ नहीं है, सिवाय इवैंट-मैनेजर का बिल चुकाने के। पर 'होस्ट' की तारीफ सभ्य समाज का तकाजा है। यों करने में हर्ज ही क्या है? ऐसे झूठ तो दिनभर बोले जाते हैं, एक-दूसरे के सामने। असली आकलन पीठ पीछे हो ही जाएगा, उसकी घटिया पार्टी के स्तर की आलोचना करके।

असली गाँववाले को प्रतीक्षा है गेहूँ के ऊँचा होने और उसमें बाली पड़ने की। यही वह वक्त है, जब आम में बौर भी आते हैं। समय के इस सुनहले मोड़ पर देसी नववर्ष चैत में चैती गाकर मनाया जाता है। यही वह समय है, जब इनसान न ठंड में ठिठुरते हैं, न गरमी के अतिरेक में पसीने-पसीने होते हैं। फूली सरसों इसमें प्राकृतिक रंग भरकर इसे और मादक तथा आकर्षक बनाती है। किसान करोड़ों का पेट भरते हैं। यदि कुदरत की इस क्रांति से करोड़ों का कल्याण होता है तो यह अपने आप में उत्सव का प्रेरक है। स्वाभाविक है कि अपनी सूझबूझ से ग्रामवासी इसे अपना नया वर्ष मानें, जो वास्तव में नया है, बजाय थोपे गए ठिठुरते नए साल को, जो केवल कुछ की गुलाम मानसिकता में बसता है। यह शुभ दिन बहुधा होली के बाद आता है।

९/५, राणा प्रताप मार्ग, लखनऊ-२२६००१
दूरभाष : ९४१५३४८४३८

लेखकों से अनुरोध

- मौलिक तथा अप्रकाशित-अप्रसारित रचनाएँ ही भेजें।
- रचना फुलस्केप कागज पर साफ लिखी हुई अथवा शुद्ध टंकित की हुई मूल प्रति भेजें।
- पूर्व स्वीकृति बिना लंबी रचना न भेजें।
- केवल साहित्यिक रचनाएँ ही भेजें।
- प्रत्येक रचना पर शीर्षक, लेखक का नाम, पता एवं दूरभाष संख्या अवश्य लिखें; साथ ही लेखक परिचय एवं फोटो भी भेजें।
- डाक टिकट लगा लिफाफा साथ होने पर ही अस्वीकृत रचनाएँ वापस भेजी जा सकती हैं। अतः रचना की एक प्रति अपने पास अवश्य रखें।
- किसी अवसर विशेष पर आधारित आलेख को कृपया उस अवसर से कम-से-कम तीन माह पूर्व भेजें, ताकि समय रहते उसे प्रकाशन-योजना में शामिल किया जा सके।
- रचना भेजने के बाद कृपया दूरभाष द्वारा जानकारी न लें। रचनाओं का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय होगा।

देवराज इंद्र को मिला घमंड का फल

● आशुतोष गर्ग

देवराज इंद्र के पिता महर्षि कश्यप ने एक बार एक बड़ा यज्ञ आयोजित करने का निश्चय किया। उस यज्ञ के लिए कश्यप ने अनेक ज्ञानी, अनुभवी और महान् ऋषि-मुनियों आदि से सहायता माँगी। सबने कश्यप को यथासंभव सहयोग देने का वचन दिया। इंद्र स्वभाव से अहंकारी था। परंतु पिता के यज्ञ में सहायता के लिए उसने भी सहर्ष हामी भर दी।

'मुझे इस यज्ञ के लिए लकड़ी की आवश्यकता है,' कश्यप ने इंद्र से कहा, 'मैंने कुछ ऋषियों से भी मदद के लिए कहा है। लेकिन मुझे तुम्हारा भी सहयोग चाहिए।'

'आप चिंता न कीजिए,' इंद्र ने घमंड में भरकर कहा, 'सबसे अधिक मात्रा में लकड़ी मैं ही लाऊँगा!' यह कहकर इंद्र लकड़ी लेने चल पड़ा। उसे मार्ग में एक अत्यंत विशाल लकड़ी का पहाड़ जैसा टुकड़ा दिखा; इंद्र ने उसे उठा लिया और पिता के आश्रम की ओर चल दिया।

कश्यप ने अपने यज्ञ के लिए ऋषिगण 'बालखिल्य' से भी सहयोग माँगा था। बालखिल्य प्रजापति क्रतु के पुत्र हैं। कहते हैं, ये ऋषि केवल सूर्य के प्रकाश का सेवन करते हैं। उनका आकार अँगूठे जितना है, किंतु ये अपने आध्यात्मिक शक्तियाँ के चलते अजेय हैं।

इंद्र को लौटते समय मार्ग में बालखिल्य ऋषि मिले, जो अपने सिर पर एक टहनी रखकर लड़खड़ाते हुए चल रहे थे। उनका आकार देखकर इंद्र को हँसी आ गई। वह जानता था कि बालखिल्य अपना योगदान लेकर कश्यप के पास जा रहे हैं, फिर भी उसने ऋषियों का मजाक उड़ाते हुए पूछा, 'ऋषिवर, इतनी बड़ी टहनी लेकर आप कहाँ जा रहे हैं?'

ऋषियों ने कहा, 'हम कश्यप मुनि के यज्ञ में अपने योगदान-स्वरूप यह लकड़ी ले जा रहे हैं।'

इंद्र अपनी हँसी नहीं रोक पाया। उसने कहा, 'यह पतली सी टहनी मेरे पिता के महान् यज्ञ में कितनी देर जलेगी? मेरे हाथ में यह काष्ठ का पर्वत देख रहे हैं?...इतनी लकड़ी की आवश्यकता होती है। समझे, बौने ऋषियों!'

बालखिल्य को क्रोध आ गया। वह बोले, 'तुम इंद्र होकर भी सेवा का महत्त्व नहीं समझते। समर्पण एवं निष्ठा से की गई सेवा छोटी भी हो तो उसका महत्त्व किसी बड़ी सेवा से कम नहीं होता! तुमने हमारा अपमान किया है। तुम्हें हमसे क्षमा माँगनी चाहिए!''

'मैं...और क्षमा?' इंद्र ने भँवें सिकोड़ते हुए कहा, 'मैं इंद्र हूँ... देवलोक का राजा! यदि चाहूँ तो...'

इससे पहले कि इंद्र अपनी बात पूरी करता, बालखिल्य ऋषियों ने टहनी नीचे रखी और बोले, 'इंद्र! तुम क्षमा माँग लेते तो बात यहीं समाप्त हो जाती, लेकिन तुम्हें अपने इंद्र होने पर बहुत घमंड हो गया है। इसलिए हम यह प्रण करते हैं कि अपनी शक्ति से एक नया इंद्र बनाएँगे! वह तुमसे सौ गुना अधिक शक्तिशाली और बुद्धिमान होगा।'

बालखिल्यों का संकल्प सुनकर इंद्र के घमंड का गुब्बारा तत्काल फट गया। उसने बालखिल्यों से अनेक बार क्षमा माँगी, किंतु तब तक देर हो चुकी थी।

ऋषिगण बोले, 'इंद्र! याद रखो कि इस विशाल सृष्टि में कोई वस्तु अथवा व्यक्ति अपरिहार्य नहीं है। तुमसे पहले भी जीवन था और तुम्हारे बाद भी रहेगा।' यह कहकर ऋषियों ने टहनी फिर से उठाई और कश्यप के पास चल दिए।

कुछ देर में बालखिल्य और इंद्र दोनों कश्यप के आश्रम पर पहुँच गए। कश्यप को जब अपने पुत्र के किए का पता लगा तो उन्हें बहुत दुख हुआ। उन्होंने बालखिल्यों से अनुरोध किया कि वे उसे क्षमा कर दें और नए इंद्र का संकल्प त्याग दें।

यह सुनकर बालखिल्य दुविधा में पड़ गए। कश्यप के अनुरोध को अस्वीकार करना कठिन था। किंतु तपोबल के आधार पर किए संकल्प को वापस लेना भी असंभव था। आखिर उन्होंने सोच-विचार करके कहा, 'नए इंद्र का संकल्प वापस तो हो नहीं सकता, किंतु हम अपनी रचनात्मक ऊर्जा की दिशा बदल देंगे और इसके फलस्वरूप जो इंद्र तैयार होगा, वह 'पक्षियों का इंद्र' कहलाएगा! इससे हमारा संकल्प भी पूर्ण हो जाएगा और इंद्र का प्रभुत्व भी कायम रहेगा।'

इंद्र ने यह सुना तो राहत की साँस ली। उसे घमंड का फल मिल चुका था।

विगत २० वर्षों से लेखन और अनुवाद के काम में संलगन। अब तक २९ किताबें प्रकाशित। अधिकांश लेखन/अनुवाद कार्य पौराणिक साहित्य पर है। २२ किताबों का अनुवाद (हिंदी-अंग्रेजी और अंग्रेजी-हिंदी) किया है। संप्रति रेल मंत्रालय (रेलवे बोर्ड) में डिप्टी डायरेक्टर पद पर कार्यरत।

साअ

एजी-I/ १२ बी, विकासपुरी,
नई दिल्ली-११००१८

डॉ. परशुराम शुक्ल के बाल-काव्य में बाल-मनोविज्ञान

• सरोज शर्मा

हम सभी जानते हैं कि साहित्य और मनोविज्ञान का परस्पर घनिष्ठ संबंध है। यही बात बाल-साहित्य पर भी खरी उतरती है। जो साहित्यकार बच्चों के मनोविज्ञान को भलीभाँति समझ पाएगा, वही बच्चों को पसंद आनेवाली रचनाएँ दे पाएगा। बच्चे राष्ट्र का भविष्य होते हैं। आज के नौनिहाल कल के नागरिक हैं। अन्य कारणों की तरह बाल-मनोविज्ञान भी बाल-साहित्य रचना का एक कारण है। मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि पुस्तकों से बच्चों का विकास तीव्रता से होता है, इसीलिए बच्चों में पढ़ने की रुचि का विकास भी बहुत आवश्यक है। पढ़ना केवल बौद्धिक अनुभव नहीं है, बल्कि उसके द्वारा भावात्मक अनुभवों की भी प्राप्ति होती है, बालक के व्यक्तित्व का विकास होता है और बौद्धिक ज्ञान की भी वृद्धि होती है। जीवन जीने की कला और उसके उद्देश्यों को प्राप्त करना ही मानव का कर्तव्य होता है, किंतु यदि वह जीवन के व्यवहार की कला नहीं जानता तो उसे सफलता नहीं मिलेगी।

राष्ट्रीय स्तर पर, विशेष रूप से कवि के रूप में प्रतिष्ठित साहित्यकार डॉ. परशुराम शुक्लजी का मानना है कि बच्चे को जन्म देना ही पर्याप्त नहीं है, उसके जीवन को दिशा देना और उसे सही राह दिखाना भी उतना ही आवश्यक होता है। यह कार्य परिजन तभी कर सकते हैं, जब उन्हें बाल-मनोविज्ञान का ज्ञान हो—

बच्चों को पहचानना, काम नहीं आसान।
पहले पढ़ना चाहिए, बाल-मनोविज्ञान॥

बालक के मनोविज्ञान को समझने और उसके मनोलोक में उतरकर साहित्य सृजन का कार्य डॉ. परशुराम शुक्ल ने किया है। उनके अनुसार पल-पल बढ़ते हुए बालक की दृष्टि प्रश्नात्मक है तो हृदय उद्गारात्मक, इसीलिए उसकी जिज्ञासाओं का अंत नहीं होता। शुक्लजी ने 'बाल सतसई' में इसका बहुत ही सुंदर चित्रण किया है—

बच्चे में क्षमता बहुत, करें आप विश्वास।
अपने निर्णय से सदा, अपना करें विकास॥

नवोदित लेखिका। १० जुलाई, १९८५ को डेगाना (नागौर) में जन्म। एम.ए, बी.एड., नेट शिक्षा प्राप्त। संप्रति डॉ. परशुराम शुक्ल के बाल-काव्य में बाल-मनोविज्ञान विषय पर शोध कर रही हैं।

बाल-मनोविज्ञान के पारखी डॉ. परशुराम शुक्ल ने अपनी संपूर्ण बाल रचनाओं को बाल मनोविज्ञान के आधार पर बच्चों की आयु के अनुसार तीन भागों में विभाजित किया है—शिशुगीत, सामान्य बाल-कविता तथा किशोर बाल-साहित्य।

शिशु साहित्य के अंतर्गत मुख्य रूप से शिशुगीत आते हैं, जिनका सृजन ढाई से पाँच वर्ष की आयु के शिशुओं के लिए किया गया है। शुक्लजी ने अत्यंत सरल शब्दों से युक्त चार से लेकर आठ पंक्तियों में शिशुगीत लिखे हैं, जिसका उद्देश्य विशुद्ध रूप से बच्चों का स्वस्थ मनोरंजन हो और बच्चे सरलता से गा सकें। उनके शिशुगीत की भाषा और भाव में इतना आकर्षण है कि बच्चों के मन में एक स्पष्ट चित्र उभर आता है। एक उदाहरण दृष्टव्य है—

हाथी बोला सूँड़ उठाकर, खाता दूध-मलाई।
तभी आ गए शेरू दादा, भागे हाथी भाई॥

सामान्य बाल-साहित्य में पाँच वर्ष से बारह वर्ष तक की आयु के बच्चों के लिए इसका सृजन होता है। बाल्यावस्था जीवन का अनोखा काल है। इस आयु में बालक की जिज्ञासा प्रवृत्ति में प्रबलता आ जाती है। वह अपनी जिज्ञासा को शांत करने के लिए बार-बार प्रश्न पूछता है। प्रश्नों के उत्तर मिलते हैं, तब तक बच्चा खुश रहता है, पर जब उसके प्रश्नों के उत्तर नहीं दिए जाएँ तो वह या तो रूठ जाता है या उदास हो जाता है। डॉ.

शुक्लजी ने 'बाल सतसई' में इसका सुंदर वर्णन किया है—

गोदी वाला लाल भी, समझे सब व्यवहार।
प्यार करो तो हँस पड़े, डाँटो तो लाचार॥

बाल्यावस्था में बच्चों में समलैंगिक समूह बनाने की भावना अधिक होती है। खेलते समय लड़के प्राय: अपने समूह में लड़कियों को सम्मिलित नहीं करते और लड़कियाँ खेलों और बातों में लड़कों को सम्मिलित नहीं करतीं। इसीलिए भाई-बहनों के खेल में झगड़े भी अधिक होते हैं। डॉ. शुक्लजी ने 'छोटे बच्चे' बाल-कविता में भाई-बहनों के झगड़ों का वर्णन मन को बड़ा आकर्षित करनेवाला किया है—

टिन्नी-बिन्नी खेल रही थीं
घर-घर अपने घर के अंदर,
भैया बोला मुझे खिलाओ
खेल तुम्हारा सबसे सुंदर।
***
तुम हो अच्छे भैया फिर भी
तुमको नहीं खिलाऊँगी मैं।
***
सुन भैया माजार हो गया
पकड़े उन दोनों के कान,
टिन्नी-बिन्नी लगीं चीखने
मचा दिया घर में कोहराम॥

बाल्यावस्था में बच्चा प्रकृति के संपर्क में अधिक रहता है, इसीलिए उसे पशु-पक्षियों की आवाज व पशु-पक्षियों से उसका लगाव बढ़ने लगता है तथा चाँद-सितारों से रिश्ता बनाने लगता है। सभी बाल-साहित्यकारों ने बच्चों के इसी मनोविज्ञान को समझते हुए तितली, पक्षी, चंदामामा आदि विषयों को चुना—

तितली रानी-तितली रानी,
कौन देश से आती हो?
फूल-फूल का रस पीती हो,
फुर्र से उड़ जाती हो।

इसी प्रकार एक अन्य उदाहरण भी दृष्टव्य है—

सूरज दादा के जाते ही
चंदामामा आ जाते हैं।
***
बहुत दूर पर्वत के पीछे
मामा का प्यारा सा घर है।
सूरज और सितारे जैसा,
मामा का संसार अमर है।

किशोर साहित्य का तात्पर्य उस बाल-साहित्य से है, जिसका सृजन किशोर के लिए किया गया हो। यह साहित्य बारह वर्ष से अधिक आयु के बच्चों के लिए किया जाता है। किशोर-साहित्य का सृजन किशोर बच्चों के मनोविज्ञान को ध्यान में रखकर किया जाता है। यह जीवन का सबसे कठिन काल होता है। इस आयु के बच्चों में अपने निर्णय अपने आप लेने की क्षमता उत्पन्न होने लगती है। ये अपने जीवन का उद्देश्य निर्धारित करने लगते हैं। इनकी अपनी विचारधारा इनके लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बन जाती है तथा ये अधिकांश समय एक विशिष्ट प्रकार की उत्तेजना अनुभव करते रहते हैं। किशोर बच्चों के जीवन में आनेवाला सबसे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन यौन-संबंधी परिवर्तन है। किशोर बच्चे शारीरिक संबंधों का अर्थ समझने लगते हैं। अत: किशोर और किशोरियों में एक-दूसरे के प्रति आकर्षण उत्पन्न होता है, जो निरंतर बढ़ता रहता है, लेकिन यह आकर्षण बाल सुलभ होता है। डॉ. शुक्लजी ने अपनी बाल कविता 'पम्मी अच्छी लगती' में इसी मनोविज्ञान का बहुत ही अभिनव व आकर्षक रूप में वर्णन किया है—

मम्मी-मम्मी तुम्हें बताऊँ,
पम्मी अच्छी लगती।
उसके गोरे गाल गुलाबी,
मेरे मन को भाते।
देखा करता हूँ मैं उसको
घर में आते-जाते।
शाम खेलती जब मेरे संग
मुझको राजा कहती।
पम्मी अच्छी लगती॥

शिशु-साहित्य, सामान्य बाल-साहित्य और किशोर-साहित्य में विभाजन का प्रमुख आधार आयु के अनुसार बच्चों की मानसिक परिपक्वता है। बच्चों के मानसिक परिपक्वता पर शारीरिक संरचना और परिवेश का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। मानसिक रूप से अविकसित या निम्न सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों में रहनेवाले बच्चों का विकास तुलनात्मक रूप से धीमी गति से होता है। यही कारण है कि कभी-कभी चार-पाँच वर्ष से अधिक आयु का बच्चा सामान्य बाल-साहित्य के स्थान पर शिशु-साहित्य में रुचि लेता रहता है और बारह वर्ष से अधिक आयु का बच्चा सामान्य बाल-साहित्य में अधिक आनंद पाता है। साहित्य का बच्चों के व्यक्तित्व पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ता है।

कविता बाल-साहित्य की महत्त्वपूर्ण विधा है। बाल-साहित्य में कहानियाँ तथा लेख भी होते हैं, पर जो विधा बच्चों की जुबान पर याद रह जाती है, वह कविता है। बचपन में याद की हुई कविताएँ बालक को वयस्क होने के बाद भी आनंदित करती रहती हैं। निम्न पंक्तियाँ, जो बचपन में याद की थीं, वे आज भी बुजुर्गों तक को न केवल याद हैं, बल्कि उन्हें आनंद भी देती हैं—

मछली जल की रानी है,
जीवन उसका पानी है।
हाथ लगाओ डर जाएगी,
बाहर निकालो मर जाएगी।

इसी मनोविज्ञान को ध्यान में रखते हुए डॉ. परशुराम शुक्लजी ने भी मछली पर अनेक कविताएँ लिखी हैं।

बच्चा माता-पिता के जीवन की अमूल्य निधि होता है। बच्चे स्वभाव से सरल, सहज, सरस, जिज्ञासु, उत्साह से भरे, कल्पना के पंख लगाकर पूरी दुनिया की सैर करनेवाले तथा मौलिक रचनात्मकता से भरे होते हैं। बच्चों का मन हमेशा एक अन्वेषक की तरह है, जो हर समय क्रियाशील एवं सचेत रहता है। इसीलिए हिंदी बाल-रचनाकारों की पहली कोशिश यही रहती है कि कोमल मन-मस्तिष्क वाले बच्चों को प्यार भरी लुभावनी दुनिया में ले जाएँ, जहाँ ऊँच-नीच का तथा छोटे-बड़े का कोई भेदभाव न हो, सिर्फ एक ऐसी दुनिया हो, जिसमें प्रेम, सहयोग, सेवा तथा सौहार्द जैसा वातावरण हो। डॉ. शुक्लजी ने अपनी बाल-कविता 'देश बनाएँ' में बहुत ही सुंदर चित्रण किया है—

हिंदू-मुसलिम, सिख-ईसाई,
सब भाई-भाई बन जाएँ।
अपने-अपने भेद भुलाकर,
आओ मिलकर देश बनाएँ॥

वैज्ञानिक उन्नति, बाजारवाद, भूमंडलीकरण, वर्तमान शिक्षा प्रणाली तथा समाज में तीव्रगामी परिवर्तनों ने बच्चों के मन को सर्वाधिक प्रभावित किया है। इसीलिए आज बाल-साहित्यकारों के सामने चुनौती है कि वे अपनी रचनाओं में ऐसी विश्वसनीयता पैदा करें, जिससे बच्चों को उनकी रचनाएँ मित्र के समान प्रतीत हों। डॉ. परशुराम शुक्लजी ने बच्चों की इसी भावना को दोहे जैसे छोटे से छंद में प्रस्तुत किया है—

जीवन के भवजाल में, यह बचपन खो जात।
पर बचपन के मित्र को, भूल नहीं यह पात॥

आज का समाज अतिव्यस्तता से भरा हुआ है। किसी के पास बच्चों तक के लिए समय नहीं है। उनकी मीठी-मीठी तोतली बोली का आनंद लेने की फुरसत किसी के पास नहीं है। नौकरी-पेशा माता-पिता के बच्चे अकेलेपन के संत्रास से जूझते रहते हैं। एक छोटे बच्चे की मासूम चाह कितनी छोटी, पर तनिक गंभीरता से सोचने पर कितनी मर्मस्पर्शी है, बताती है, शुक्लजी की यह कविता—

बोर अकेले में होता हूँ,
पापा जल्दी आना।
मेरे उठने के पहले ही,
तुम ऑफिस जाते हो।
और हमेशा सो जाने पर,
घर वापस आते हो।
छुट्टीवाले दिन भी तुमको,
पड़ता ऑफिस जाना।

छोटे बच्चों में कल्पना करने की अद्‌भुत क्षमता होती है। कभी वह पंख लगाकर पक्षी की भाँति आकाश में उड़ाना चाहते हैं तो कभी मछली की भाँति जल में तैरना चाहते हैं तथा कभी-कभी तो तितली की भाँति वन-उपवन के फूलों पर बैठना चाहते हैं। डॉ. परशुराम शुक्लजी ने बच्चों के इसी मनोविज्ञान का अपनी बाल-कविता 'मन करता है' में अभिनव एवं चित्ताकर्षक वर्णन किया है—

मन करता है पंख लगाकर,
पक्षी-सा उड़ जाऊँ।
मस्त पवन के संग मैं डोलूँ।
नभ में गोता खाऊँ॥

बाल-साहित्य के मूर्धन्य कवि डॉ. परशुराम शुक्लजी हतोत्साहित व निराश बच्चों की मानसिकता से अच्छी तरह से परिचित हैं। ऐसे बच्चों को प्रोत्साहित करने के लिए उनकी कविता 'सीखो बच्चो' काफी प्रेरणादायक है—

छोटी सी चींटी रानी भी,
एक बात बच्चो सिखलाती।
साहस, हिम्मत और लगन से,
विकट समस्या हल हो पाती।

छोटे बच्चे छुट्टी के दिन का कितनी बेसब्री से इंतजार करते हैं। जब छुट्टी का दिन आता है तो वे फूले नहीं समाते हैं। बच्चों के इसी मनोभाव का शुक्लजी ने अपनी बाल-कविता 'कल की छुट्टी' में मनोहारी वर्णन किया है—

बच्चो, समझो कल की छुट्टी,
क्रिकेट बल्ला अपना ले लो।
राजू मोहन के संग खेलो,
चाहो तो खेलो फुटबॉल॥

बच्चों की जिज्ञासाओं को कठोर नियंत्रण से दबाना नहीं चाहिए; उन्हें एक स्वस्थ वातावरण देकर शांत किया जाना चाहिए। बच्चे कोमल चित्त के होते हैं। इन्हें ममता, प्रेम तथा स्नेह से जीता जा सकता है। इसीलिए शुक्लजी ने 'बाल सतसई' में बच्चों के समक्ष उचित व्यवहार करने की सलाह दी है—

माता-पिता का संतुलित और सहज व्यवहार।
बच्चों में विकसित करे, शुभ आचार-विचार॥

अंत में मैं कहना चाहती हूँ कि डॉ. परशुराम शुक्ल को बाल मनोविज्ञान की गहरी समझ है। इसीलिए उन्होंने बच्चों के मन का बहुत ही सरल, सहज, आकर्षक तथा जिज्ञासाओं को शांत करनेवाला चित्रण अपनी कविताओं में किया है। ये कविताएँ बच्चों में सकारात्मक सोच को बढ़ावा देती हैं।

मोर्रा चौराहा, महालक्ष्मी कॉलोनी
मेड़ता सिटी, नागौर-३४१५१० (राजस्थान)
दूरभाष : ८११४४७८७८२
sarojsharma599@gmail.com

पंद्रह साल की माँ

● क्षमा शर्मा

ज्योति मंदिर में क्या घुसी कि पंडित ने शंख बजाया और आरती होने लगी। वह ठिठकर खड़ी हो गई। आरती बीच में छोड़ने को सब मना करते हैं। उसने सोचा था कि दर्शन करके जल्दी वापस चली जाएगी। वह देवी की मूर्ति के सामने खड़ी हो गई और देखने लगी—अरे, नथ कहाँ गया? देवी की मूर्ति एक सुंदर सा नथ पहने रहती थी। इतनी अच्छे नाक-नक्शवाली मूर्ति है। बड़ी काजल लगी आँखें, सुतवाँ नाक, पतले ओठ, चेहरे पर मुसकराहट सामने जलते दीपक से चेहरा और भी आभामय हो रहा था। ओह इतनी सुंदरता बिल्कुल माँ जैसी। लेकिन माँ कभी नथ नहीं पहनती थी। देवी की नथ कहाँ है?

ज्योति को वहाँ खड़े-खड़े अपनी माँ याद हो आई। और अचानक लगा, मूर्ति तो बिल्कुल अपनी माँ जैसी दिखती है। माँ उस बुढ़ापे में भी कितनी सुंदर लगती थी। पचासी साल की उम्र में भी एक झुर्री तो दिखाई नहीं देती थी। और बाल एकदम काले। न माँ ने कभी भी क्रीम लगाई न ही शैंप्पू या बालों के लिए कोई लोशन। जब देखो तब बालों से मुँह तक पर सरसों के तेल की कुछ बूँदें और लो हो गया मैकअप, मेकओवर। ज्योति को माँ घर में आरती कहकर पुकारती थी। और उसे गोद में उठाकर कहती थी—मेरे घर में अलग से तो आरती की जरूरत क्या, हर समय ही आरती होती रहती है। सब कहते बुढ़ापे की औलाद को देखो, कैसे लाड़ लड़ाती है। लड़की है, पराए घर जाएगी, इतना सिर पर मत चढ़ा। माँ कहती—क्यों, मेरे प्यार करने से सिर चढ़ जाएगी तो चढ़ जाने दो। मेरा ही तो सिर है और मेरी ही लड़की है। पराए घर जाएगी, तब जाएगी, अभी तो अपने घर में है।

ज्योति बारहवीं तक माँ के साथ सोती। रात में पढ़कर आती तो सर्दियों में हाथ बर्फ से ठंडे हो जाते। तब माँ कहती-रजाई में दुबके-दुबके मेरा पेट गरम हो गया है। तू मेरे पेट पर हाथ रख ले। ज्योति बिना कुछ सोचे माँ के पेट पर अपने बर्फ से ठंडे हाथ रख देती। अब सोचती है कि तब कभी पता नहीं चलता था कि उसके ठंडे हाथों से माँ को कितनी तकलीफ होती होगी। पर माँ थी कि उसके हाथों को तब तक अपने पेट पर रखे रहती जब तक कि वे गरम न हो जाते। वह भरककर सो जाती थी। क्या पता माँ अपने ठंडे पेट के कारण सो पाती थी कि नहीं। जब ज्योति की आँख खुलती थी तब चौके से कंडों और छोटी-छोटी लकड़ियों के मिले-जुले धुएँ की गंध आती थी। माँ स्कूल जाने से पहले उसे दही-बूरा

सुपरिचित लेखिका। अभी तक दस कहानी-संग्रह, चार उपन्यास, छह स्त्री-विषयक, सत्रह बाल उपन्यास, चौदह बाल-कहानी संग्रह के साथ-साथ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। छोटे-बड़े कई साहित्यिक सम्मान प्राप्त।

खिलाती और स्कूल में खाने के लिए आम का अचार और पराँठा देती। जब लौटती तो माँ को इंतजार करती पाती। माँ उसे दाल, अचार रायता सब कुछ परोसती। ज्योति माँ के पीछे पड़ती, तुम भी तो खाओ। माँ कहती, पहले तू खा ले। खाना खाकर ज्योति जब तक होमवर्क निपटाती, तब तक माँ बरतन माँजती। सफाई करती। वह कभी न देख पाती माँ ने क्या खाया। कब खाया। उसके लिए कुछ बचा भी था या नहीं। आज जब ये बातें सोचती है तो अपने ऊपर बहुत गुस्सा आता है। क्यों कभी देखने की कोशिश नहीं की माँ ने क्या खाया। स्कूल का काम निपटाने के बाद माँ कहती थी कि अब थोड़ी देर सो जो। वह सो जाती थी। माँ कभी नहीं सोती थी। उसके पास हजार काम थे। घर को लीपना, चूल्हे को पोतना। गेहूँ की बिनाई, सफाई। क्यारियों की निराई। गाय, भैंस को पानी पिलाना, सानी लगाना। जब वह सोकर उठती थी तो कभी माँ को फटे कपड़े सिलते देखती थी तो कभी रजाइयों में डोरे डालते। उसे जागा देखकर माँ कहती—रोटी रखी है, खा ले।

वह शौक से नीबू या आम के अचार के साथ रोटी खाती। ज्योति को आज तक अचार और रोटी की वह खुशबू याद आती है।

माँ की यादें कभी पीछा नहीं छोड़तीं। उस दिन के बाद से जब भी मंगलवार ज्योति मंदिर में जाती अपलक देवी की मूर्ति को निहारती रहती। उसे कभी मूर्ति मुसकराती दिखती, तो वह भी मुसकराती। कभी मूर्ति गुस्से में नजर आती तो लगता कुछ गलत हुआ क्या जो माँ नाराज हो रही है। कभी मूर्ति के चेहरे पर चिंता नजर आती तो वह घबराने लगती। उसके या उसके परिवार के साथ कुछ गलत तो नहीं होनेवाला, जो माँ इतनी चिंतित नजर आती है। ज्योति जब देखो तब पंद्रह साल पहले गुजरी अपनी माँ के बारे में वहाँ खड़ी होकर कुलाबे भिड़ाने लगती। मंदिर में आनेवाले सब समझते कि वह वहाँ खड़ी होकर किसी स्तोत्र का जाप कर रही है।

एक दिन बातें करते हुए उसने अपनी बहन से कहा, हमारी माँ ने

जन्म लिया होगा तो पता नहीं कहाँ होगी?

बहन हँसकर बोली, क्या पता तेरे पड़ोस में ही हो। और ज्योति हिसाब लगाने लगी कि उसके आसपास पंद्रह साल की कौन-कौन सी लड़कियाँ रहती हैं। एक दिन हँसकर-हँसकर उसने बहन से कहा, अगर माँ पंद्रह साल की होगी तो मोबाइल पर अपने किसी बायफ्रेंड से बात कर रही होगी। और अगर मैं उसे पहचानकर उसकी तरफ देख भी लूँगी तो कहेगी, देख एक बुढ़िया मुझे घूरकर देख रही है। क्या पता घंटों उससे चैट करती हो। फेसबुक पर फोटो शेअर करती हो।

तो और क्या उसे क्या याद कि ये सफेद बालोंवाली उसकी बेटियाँ हैं। इस जन्म की याद तो उसके साथ ही चली गई।

एक दिन ज्योति बैंक की तरफ जा रही थी। रास्ते में अफरा-तफरी थी। स्कूल की छुट्टी हुई थी तो कारें, बसें, ई-रिक्शा, रिक्शे सबसे सड़क इतनी भरी हुई थी कि सड़क पर चलना मुश्किल था। बच्चों, लड़के लड़कियों का हुजूम तो था ही। रेहड़ी वालों की भीड़ भी थी, जिनकी तरफ बच्चे कुछ-न-कुछ खरीदने के लिए दौड़ रहे थे। ज्योति एक ओर खड़े होकर भीड़ छँटने का इंतजार कर रही थी। वह स्कूल के गेट के सामने खड़ी होकर देखने लगी। तभी स्कूल से एक लड़का और एक लड़की निकलते दिखे। और लड़की के चेहरे पर उसकी निगाहें अटक गईं। लड़की बाहर आकर अपने उस दोस्त से बातें कर रही थी और बिना किसी कार-बस की परवाह के बीच सड़क पर खड़ी थी। क्या हिम्मत है। बच्चों की इतनी हिम्मत कितनी अच्छी लगती है। बुढ़ापा आते-आते सारी हिम्मत जवाब दे जाती है। कि फिर से उसने लड़की को देखा। उसे वह मंदिर की देवी की मूर्ति सी लगी। माँ जैसी लगी। ज्योति को लगा, दौड़कर उस लड़की के पास जाए। पुकारे माँ-माँ। फिर वह एकदम रुक गई। लगता है, माँ के चक्कर में किसी लड़की से यू शटअप पागल बुढ़िया सुनना चाहती है।

तभी सामने से गुप्ताजी आ गए। पुराने साथी। आदत है उनकी, जहाँ मिलेंगे चेप हो जाएँगे। उनका नाम अपने मन में ज्योति ने बिल्ली रखा हुआ है। जो दबे पाँव आकर बातों की छलाँग लगाती ऊपर कूद पड़ती है। गुप्ताजी पूछने लगे, और आज कहाँ की सवारी है?

कुछ नहीं, बैंक जा रही थी। वह जोर से हँसे लगता है, बहुत माल-टाल है। कुछ इधर भी। भाई जब देखता हूँ, बैंक जाती मिलती हैं।

ज्योति मुसकराई भर, कुछ न बोली तो वह फिर बोले, बुरा मान गईं क्या भाभीजी? मैं तो मजाक कर रहा था।

ज्योति का मन किया कि कहे, उस मजाक का क्या फायदा, जिसके बारे में सुननेवाले को बताना पड़े कि वह मजाक था। सुननेवाले को खुद पता न चले। अकसर लोग फालतू बात को मजाक के मत्थे मढ़कर बरी हो जाते हैं। लेकिन गुप्ताजी की बातों को सुनने के मुकाबले ज्योति की निगाहें उस लड़की पर लगी थीं। वह आगे जाकर बाईं सड़क पर मुड़ गई थी। गुप्ताजी के चले जाने के बाद ज्योति आगे बढ़ी और सोचने लगी, वह लड़की बस, कार या किसी रिक्शे में क्यों नहीं बैठी। तो क्या यहीं कहीं रहती है। हो सकता है, अपने किसी दोस्त से मिलने गई हो। किसी सहेली के घर और बाद में जाए। लेकिन अगर वह यहीं रहती है, तो क्या पता बहन की बात में दम हो। माँ यहीं-कहीं पैदा हुई हो। हो सकता है माँ ने मरने से पहले ही यह तय कर लिया हो कि उसे बिल्कुल वहीं पैदा होना है, जहाँ उसकी सबसे लाड़ली लड़की रहती है। लेकिन माँ उसे पहचानेगी कैसे? ज्योति तो सफेद बालों और बढ़ती उम्र के कारण सौ बुढ़ियों की बुढ़िया लगने लगी थी। वैसे वह भी माँ को कैसे पहचानेगी। क्या सिर्फ इस बात से कि उसकी शक्ल माँ से मिलती है, कोई लड़की उसकी माँ बनने को तैयार हो जाएगी। और माँ की जो शक्ल थी नाक-नक्श, बाल थे, उँगलियाँ थीं, वे तो उसके मरते ही आग के हवाले कर दी गईं।

बैंक की सीढ़ियाँ चढ़ते ज्योति को डर लगा। क्या पता उसने आज उस लड़की को अपनी माँ कहकर पुकारा होता और वह पागल बुढ़िया कहर उसके पीछे भागी होती। ज्योति बैंक काउंटर पर ऐसे ही सोच में खड़ी थी कि टोकनवाली लड़की ने जोर से पुकारा—मैडम लीजिए न। हड़बड़ाकर टोकन लेकर पैसे लेने के लिए वह लाइन में लग गई।

बैंक की सीढ़ियाँ उतरते हुए वह मंदिर की तरफ चल दी। हालाँकि आज बृहस्पतिवार था। लेकिन वह स्कूल वाली लड़की की शक्ल से मंदिर की मूर्ति की शक्ल मिलाना चाहती थी। मंदिर के दरवाजे पहुँची तो उसे लगा—अरे, याद ही नहीं था कि बारह बजे मंदिर बंद हो जाता है। निराश होकर लौट पड़ी।

आखिर इतने वर्ष पहले मरी माँ को वह क्यों ढूँढ़ रही है। उसे इस बात का बहुत अफसोस है कि वह अपनी माँ के लिए कुछ नहीं कर सकी। पता नहीं क्यों मन कभी इस बात को मानता तो क्या सोचता तक नहीं था कि माँ को भी कभी कुछ हो सकता है। वह भी मर सकती है। उसे भी कोई तकलीफ कोई बीमारी होगी। अपनी इस इग्नोरेंस पर उसे बहुत दु:ख होता है। मगर अब हो भी क्या सकता है, माँ तो वापस आने से रही। वही है, जो उसे कभी किसी लड़की और कभी किसी मूर्ति में ढूँढ़ रही है। शाम को बहन से बातें करते हुए जब उसने उस लड़की की बात बताई तो बहन बोली, लगता है, तेरा दिमाग चल गया है। अरे, कोई जरूरी है कि माँ इनसान ही बनी हो। तुझे याद नहीं कहती थी कि अगले जनम में कभी औरत नहीं बनूँगी। औरत भी बनी तो कभी शादी नहीं करूँगी। और क्या पता वह कोई चिड़िया बन गई हो। चौरासी लाख योनियों में कोई कभी भी कहीं जन्म ले सकता है।

बहन की बात सुनकर ज्योति को लगा कि अगर माँ चिड़ियाँ बन गई होगी तो वह कैसे पहचानेगी? चिड़ियाँ तो इतनी सारी हैं—कबूतर हैं, बुलबुल, तोते, चील, कौए, गौरैया, गिद्ध। माँ इनमें से कौन सी चिड़िया बनी होगी। और अगर माँ चिड़िया बनकर मान लो उसे पहचान भी ले, तो ज्योति को पता कैसे चलेगा। माँ उसे पुकारेगी भी तो ज्योति सुन कैसे पाएगी। वह तो चिड़ियों की भाषा जानती भी नहीं। नहीं-नहीं, चिड़ियों

के जीवन में कितने दु:ख हैं—न समय पर पानी, न दाना, ऊपर धूप, ताप, बारिश, जाड़ा, पाला, बाज का हमला। नहीं-नहीं, माँ बेचारी इतनी तकलीफों को कैसे सह पाएगी। इससे तो अच्छा माँ कोई बरगद, पीपल, नीम का पेड़ बन जाए। कितनी लंबी उम्र होती है इन पेड़ों की। लेकिन तब तक ही न जब तक की कुल्हाड़ी इन तक न बढ़े। कोई बिल्डिंग न बनाने लगे, कोई सड़क चौड़ी न होने लगे कोई एअरपोर्ट न बनने लगे। लेकिन अगर माँ उस किसी शहर में पेड़ बनी हो, जहाँ ज्योति कभी न गई हो और न जाने की संभावना हो तो क्या वह फिर कभी उससे नहीं मिलेगी। लेकिन अगर माँ घर के सामनेवाला पेड़ ही हो तो वह उसे कैसे पहचानेगी।

ज्योति का मन किया, वह बहन से कहे कि वह माँ को न चिड़िया बनाना चाहती है, न पेड़, न नदी, वह माँ को क्या बनाना चाहती है, पता नहीं। जैसे कि मरी हुई माँ का रूप बदलना उसके हाथ में हो।

एक दिन बातों में बातों में बड़े भाई से माँ का जिक्र कर बैठी तो वह बोले—अरे! अम्मा का कुछ मत पूछो। वैसे रात-दिन मेरा लल्लू, मेरा लल्लू करते नहीं थकती थीं और अब जब से इस दुनिया से गई हैं, एक बार जो सपने में भी आई हों। लगता है, उन्हें तो मोक्ष मिल गया।

ज्योति को याद आया, माँ अंतिम दिनों में बहुत तकलीफ में थी। कहती थी—भगवान्, मुझे अब इस जगत् के नाते-रिश्तों, मोह माया से मुक्त करो। बहुत जी ली। कब तक फूटे तवे, टूटे चिमटों से काम लेते रहोगे। अब तो सब रिश्ते खत्म हुए। तो जब माँ ने जीते-जी ही हमसे नाता तोड़ लिया, तब भला अगले जन्म में वह क्योंकर पहचानेगी। बल्कि पहचान भी लिया तो मुँह मोड़ लेगी। पूरी जिंदगी तो हमारे लिए लगी रही और अब हम फिर से उसके गले पड़ने आ गए। ज्योति का यह सोचकर दिल सा बैठने लगा कि उसकी माँ उसे न पहचाने। मगर माँ है कहाँ, उसे गए तो पंद्रह साल हो गए। उसका एक फोटो ज्योति के पास है, जिसे जब-तब देखकर वह आँसू बहाती है और सोचती है कि जब तक हमारी माँएँ जिंदा होती हैं, हमें उनकी कोई परवाह नहीं होती।

१७-बी/१, हिंदुस्तान टाइम्स अपार्टमेंटस,
मयूर विहार,फेज-१, दिल्ली-११००९१
दूरभाष : ०९८१८२५८८२२
kshamasharma1@gmail.com

वह साहस की रंभा

कविता

• शिवनंदन सिंह 'सहयोगी'

तंग शहर की लड़की

सरकारी नल पर धोती है,
तन के मैले कपड़े,
तंग शहर की लड़की।

पढ़ने के दिन खाली बैठी,
टूटा बिजली खंभा,
मिले दुखों को मार रही है,
वह साहस की रंभा,
व्यंग्य चुटीले डंक मारते,
अंतस् फैले लफड़े,
तंग शहर की लड़की।

रोटी का है गरम तवा भी
जब तब होता ठंडा,
जब देखो तब सींझ न पाता,
मोटा चावल खंडा,
निपट गरीबी भाग लिखी है,
खाली थैले पकड़े,
तंग शहर की लड़की।

उभरे कई सवालों के संग
घेरे में है जीती,
यह अच्छा है, संकल्पक है,
जहर नहीं है पीती,
आए हर संकट से जूझी,
रह रह झेले, तगड़े
तंग शहर की लड़की।

यह न होगा

ऐ हवाओ, यह बताओ!
आजकल हम, नए युग में
किस दिशा में बह रहे हैं?

मानते हैं,
सत्य को स्वीकारना तो
कष्टदायी है जटिल भी,
है अचंभा,
झूठ सुनकर, कुछ न कहना,
नहीं नैतिक है कुटिल भी,
इसलिए इस बात को हम,

सुपरिचित कवि। गीत, नवगीत, कविता, गजल, दोहे, दुमदार दोहे, कहानी, लघुकथा, कुंडलिया, समीक्षा आदि विधाओं पर लगभग २३ पुस्तकें एवं पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। मित्र, प्रेरणा श्री, काव्य कौस्तुभ, काव्यभूषण, दोहा श्री, साहित्य महोपाध्याय, शब्द रत्न, साहित्य रत्नाकर, साहित्य गौरव, काव्य गौरव, गीत-गंधर्व, गीत महारथी, कुंडलिया गौरव सम्मान से सम्मानित।

जोर देकर,तन्मयी हो,
निडर होकर कह रहे हैं।

बंद करके
यह लिफाफा, आज मन की
कोठरी में रख रहे हैं,
याद रखना
आत्मा जो, कह रही है,
भाव वे सब लख रहे हैं,
समय सबकुछ, स्वयं ही पट
खोल देगा, कुछ दिनों में,
कल, कहाँ अब रह रहे हैं?

लेखनी चुप
रह सकेगी, यह न होगा
और नस में, हूक रहेगी,
यह लहर जो,
चल रही है, द्वेष की अब,
काव्य कालिक तुक रहेगी,
संशयों में शब्द होंगे,
अल्प होगा ओम् का स्वर,
अर्थ यह ही तह रहे हैं।

'शिवाभा' ए-२३३ गंगानगर
मेरठ-२५०००१ (उ.प्र.)
दूरभाष : ९४१२२१२२५५

2020-21 के नए प्रकाशन

• डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम	
माय लाइफ	250.00
द गाइडिंग लाइट	400.00
• मोहन भागवत	
यशस्वी भारत	500.00
• कैलाश सत्यार्थी	
कोविड-19 : सभ्यता का संकट और समाधान	250.00
• सुनील आंबेकर	
राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ : स्वर्णिम भारत के दिशा-सूत्र	500.00
• हिंडोल सेनगुप्ता	
अखंड भारत के शिल्पकार सरदार पटेल	700.00
• रमेश पोखरियाल 'निशंक'	
मूल्य आधारित शिक्षा	300.00
मानवता के प्रणेता : महर्षि अरविंद	400.00
पूर्वी अफ्रीका का प्रवेशद्वार : युगांडा	300.00
चॉकलेट की वैश्विक राजधानी : बेल्जियम	250.00
परीक्षा लेती जिंदगी	400.00
• हरदीप सिंह पुरी	
जोखिम भरे हस्तक्षेप	500.00
• प्रदीप भंडारी	
मोदी विजयगाथा 2019	600.00
• सीता/शरद गुप्ता	
एक ऊँची उड़ान	495.00
• मनजीत नेगी	
साधु से सेवक	200.00
• आनंदीबेन पटेल	
वो मुझे हमेशा याद रहेंगे	500.00
• राजेंद्र मोहन भटनागर	
गांधी : एक सत्य	400.00
• डॉ. विनय सहस्रबुद्धे	
विकास की राजनीति	350.00
• शांतनु गुप्ता	
भारतीय जनता पार्टी की गौरवगाथा	800.00
• बसंत कुमार	
डॉ. आंबेडकर और राष्ट्रवाद	300.00
• रजनीश कुमार शुक्ल	
भारतीय ज्ञानपरंपरा और विचारक	400.00
• सूर्यकांत बाली	
तुम कब आओगे श्यावा (उपन्यास)	400.00
दीर्घतमा (उपन्यास)	500.00
• सहना विजय कुमार	
कशीर (उपन्यास)	360.00
• राजीव शर्मा	
विद्रोही संन्यासी (उपन्यास)	400.00

• मनोज सिंह	
मैं आर्यपुत्र हूँ (उपन्यास)	600.00
• डॉ. लक्ष्मी नारायण गर्ग	
शिखंडी (उपन्यास)	300.00
• हरीश नवल	
बोगी नंबर 2003 (उपन्यास)	300.00
• डॉ. राकेश कुमार मीणा	
नेपाल का संवैधानिक विकास	600.00
• वी. श्रीनिवास	
अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष	700.00
• पु.ल. देशपांडे	
विलक्षण शब्द चित्र	500.00
• अरुण आनंद	
5 सरसंघचालक	400.00
• रहीस सिंह	
कर्मयोगी संन्यासी योगी आदित्यनाथ	400.00
• सं. राम किशोर	
नेताजी सुभाष चंद्र बोस युवकों से	300.00
• नीति जैन और गगन जैन	
Startup सक्सेस स्टोरीज (व्यक्तित्व विकास)	600.00
• अरफीन खान	
यू कैन डू इट (व्यक्तित्व विकास)	500.00
• वॉलेस डी. वॉटल्स	
अमीर बनने का विज्ञान (व्यक्तित्व विकास)	300.00
महान् बनने का विज्ञान (व्यक्तित्व विकास)	250.00
स्वस्थ रहने का विज्ञान (व्यक्तित्व विकास)	300.00
• प्रशांत पोल	
भारतीय ज्ञान का खजाना (व्यक्तित्व विकास)	400.00
• अशोक चौधरी और रीना चौधरी	
डिवाइन चाइल्ड (व्यक्तित्व विकास)	200.00
• बी.पी. सिंह	
जीरो से गोल्ड मेडलिस्ट (व्यक्तित्व विकास)	300.00
• रवींद्र नाथ प्रसाद सिंह	
जीवन एक दर्पण (व्यक्तित्व विकास)	400.00
• जैक कैनफील्ड	
सक्सेस Principles (व्यक्तित्व विकास)	500.00
जीतने की जिद (व्यक्तित्व विकास)	300.00
• राजेश अग्रवाल	
अहंकार को करें बाय-बाय (व्यक्तित्व विकास)	300.00
• डॉ. धनंजय गिरि	
नूतन सदी के नवनीत श्रीगुरुजी (जीवनी)	350.00
• सं. सच्चिदानंद जोशी/संजय द्विवेदी	
शब्दपुरुष माणिकचंद्र वाजपेयी (जीवनी)	300.00
• मेजर जनरल सूरज भाटिया	
बंदा सिंह बहादुर (जीवनी)	350.00

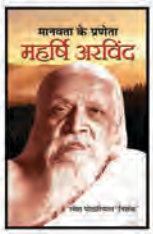

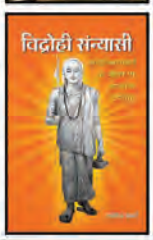

ज्ञान राशि के संचित कोश का नाम ही साहित्य है।

- आचार्य मायाराम 'पतंग'
  महापराक्रमी महाराणा प्रताप (जीवनी) 300.00
- सी.पी. ठाकुर
  आशा और विश्वास : एक यात्रा (जीवनी) 400.00
- राकेश कुमार अग्रवाल
  बुंदेलखंड के अग्रदूत (जीवनी) 350.00

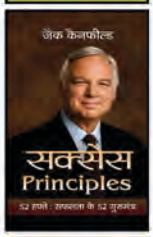

- सुधा मूर्ति
  पौराणिक ग्रंथों में नारी शक्ति की कहानियाँ 400.00
  गोपी की डायरी (कहानी) 300.00
- हेमंत शर्मा
  एकदा भारतवर्षे... (कहानी) 700.00
- रचना बिष्ट रावत
  कारगिल (कहानी) 500.00
- राघवजी माधड
  अमरफल (कहानी) 400.00
- सं. नीतू, दीनाकरण/अमित
  समुंद समावे बुंद में (शौर्यगाथाएँ) 300.00
- लता कादंबरी
  मैच बॉक्स 81 (कहानी) 300.00

- प्रदीप ठाकुर
  कॉलेज ड्रॉपआउट अरबपतियों की प्रेरक कहानियाँ 500.00
- नीरज नीर
  ढुकनी एवं अन्य कहानियाँ 300.00

- रेनू सैनी
  दीनदयाल उपाध्याय की प्रेरक कहानियाँ 400.00
  लौहपुरुष सरदार पटेल के प्रेरक प्रसंग 400.00
  शास्त्रीजी के प्रेरक प्रसंग 400.00
- डॉ. वंदना डांगी
  इंडियन इकोनॉमी की विश्व में बढ़ती पहचान 500.00

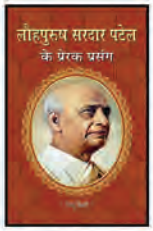

- चंपा भाटिया
  गीता में ज्ञानयोग 175.00
- डॉ. सुरेश हावरे
  साईं की सेवा में 750.00
- यशवंत कोठारी
  रिश्वत महादेवी की जय! (व्यंग्य) 350.00
- के.के. उपाध्याय
  मोदी-योगी का विजन विकास की ओर उत्तर प्रदेश 400.00
- राज चावला
  शेयर बाजार में निवेश, ट्रेडिंग और स्पेक्युलेशन 600.00

- प्रेमचंद्र स्वर्णकार
  महामारी कोरोना और वायरस जनित रोग 500.00
- डॉ. ए.के. सक्सेना/डॉ. प्रीति पई
  हैंडबुक ऑफ एक्यूप्रेशर 500.00
- डी.डी. ओझा/अनिल कुमार गुप्ता
  रोचक वैज्ञानिक रहस्य 500.00
- डॉ. शंकर अड़ावल
  फलित ज्योतिष (होरा गणित) 400.00
- राहुल अतिशयक्ति
  मिशन मंगल 350.00
- शैलेंद्र महतो
  झारखंड में विद्रोह का इतिहास 400.00
- सं. आदित्य भारद्वाज/आशीष कुमार अंशु
  दिल्ली दंगे : साजिश व खुलासा 125.00
- रघुनंदन शर्मा
  आजादी बनाम फाँसी अथवा कालापानी 400.00
- शिवअवतार रस्तोगी 'सरस'
  सरस बाल-बूझ पहेलियाँ 200.00
- सुरेंद्र नाथ तिवारी
  पहाड़िया जनजाति : इतिहास एवं संस्कृति 200.00
- Hemant Sharma
  Kailas Shiva's Abode 900.00
- Arun Anand & Vinay Nalwa
  Ramjanmabhoomi 350.00
- Umaprasad Mookerjee
  Syama Prasad Mookerjee : His Death in Detention 400.00
- Dr. Nand Kishore Garg and Namrata Sharma
  Dr. Syama Prasad Mookerjee : The Great Educationist 600.00
- Krishna Saksena
  A Bouquet of Flowers 175.00
- Ramesh Pokhrial 'Nishank'
  Life Trials 400.00
- Ed. Anirban Ganguly and Navin Kalingan
  Dattopant Thengadi : The Activist Parliamentarian 900.00
- Dr. C.P. Thakur
  A Journey of Hope and Belief 400.00
- Dr. Suresh Haware
  In Service of Sai 750.00
- Ed. Nitu and M. Dhinakaran
  The Shaurya Unbound 250.00

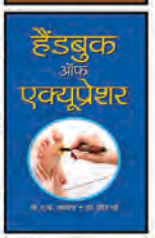

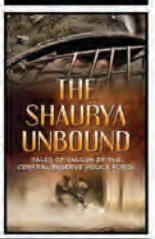

प्रभात प्रकाशन
ISO 9001:2015 प्रकाशक
4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002 • फोन : 011-23289777
इ-मेल : prabhatbooks@gmail.com • वेबसाइट : www.prabhatbooks.com
हैल्पलाइन : 7827007777

कोहरा छँटा

● **भगवान अटलानी**

अगले दिन सूचना केंद्र में ग्यारह बजे विश्लेषण-सत्र आरंभ हुआ। सूचना केंद्र नि:शुल्क उपलब्ध हुआ था। सभागार, कुरसियाँ, माइक, मंच आदि की सुविधाएँ संतोषजनक थीं। दोपहर का भोजन प्रायोजित था। कुल लगभग एक सौ पचास में से सत्तासी अधिकरण व समिति सदस्यों को सम्मान के लिए चुना गया था।

कार्य निष्पादन को निकट से देखते रहे थे। किस सदस्य ने खामोशी या वाचालता पूर्वक कितना योगदान किया है, उन्हें जानकारी थी। इसलिए उपाध्यक्ष के संयोजन में बनी कार्यकारिणी के तीन सदस्यों की समिति के प्रस्तावित नामों में चंदनजी ने कुछ नाम जुड़वाए थे। अलग-अलग नामों के उल्लेख के साथ खूबसूरत पट्टिकाएँ, प्रशस्ति व संबंधित सदस्य के चित्र के साथ तैयार कराई गई थीं। स्टैंड और बोल्ट, दोनों लगाकर पट्टिका को मेज पर रखने या दीवार पर टाँगने की सुविधा उपलब्ध कराई गई थी। प्रत्येक प्रशस्ति पट्टिका पर चंदनजी के हस्ताक्षर थे।

पहले सत्र में विश्लेषण समिति में एक-एक समिति पर अलग-अलग चर्चा की गई। संयोजक के विवरण के बाद उपस्थित सदस्यों को नकारात्मक, सकारात्मक, प्रशंसात्मक, सुझावात्मक टिप्पणी देने की व्यवस्था थी। सुधार की दृष्टि से कई बिंदु सामने आए। मगर मुख्य संयोजक के नाते चंदनजी के लिए समितियों को एक सूत्र में बाँधकर रखने की प्रशंसात्मक टिप्पणी घुमा-फिराकर अनेक वक्ताओं ने दोहराई।

कोटा के अत्यंत सक्रिय, लायन क्लब के अध्यक्ष, सामाजिक गतिविधियों के संचालन में महती भूमिका निभाने वाले एक सदस्य ने अंत में अपनी बात रखी। उन्होंने भाषा अधिकरण के कम बजट को बाधा न बनने देकर पारदर्शिता रखते हुए जन सहयोग लेकर, बड़ी संख्या में कार्यक्रम संपन्न कराने के लिए विचारधारा को महत्त्व न देकर संपूर्ण प्रदेश को प्रचार माध्यमों का भरपूर लाभ लेते हुए भाषा विषयक ऊर्जा से भरने का सर्वाधिक श्रेय चंदनजी के नेतृत्व को दिया।

उन्होंने प्रस्ताव रखा, चंदनजी को एक और कार्यकाल के लिए राज्य सरकार अध्यक्ष मनोनीत करे। अत्यंत उत्साहपूर्वक सदस्यों ने सर्वसम्मति से प्रस्ताव को स्वीकार किया। कोटा के सदस्य ने भाषा अधिकरण के सचिव हेमंतजी से आग्रह किया कि प्रस्ताव राज्य सरकार को भेजें।

समापन उद्‌बोधन में चंदनजी ने स्नेह, सदेच्छा व सहयोग के लिए भाषा अधिकरण के पदाधिकारियों, कार्यकारिणी सदस्यों, अधिकरण सदस्यों व समिति सदस्यों का आभार माना। उन्होंने जोर देकर कहा कि अधिकरण की उपलब्धियों का श्रेय मिलकर किए गए काम को जाता है। अध्यक्ष या मुख्य संयोजक निमित्त मात्र था। महल की मजबूती कंगूरों के कारण नहीं, नींव की वजह से होती है। जो हो सका है, उसे चंदनजी के दो हाथ और एक मस्तिष्क से नहीं किया जा सकता था। तीन सौ हाथों और डेढ़ सौ मस्तिष्कों के संयुक्त कर्तृत्व का सुफल हमारे सामने है। चंदनजी ने तीन वर्षों में रह गई कमियों, हुई त्रुटियों का सारा दायित्व अपने ऊपर लेते हुए मनुष्य की सीमाओं के साथ संलग्न करते हुए सदस्यों को विश्वास दिलाया कि उनकी नीयत, भावना या मंशा में कभी खोट नहीं रहा।

मूर्धन्य लेखक। हिंदी में तेरह, सिंधी में आठ, स्वयं अनूदित तीन, अन्य भाषाई लेखकों द्वारा अनूदित छह, कुल तीस पुस्तकें तथा १२०० से अधिक रचनाएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। २५० से अधिक कार्यक्रम आकाशवाणी से प्रसारित। अकादमियों, सरकारी व गैर-सरकारी संस्थाओं से ३५ पुरस्कार और ५० से अधिक सम्मान प्राप्त।

सम्मान समारोह के लिए आमंत्रित राजस्व मंत्री से भोजन साथ करने का अनुरोध किया गया था। डेढ़ बजे से ढाई बजे तक भोजन का समय निर्धारित था। राजस्व मंत्री को पौने दो बजे का समय दिया गया था। डॉक्टर और दो सदस्यों को राजस्व मंत्री के स्वागत के लिए पहले ही सूचना केंद्र के मुख्य द्वार पर भेज दिया गया था। चंदनजी की विश्लेषण सत्र में उपस्थिति आवश्यक थी। सत्र लंबा खिंच गया था, इसलिए इच्छा होते हुए भी स्वागतार्थ स्वयं जाना उनके लिए संभव नहीं था।

लगभग पौने दो बजे जब राजस्व मंत्री पहुँचे, सभागार में चंदनजी का भाषण चल रहा था। पूर्व निश्चित व्यवस्थानुसार राजस्व मंत्री को सूचना केंद्र के प्रबंधक कक्ष में लगे सोफा पर बैठा दिया गया था। उनके आगमन की सूचना आने के बाद पाँच-सात मिनट में सत्र समाप्त करके चंदनजी जल्दी-जल्दी प्रबंधक कक्ष में गए। वे आशंकित थे कि अनुपस्थित पाकर राजस्व मंत्री मुखर अथवा मौन रूप से नाराज होंगे। इसलिए उनके सामने पहुँचते ही चंदनजी ने विलंब से उपस्थित होने के लिए हाथ जोड़कर क्षमा माँगी। अपेक्षा के विपरीत राजस्व मंत्री ने सहृदयता के साथ हँसकर कहा, "आपके कर्तव्य पालन के स्वर मैं सुन पा रहा था। मुझे अच्छा लगा कि आपने औपचारिकता को दायित्व के ऊपर हावी होने नहीं दिया।"

चंदनजी आशंका मुक्त होकर बोले, "आप की कृपा है और महानता भी कि प्रोत्साहित कर रहे हैं।"

राजस्व मंत्री हलका हँसे। चंदनजी ने डॉक्टर की ओर देखा, ''भोजन

यहाँ करना चाहेंगे या बाहर सबके साथ?"

डॉक्टर जवाब दें, इससे पहले राजस्व मंत्री ने जवाब दिया, ''यहाँ क्यों? सबके साथ करेंगे। कई लोग पूर्व परिचित होंगे। कुछ नए मिलेंगे। चलिए, अगला सत्र ढाई बजे निर्धारित है।"

राजस्व मंत्री की अनौपचारिक उन्मुक्तता चंदनजी को अच्छी लगी। राजस्व मंत्री के साथ डॉक्टर, दोनों सदस्य और चंदनजी उस हाल में आ गए, जहाँ पहले ही भोजन की शुरुआत हो चुकी थी। दीवारों के साथ लगी कुरसियों के अतिरिक्त तीन गोल मेजों के चारों ओर छह-छह कुरसियाँ लगीं थीं। राजस्व मंत्री और डॉक्टर एक मेज के निकट कुरसियों पर बैठ गए। दोनों सदस्य और चंदनजी वहाँ नहीं बैठे। सदस्य, राजस्व मंत्री और डॉक्टर के लिए भोजन परोसकर प्लेट लाने गए। चंदनजी व्यवस्था देखने, जिन लोगों ने प्लेट नहीं लगाई थी, उनसे पूछने और अपने लिए प्लेट लगाने चले गए। पंक्ति में लगने लगे तो आग्रहपूर्वक आगे आकर, भोजन की प्लेट लगाकर लाने के लिए कई लोग सामने आ गए।

दीवारों के साथ लगी कुरसियों के अतिरिक्त तीन गोल मेजों के चारों ओर छह-छह कुरसियाँ लगीं थीं। राजस्व मंत्री और डॉक्टर एक मेज के निकट कुरसियों पर बैठ गए। दोनों सदस्य और चंदनजी वहाँ नहीं बैठे। सदस्य, राजस्व मंत्री और डॉक्टर के लिए भोजन परोसकर प्लेट लाने गए। चंदनजी व्यवस्था देखने, जिन लोगों ने प्लेट नहीं लगाई थी, उनसे पूछने और अपने लिए प्लेट लगाने चले गए। पंक्ति में लगने लगे तो आग्रहपूर्वक आगे आकर, भोजन की प्लेट लगाकर लाने के लिए कई लोग सामने आ गए।

सब को मुसकराकर मना करते हुए वे अन्य सदस्यों की तरह पंक्ति में लगे। इस दौरान आगे पीछे खड़े प्रतीक्षारत लोगों से हलके-फुलके अंदाज में वे बतियाते रहे। प्लेट में भोजन लेकर उन्होंने उस मेज की तरफ रुख किया जहाँ राजस्व मंत्री बैठे थे। लोग वहीं आकर राजस्व मंत्री को नमस्कार करते। राजस्व मंत्री पूर्व परिचय के अनुसार हाल-चाल पूछते। व्यक्तिगत या शिष्टाचार आधारित बात करते। चंदनजी पहुँचे तो उनके लिए तपाक से एक कुरसी खाली कर दी गई। कुरसी छोड़ने वाले को एक हाथ से पकड़ कर उन्होंने बैठाया और राजस्व मंत्री से पूछा, "मिर्च-मसाले ठीक हैं न?"

"भोजन की व्यवस्था तो कैटरर से कराई होगी न?"

"जी नहीं, प्रायोजित कराई है। रसोइयों को बैठाकर भोजन तैयार हुआ है।"

"अच्छा, अच्छा! तब ठीक है। प्रायोजक कौन है?"

"एक कोचिंग सेंटर है। संचालक को आप से मिलकर बहुत अच्छा लगेगा। इजाजत दें तो बुलाऊँ?"

"हाँ, हाँ। जरूर बुलाइए।"

चंदनजी ने संदेश भेजकर बुलवाया। उन्होंने आकर राजस्व मंत्री के चरण स्पर्श करके प्रणाम किया।

"कोचिंग सेंटर किस नाम से चलाते हैं?"

प्रायोजक ने नाम बताया।

"कहाँ चलाते हैं?"

प्रायोजक ने पता बताया।

"क्या नाम है आपका?"

उन्होंने अपना नाम बताया। उनके हाथ बँधे और चेहरे पर लगातार मुसकान थी।

"चंदनजी बता रहे थे, आपने भोजन की व्यवस्था की है। कोई लाभ है या केवल समाज सेवा?"

उन्होंने चंदनजी की ओर देखते हुए उसी तरह विनम्रता से कहा, "सर का आदेश था।"

"सर को कैसे जानते हैं?"

"कोचिंग सेंटर पर सर की कृपा है। दिशा-निर्देश देते रहते हैं। कभी-कभी भाषा की कक्षाएँ भी लेते हैं।"

"अच्छा, अच्छा! जज्बा बनाए रखिए।" भोजन हो चुका था। पानी पी चुके थे। घड़ी की ओर देखकर चंदनजी से बोले, "ढाई बज चुके हैं। हॉल में चलें?"

सम्मान समारोह की संकल्पना बताने के बाद चंदनजी ने माला और शाल पहनाकर, स्मृति चिह्न देकर राजस्व मंत्री का स्वागत किया। सम्मानित होने वालों में पदाधिकारी, कार्यकारिणी सदस्य, अधिकरण सदस्य, समिति सदस्य सब शामिल थे। इसलिए उनमें से किसी को न बैठा कर केवल चंदनजी स्वयं राजस्व मंत्री के साथ मंचासीन थे। स्वागत के बाद उन्होंने उदयपुर स्थित पश्चिम क्षेत्र सांस्कृतिक केंद्र में कार्यरत अधिकरण की सांस्कृतिक समिति के सक्रिय सदस्य को मंच पर बुलाकर राजस्व मंत्री से शाल पहनवाकर और अपने हाथों से प्रशस्ति पट्टिका देकर उनका सम्मान किया। इसके तुरंत पश्चात् संचालन के लिए मंच उन्हें सौंप दिया गया।

वर्णक्रमानुसार तैयार की गई सूची में स्वयं को छोड़कर शेष छियासी सदस्यों को सम्मानित करने का वैशिष्ट्य आधार उनके पास उपलब्ध था। नाम पुकारने के बाद जब तक अपने स्थान से उठकर मंच पर पहुँचें, कुछ पंक्तियों में गुणानुवाद सामग्री के लिए चंदनजी के साथ बैठकर उन्होंने तैयारी की थी।

सम्मान की प्रक्रिया पूरी होने के पश्चात राजस्व मंत्री का उद्बोधन था। किंतु उन्हें आमंत्रित करने से ठीक पहले चंदनजी के मित्र, जोधपुर के अधिकरण सदस्य ने अपनी बात कहने की अनुमति माँगी। चंदनजी ने राजस्व मंत्री की ओर प्रश्नाकुल दृष्टि से देखा। उन्होंने अपनी ओर से ही मंच पर बैठे-बैठे सदस्य को आकर अपनी बात रखने के लिए कहा। एक औत्सुक्य भाव सभागार में उपस्थित हर चेहरे पर पढ़ा जा सकता था।

सदस्य ने मंच पर आकर माइक सँभाला, "मैं आप सब का ध्यान इस कार्यक्रम में हुई एक बड़ी चूक की ओर आकर्षित करना चाहता हूँ।" सभागार में बैठा प्रत्येक व्यक्ति उनकी बात सुनकर चौंक गया। "अधिकरण से पिछले तीन सालों में सक्रिय रूप से जुड़े सत्तासी लोग जिस व्यक्ति के कारण सक्रिय रहे, उसे हमने पूरी तरह भुला दिया। इस अवधि में अधिकरण जिसके कारण ईर्ष्या योग्य ऊँचाइयाँ छू पाया, उसके प्रति एक मामूली कृतज्ञता की भावना भी हमारे मन में नहीं जागी। आइए, अपने नायक को उसका उचित अधिकार देने के लिए खड़े होकर तालियों की गूँज के बीच

उसका अभिनंदन करें।"

जिस त्वरा और उत्साह से सभागार में उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति खड़ा होकर जोर-जोर से तालियाँ बजाने लगा, उसे देखकर महसूस होता था, मानो सबकी आंतरिक आकांक्षा के द्वार खुल गए थे। आश्चर्यजनक बात यह थी कि स्वयं राजस्व मंत्री भी खड़े होकर तालियाँ बजा रहे थे।

कई मिनट चली तालियों की गड़गड़ाहट और गले से निकाले गए आह्लाद स्वरों का सिलसिला जोधपुर के उसी सदस्य की वाणी ने रोका, "भावनाओं को अभिव्यक्त करके आप सब ने चंदनजी का अभिनंदन किया है। मैं जो कुछ सोचता था, आप सब भी वही सोचते थे, आपने प्रमाणित किया है।"

कुछ क्षण वे रुके, राजस्व मंत्री की ओर देखा, फिर उन को संबोधित करते हुए बोले, "मुझे पता लगा कि सरकार बदलने के बाद आपने हमारे अध्यक्ष को त्यागपत्र न देने के लिए संदेश भेजा था। मैं गलत तो नहीं बोल रहा हूँ न?" प्रश्न को उन्होंने राजस्व मंत्री की तरफ उछाला। प्रत्युत्तर में राजस्व मंत्री के होंठों पर एक चौड़ी मुसकान उभरी।

मौन स्वीकृति पाकर सदस्य ने अपनी बात जारी रखी, "परंपरा के अनुसार भाषा अधिकरण का अध्यक्ष नहीं बदला गया, क्योंकि आपने पहल की। इस सदन में उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति आपसे एक बार फिर पहल करने का अनुरोध करता है। कृपया चंदनजी को एक और कार्यकाल दिलाइए। आभार।"

जोधपुर के सदस्य मंच से नीचे उतर गए, मगर सभागार में एक तूफान उठ खड़ा हुआ। हर तरफ से एक ही आवाज गूँज रही थी, "कार्यकाल बढ़ाइए, कार्यकाल बढ़ाइए!"

उस तुमुल घोष को तभी विराम मिला जब चंदनजी खड़े होकर मंच पर आए और हाथ उठाकर सब को शांत रहने का संकेत दिया। बिना कोई टिप्पणी किए उन्होंने राजस्व मंत्री को आशीर्वाद देने के लिए माइक पर आमंत्रित किया।

राजस्व मंत्री ने अपने भाषण में अन्य बिंदुओं के साथ राजनीति में जनता और कार्यकर्ताओं की इच्छाओं को महत्त्वपूर्ण मानते हुए, बाहर से नजर न आने वाली विवशता की चर्चा की। सरकार और मंत्री महसूस करते हैं, चाहते हैं फिर भी इच्छित कार्य करने में स्वयं को असमर्थ पाते हैं। कौन सी सरकार होगी जो अपने अधीन कार्यरत संस्थाओं के श्रेष्ठ संचालन की आकांक्षी नहीं होगी, उन्होंने प्रश्न पूछा। विभिन्न प्रकार के दबाव आड़े आते हैं।

राजस्व मंत्री ने विपक्ष के विधायक के नाते अजमेर में उनकी अध्यक्षता में संपन्न समिति सदस्यों के पहले सम्मेलन को याद किया। चंदनजी के अध्यक्षीय कार्यकाल में भाषा अधिकरण की गुणवत्तापूर्ण सक्रियता की प्रशंसा की और आश्वासन दिया कि भविष्य में अधिकरण उत्तरोत्तर श्रेष्ठता की ओर कदम बढ़ा सके, इस दिशा में हर संभव प्रयास करेंगे।

सभागार राजस्व मंत्री के दिए गए हर संभव प्रयास के आश्वासन से संतुष्ट होकर तालियाँ बजा रहा था और चंदनजी राजस्व मंत्री की चतुराई को दाद दे रहे थे। कार्यकाल बढ़ाने के संदर्भ में उन्होंने एक भी शब्द नहीं बोला था। जो कुछ कहा था, ऐसे अवसरों पर मंत्री हमेशा कहते हैं। भाषा अधिकरण शिक्षा विभाग के अंतर्गत कार्यरत है, कार्यकाल बढ़ाने के संबंध में निर्णय शिक्षा मंत्री लेंगे, ऐसा कहते तो उनका रुतबा घट जाता। विवशताओं और दबावों की दलील के भँवर में कार्यकाल बढ़ाने की माँग को खूबसूरती से ठुकराकर राजस्व मंत्री ने हर संभव प्रयास करने की बात कहकर झुनझुना थमाया ही नहीं, बाकायदा बजवाया और बजाने वालों को उपलब्धि के मुगालते में डाला।

उद्‌बोधन के बाद चंदनजी पूर्व अनुभवों के आधार पर राजस्व मंत्री को एक अलहदा कोण से देख पा रहे थे। कार्यकाल बढ़ाने की माँग आकस्मिक रूप से उठी थी। सामान्य बुद्धि वाला व्यक्ति भी समझ सकता था कि चंदनजी की कोई भूमिका इस घटनाक्रम में नहीं थी। राजस्व मंत्री को अचानक उठ आई माँग के पीछे चंदनजी की भूमिका न होने के अनेक संकेत मिले होंगे। इसके बावजूद आशंका ने सिर जरूर उठाया होगा कि कहीं चंदनजी ने चतुराई से माँग को योजना बनाकर आरोपित तो नहीं कराया?

जोधपुर में व्याख्यान माला के बाद जिस विवाद ने तूल पकड़ा था, उसकी जड़ में राजस्व मंत्री की शंकालु प्रवृत्ति के अतिरिक्त कुछ नहीं था। शिकायत के बावजूद यदि शिक्षा मंत्री तथ्यों को विश्लेषित करके सत्य को पहचान सके तो क्यों? क्योंकि शिक्षा मंत्री स्वभाव से राजस्व मंत्री की तरह शंकालु नहीं हैं। अगर सुनी सुनाई बातों के आधार पर निर्णय लेने से पहले राजस्व मंत्री ने चंदनजी को पक्ष रखने का अवसर दिया होता तो जो तनातनी पैदा हुई, जो कटुता फैली, जो मरने-मारने की नौबत आई, जो तलवारें खिंचीं, उसकी स्थितियाँ नहीं बनतीं।

संभवत: राजस्व मंत्री मात्र शंकालु नहीं हैं, कान के कच्चे भी हैं। लोग न जाने क्या-क्या कहेंगे। प्रज्ञावान पुरुष पुष्टि करने के बाद परिस्थिति सापेक्ष निर्णय लेगा। अधैर्यपूर्वक न प्रतिक्रिया देगा और न अकरणीय करेगा। ये विशेषताएँ यदि राजस्व मंत्री में नहीं हैं तो राजनीतिक कद कितना भी बड़ा क्यों न हो जाए, मनुष्य वे स्तरीय नहीं कहलाएँगे। कार्यकाल बढ़ाने को लेकर एकाएक सामने आई परिस्थितियों के संदर्भ में संदेह का उदय राजस्व मंत्री की प्रकृति के अनुरूप है। उन्होंने जो भी सोचा हो, किसी भी नतीजे पर पहुँचे हों, चंदनजी किसी भी रूप में उसके लिए उत्तरदायी नहीं हो सकते। जब चंदनजी का किया-धरा नहीं है तो कौन क्या सोचता है, कौन क्या करता है इस विषय में चिंतित होकर क्या कर लेंगे?

एकाएक उनके होंठों पर मुसकराहट कौंध गई। बेचारे राजस्व मंत्री! केवल एक उदाहरण के आधार पर वे प्रकृति से शंकालु हो गए और स्वयं चंदनजी? सूत न कपास, जुलाहों में लट्ठम-लट्ठा। अपनी ओर से सोच लिया कि जोधपुर के सदस्य उनके पक्ष में पुरजोर तरीके से बोले या सभागार में उपस्थित सदस्यों ने पुनर्नियुक्ति की माँग कर दी, इसका मतलब राजस्व मंत्री ने चंदनजी की लिप्तता की खिचड़ी पका ली। खाई नहीं, केवल पकाई और इसलिए शंकालु हो गए। वे स्वयं भी तो जोधपुर के व्याख्यान माला प्रकरण में राजस्व मंत्री को मिली सूचनाओं के स्रोत के बारे में नहीं जानते। डॉक्टर जोधपुर में उपस्थित नहीं थे। राजस्व मंत्री को रपट या आँखों देखी रपट कहीं और से मिली होगी न? क्या वह व्यक्ति उनका अत्यधिक विश्वसनीय नहीं हो सकता? किसी विश्वसनीय व्यक्ति की सूचना को क्या

चंदनजी पुष्टि करने के बाद स्वीकार करते हैं?

मात्र एक उदाहरण और चंदनजी की नजर में राजस्व मंत्री अवगुणों की खान बन गए। कान के कच्चे हो गए, अधैर्य के अधीन हो गए, पुष्टि किए बिना निर्णय लेने वाले हो गए। शंकालु हुए भी या नहीं, मालूम नहीं। कल्पना कर ली कि शंका करने के बाद राजस्व मंत्री नकारात्मक हो गए और चंदनजी को उस कृत्य की सजा देने की तैयारी कर ली, जो उन्होंने किया ही नहीं था। वस्तुत: कौन है शंकालु? राजस्व मंत्री या स्वयं चंदनजी?

चंदनजी दावा करते हैं कि लेखक होने के नाते वे पर मन प्रवेश करने में माहिर हैं। शंका में मनोविज्ञान और कृत्य में नकारात्मकता की खोज को भले ही विशिष्ट गुण मानें, उन्हें महसूस हुआ, सचमुच यह भ्रम जाल में लिपटा व्यक्तित्व का ऐसा दोष है, जो एकांगी बनाता है। राजस्व मंत्री राजनीति में जिस स्थान पर हैं, उसे छोटा मानने से बड़ा धोखा नहीं हो सकता। शंका का मानसिक रोग होता तो चंदनजी की फोन पर माँगी गई क्षमा को वे भिन्न मनोभावना का प्रतिफल मानकर सामान्य व्यवहार नहीं करते। सदस्यों के सम्मान समारोह में नहीं आते। आने के बाद सहज नहीं रहते।

क्यों चंदनजी की दृष्टि में राजस्व मंत्री इतने नासमझ हैं कि जोधपुर के सदस्य के अचानक सामने आए भावोद्रेक को चंदनजी की दुरभिसंधि मानेंगे? क्यों भूल जाते हैं चंदनजी कि राजस्व मंत्री आए दिन सभागार में उमड़े भावनात्मक विस्फोट जैसे दृश्य अनेक बार देख चुके हैं। सार्वजनिक जीवन में जिसकी आयु गुजरी हो, वह स्वाभाविक को सृजित व आरोपित मान बैठेगा, यह शंका राजस्व मंत्री की नहीं हो सकती।

चाहे दूध को पानी से पूरी तरह अलग न कर पाएँ किंतु राजस्व मंत्री दूध और पानी में अंतर नहीं कर सकते, यह शंका चंदनजी का दिमागी फितूर है। दुश्चिंताएँ आमंत्रित करना और दूसरों को उनके लिए दोष देना चिंतन प्रक्रिया का वह अधोगामी पड़ाव है, जिससे अभी थोड़ी देर पहले तक वे जूझते रहे हैं। चंदनजी को लगा बादल छँट गए हैं। वातावरण रोशनी से भर गया है। थोड़ी देर पहले तक महसूस होने वाली उमस समाप्त हो गई है।

सा अ

डी-१८३, मालवीय नगर,
जयपुर-३०२०१७ (राज.)
दूरभाष : ९८२८४००३२५
bhagwanatlani@rediffmail.com

कविता

कोरोना

● रामदरश मिश्र

हिंदी के मूर्धन्य कवि-साहित्यकार, जिन्होंने साहित्य की अनेक विधाओं को अपने रचनात्मक अवदान से समृद्ध किया। 'जल टूटता हुआ' और 'पानी के प्राचीर' उपन्यासों की धूम रही। अभी हाल में कविता-संग्रह 'आम के पत्ते' 'व्यास सम्मान' से सम्मानित। इसके अतिरिक्त भी अनेक विशिष्ट सम्मान प्राप्त।

तू छिपा था कहाँ एकाएक आया कोरोना
छा गई जग बीच तेरी क्रूर माया कोरोना,
जिंदगी ले ली करोड़ों बन के दानव क्रूरतम
सुन न, कोई आदमी से जीत पाया कोरोना।

छीन ली रोटी झपटकर गरीबों के हाथ से
रो रहे हैं लोग कितने कर लगाकर माथ से,
बंद कितने हो गए हैं महीनों से गेह में
है तड़पता साथ मिलने के लिए अब साथ से।

तू करे जो भी, न रुकता आदमी का काम है,
गति पगों की है, भरी सी सुबह है या शाम है,
कर रहे सर्जक नहीं मालूम कितनी सर्जना,
आदमी की रूह की छवि आदमी के नाम है।

तेरे कारण कोरोना कितने व्यापार गए
जगमग-जगमग आते थे वे ऋतु-त्योहार गए,
मैं अपने घर में बंदी सा सोचा करता हूँ
हँसते से आते थे जो दिन, वे बेजार गए।

बचपन जो खेला करता था, खुद में बंद हुआ,
हँसता सफल घरों से स्कूलों तक का मंद हुआ।
चहल-पहल सो गई पार्क में जो थी लहराती
मौन हुआ संवादों का स्वर दुःख स्वच्छंद हुआ।

कभी लगता, जा रहा है, फिर लौट आ जाता है तू,
इस भयानक खेल से अपने न शरमाता है तू।
लड़ रहा है आदमी दिन-रात तेरे जुल्म से,
देखना है दिवस कितने जग में रह पाता है तू।

सा अ

आर-३८, वाणी विहार
उत्तम नगर
नई दिल्ली-११००५९

भक्तिकालीन सगुण-निर्गुण द्वंद्व

● अलका आनंद

नवोदित लेखिका। असिस्टेंट प्रोफेसर, श्यामा प्रसाद मुखर्जी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

उत्तर भारत का भक्ति आंदोलन मध्य युग की एक महान् सांस्कृतिक घटना है। भक्ति काव्य इस भक्ति आंदोलन की उतनी ही महत्त्वपूर्ण उपज है। उत्तर भारत में भक्ति आंदोलन की यह विशिष्ट देन भक्ति के दो रूपों को लेकर सामने आई—निर्गुण भक्ति तथा सगुण भक्ति।

निर्गुण भक्ति के तहत सृष्टि के नियंता के रूप में एक ईश्वर की बात की गई है, जो सर्वव्याप्त, निर्गुण, निराकार और निरूपाधि है। सगुण भक्ति के अंतर्गत हिंदू धर्म शास्त्रों के अनुरूप उसके अवतारी रूप की प्रतिष्ठा हुई, उसे प्रधानत: राम और कृष्ण के रूप में उपासना का विषय बनाया गया। भक्ति की इन दोनों धाराओं के माध्यम से हमें न केवल संतों और भक्तों की एक शानदार परंपरा मिली, भक्ति के आवरण में उनकी उस विशिष्ट रचनाशीलता से भी हमारा साक्षात्कार हुआ, जिसकी अंतर्वस्तु उपासनागत और विचारगत भिन्नताओं के बावजूद अपने बुनियादी रूप में परस्पर भिन्न नहीं है।

भक्ति साहित्य में सांस्कृतिक संवाद की वजह से ही निर्गुण और सगुण ज्ञान और भक्ति सनातन और सृजनात्मकता में द्वंद्व कम और सहअस्तित्व अधिक दिखाई पड़ता है। स्वयं तुलसी में सनातनता एवं सृजनात्मकता का गहरा द्वंद्व दिखाई पड़ता है।

तुलसी की सनातनता कहती है—'होइहें सोई जो राम रचि राखा।' उनकी सृजनात्मकता सावधान करती है—'जो जस करहिं तस फल चाखा।' इधर कबीरदासजी निर्गुण ब्रह्म के उपासक हैं, लेकिन वे भी सगुण को नकारते नहीं—

'नाम निरंजन नयनन मध्ये
नाना रूप धरंत

अपनी कुछ विशिष्ट आध्यात्मिक मान्यताओं के कारण ही संत कवियों का साधना मार्ग सगुणमार्गी कवियों से भिन्न दिखाई पड़ता है। दोनों के आचार-विचार संबंधी भिन्नताओं की ओर संकेत करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी कहते हैं—

''सगुण उपासना ने पौराणिक अवतारों को केंद्र बनाया और निर्गुण उपासना ने योगियों अर्थात् नाथपंथियों के निर्गुण परब्रह्म को। प्रथम ने हिंदू जाति के बाह्याचार की शुष्कता को आंतरिक प्रेम से सींचकर रसमय बनाया और दूसरी साधना ने बाह्याचार की शुष्कता को ही दूर करने का प्रयत्न किया। एक ने समझौते का रास्ता अपना लिया, दूसरी ने विद्रोह का, एक ने श्रद्धा को पथ-प्रदर्शक माना, दूसरी ने ज्ञान को, एक ने सगुण भगवान् को अपनाया, दूसरी ने निर्गुण भगवान् को, सगुण भाव के भक्तों की महिमा उनके असीम धैर्य और अध्यवसाय में है, पर निर्गुण श्रेणी के भक्तों की महिमा उनके उत्कृष्ट साहस में है। एक ने सबकुछ स्वीकार करने का अद्‌भुत साहस दिखाया और दूसरे ने सब कुछ छोड़ देने का असीम साहस।''

निर्गुण और सगुण भक्ति कविता में भिन्नताओं के बीच कतिपय ऐसे तत्त्वों को उभारा जा सकता है, जहाँ उनमें कोई भेद नहीं है। इन तत्त्वों में एक संतों और भक्तों का यह समान विश्वास है कि प्रेम से बढ़कर और कोई पुरुषार्थ नहीं है। प्रेम सभी संतों और भक्तों का केंद्रीय स्वर रहा है। इस प्रेम के समक्ष मनुष्य और मनुष्य के बीच सारे भेद नगण्य हैं। यह वह तार है, जो भेदों का अतिक्रमण करता हुआ मनुष्य मात्र के हृदयों के बीच से उन्हें एक सूत्र में गूँथता हुआ गया है। भेद बुद्धि के विसर्जन के बाद ही इसकी उपलब्धि हो सकती है, अहं को भस्म करके ही उसे पाया जा सकता है। उसे पा लेना ईश्वर को पा लेना है—इसे सभी संतों ने बार-बार दुहराया है। कबीर जब कहते हैं कि यह प्रेम किसी बाग-बगीचे या खेत में नहीं उपजता, न ही बाजार में बिकता है, राजा हो या प्रजा, कोई भी इसे पा सकता है, शर्त यही है कि अपना शीश काटकर पहले ही जमीन पर रख देना होगा, तो वे वस्तुत: इस प्रेम को ईश्वर के समकक्ष ही घोषित कर रहे होते हैं। गोस्वामी तुलसीदास के यहाँ भी उनके राम को यदि कुछ भी प्रिय है, तो यह प्रेम ही

है जिसमें अन्यता है, समर्पण है, समस्त भेद बुद्धि का त्याग है। जो प्राणिमात्र तक व्याप्त है। मीरा इस प्रेम को लेकर ही बावली रही और उससे उपजे दर्द को दर-दर भटकते हुए सबको बाँटती रही।

निर्गुण भक्ति में जहाँ हमें जाति, वर्ग-वर्णगत भेदभावों तथा उसके फलस्वरूप साधारण जन पर होने वाले अत्याचारों आदि के तीखे विद्रोह का भाव दिखाई पड़ता है, सगुण कृष्ण भक्ति में आकर वह एकदम कम हो जाता है। फिर भी, सगुण कृष्ण भक्ति का आलंबन कृष्ण होने के नाते और जहाँ तक कृष्ण के लोकप्रिय चरित्र का सवाल है, उस नाते सगुण कृष्ण भक्त कवि यदि जातिगत तथा वर्णगत भेदभाव आदि का तीखा विरोध नहीं करते तो कृष्ण की लीलाओं में ही मन रमाने के नाते निर्गुण भक्ति की इस निम्नवर्गीय जनवादी रुझान का विरोध भी नहीं करते। सगुण भक्ति में आकर स्थिति काफी कुछ बदली हुई दिखाई देती है। जनसाधारण की आकांक्षाओं से सगुण रामभक्ति भी जुड़ती है, पर उच्चवर्ण के नेतृत्व की मजबूती के नाते वह निम्नवर्गीय जनवादिता का विरोध न करते हुए भी पुरानी व्यवस्था अर्थात् वर्णाश्रम व्यवस्था का समर्थन करती है और धीरे-धीरे उस निम्नवर्गीय जनवादी रुझान को एकदम समाप्त ही कर देती है। सगुण-निर्गुण भक्ति काव्य के परिप्रेक्ष्य में गजानन मुक्तिबोध सार्थक सवाल उठाते हैं—

"क्या यह एक महत्त्वपूर्ण तथ्य नहीं है कि रामभक्ति शाखा के अंतर्गत एक भी प्रभावशाली और महत्त्वपूर्ण कवि निम्न जातीय शूद्र वर्गों से नहीं आया? क्या यह एक महत्त्वपूर्ण तथ्य नहीं है कि कृष्ण भक्ति शाखा के अंतर्गत रसखान और रहीम जैसे हृदयवान मुसलमान कवि बराबर रहे किंतु रामभक्ति शाखा के अंतर्गत एक भी मुसलमान और भी शूद्र, कवि प्रभावशाली और महत्त्वपूर्ण रूप से अपनी काव्यात्मक प्रतिभा विशद नहीं कर सका।"

निष्कर्ष यह कि जो भक्ति आंदोलन जनसाधारण से शुरू हुआ और जिसमें सामाजिक कट्टरपन के विरुद्ध जनसाधारण की सांस्कृतिक आकांक्षाएँ बोलती थीं, उसका मनुष्य सत्य बोलता था, उसी भक्ति आंदोलन को उच्चवर्गीयों ने आगे चलकर अपनी तरह बना लिया और उससे समझौता करके फिर उस पर अपना प्रभाव कायम करके और अनंतर उस पर अपना पूरा प्रभुत्व स्थापित कर लिया।

सगुण-निर्गुण भक्तों की सफलताओं के संबंध में दो विचारकों का मंतव्य भी द्रष्टव्य है। डॉ. पीताबंरदत्त बड़थ्वाल के अनुसार, 'निर्गुणियों की काव्य रचना-संबंधी सफलता उनके रूपात्मक प्रेम-संगीत, विनय तथा आनंदाद्रेक में देखी जा सकती है, क्योंकि उन्हीं में उनकी आंतरिक अनुभूति का पता चलता है, तथा सौंदर्य, प्रेम एवं सत्य की त्रयी की अभिव्यक्ति भी उन्हीं में होती है।

वहीं अयोध्या सिंह हरिऔध का कहना है—

भ्रमरगीत में उद्धव गोपियों के लिए ज्ञान का संदेश लेकर आते हैं। उन गोपियों के लिए जो कृष्ण का अपलक इंतजार कर रही हैं, जो गोपियाँ लोक-लाज एवं मर्यादा त्याग कर कृष्ण को अपना सर्वस्व समर्पण कर चुकी हैं, उन्हें ही ज्ञान के भाषण के बदले में सुनने को मजबूर होना पड़ता है। ऐसे में गोपियाँ उद्धव को भला-बुरा कहती हैं। भावुकता के क्षण में उनकी वाणी सहज नहीं रह पाती, इसलिए व्यंग्य-बाण उद्धव का सहना पड़ता है। निर्गुण को नकारने के लिए गोपियाँ तरह-तरह के उपाय सोचती हैं।

निर्गुण उपासना का अधिकांश संबंध ज्ञानमार्ग से है। किंतु जब भक्ति अथवा प्रेम का उद्रेक हृदय में होता है, तब सगुण उपासना ही सामने आती है। निर्गुणवादी होकर भी कबीर साहब को इस पथ का पथिक होना पड़ा था।

सूरकाव्य में भी सगुण-निर्गुण जैसे विवाद के दर्शन होते हैं। बल्लभाचार्यजी ने जब यह कहा कि ज्ञान सरसी तथा भक्ति है सुमेरु पदत तो सगुणमार्गियों को बहुत मिला, पर सूरदास ने कभी भी अपने को इसमें नहीं उलझाया। उनका ब्रह्म सगुण एवं निर्गुण दोनों हैं।

आदि सजतिन हरि अविनाशी,
निर्गुण सगुण घरे तर दोड़े।

भ्रमरगीत में उद्धव गोपियों के लिए ज्ञान का संदेश लेकर आते हैं। उन गोपियों के लिए जो कृष्ण का अपलक इंतजार कर रही हैं, जो गोपियाँ लोक-लाज एवं मर्यादा त्याग कर कृष्ण को अपना सर्वस्व समर्पण कर चुकी हैं, उन्हें ही ज्ञान के भाषण के बदले में सुनने को मजबूर होना पड़ता है। ऐसे में गोपियाँ उद्धव को भला-बुरा कहती हैं। भावुकता के क्षण में उनकी वाणी सहज नहीं रह पाती, इसलिए व्यंग्य-बाण उद्धव का सहना पड़ता है। निर्गुण को नकारने के लिए गोपियाँ तरह-तरह के उपाय सोचती हैं। उनके प्रति अज्ञानता प्रकट करती हुई कहती हैं—

निर्गुण कौन देस को बासी?
मधुकर! हँसि समुझाय, सौंह दै बूझति साँच, न हाँसि।
को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि, को दासी?

सूरदासजी सगुण तथा निर्गुण ब्रह्म के दोनों स्वरूपों में कल्पना तथा आस्था रखते हुए भी चूँकि प्रेम और भक्ति के जरिए साकार ब्रह्म को साधने की बात करते हैं, इसलिए भ्रमरगीत में प्रेम तथा भक्ति की श्रेष्ठता प्रतिपादित हुई मिलती है, न कि निर्गुण की धज्जियाँ उड़ाई गई हैं।

निष्कर्षत: भक्तिकाल में निर्गुण और सगुण के बीच ज्ञान और भक्ति के बीच में, सनातन और सृजनात्मकता के बीच में एक-दूसरे को स्वीकारने और सहने की प्रवृत्ति मिलती है तो यह सांस्कृतिक संवाद की वजह से ही। इस संवाद की वजह से ही पूरे भक्तिकाल में अलग-अलग धाराओं के बीच एक ही स्वर सुनाई पड़ता है। और दो विरोधी प्रवृत्तियों के बीच संवाद तभी स्थापित होता है, जब जागरण हो या एक-दूसरे को जानने समझने की उत्सुकता हो। अत: भक्ति साहित्य इसी सगुण-निर्गुण सांस्कृतिक जागरण का साहित्य है।

डब्ल्यू-८, सी/४, वेस्टर्न ऐवन्यू,
सैनिक फॉर्म, नई दिल्ली-११००६२
दूरभाष : ९८७३१४७२०२

रि-प्ले

● रजनी गुप्त

मिनी और राजन के पास बातों के अजस्र खजाने होते। दोनों लीक से हटकर कुछ अलग करेंगे, ऐसे इरादे से पढ़ रहे थे। वे न जाने कहाँ-कहाँ के किस्से ले आते। राजनीति, क्रिकेट, टी.वी. हो या मोहल्ले में चल रहे बतरस-गप्पें, लड़का-लड़की के बीच चल रही गरमागरम खबरें या हाल में घटी कोई घटना, वे हर प्रसंग पर खूब चर्चा करते रहते। ऐसे किस्सों के थान खुलते तो खुलते चले जाते। थकते दोनों ही नहीं थे। दोनों स्कूल से लेकर कॉलेज तक शुरू से साथ पढ़नेवाले पक्के दोस्त थे। इस दोस्ती में कोई भी मिलावट कतई नहीं थी। उनकी इस पारिवारिक मित्रता में उत्सव/त्योहारों पर भी आवाजाही लगी रहती। सालों पहले लड़के-लड़कियों के बीच ऐसी पारस्परिकता या आत्मीयता को शक-संदेह की नजरों से उतना ज्यादा नापने का चलन नहीं था। छोटे शहरों में किताबें या नोटबुक लेने-देने के किस्से अमूमन प्रेम-प्रसंग में बदलते जरूर थे लेकिन कुछ लोग प्रेम-प्रसंग के प्रचलित फार्मूलों में यकीन नहीं करते थे। हम यहाँ ऐसे ही किस्से पर लौटते हैं, जहाँ लगभग दो दशक बाद राजन और मिनी मिल रहे थे।

'ऐ मिनी, सुन, ये घिसी-पिटी हाल-चाल लेनेवाली इधर-उधर की बातें कुछ जम नहीं रहीं। चल, कुछ लीक से हटकर बातें की जाएँ, क्यों?' राजन ने बहस आगे बढ़ाते हुए कहा।

'हूँ, क्यों न आज हम अपनी जी गई जिंदगी का फिर से वाचन करें। शुरुआत कुछ यों कि सबसे पहले आलथी-पालथी मारकर आँखें बंद करके बैठ जाओ। पीछे, और पीछे की दुनिया की तरफ मुड़कर देखना है, यहाँ-वहाँ मत देखना। सीधे २५ साल पहले का वह दौड़ता-भागता लड़का राजन, अपने को वहीं से देखना शुरू करो। एक लंबी साँस लेकर राजन सुकून से पालथी मारकर बैठ गया। तभी मिन्नी ने रिप्ले बटन ऑन कर दिया।

उस समय कस्बेनुमा छोटे शहरों की शांत सी दुनिया थी। घर से बाजार या बाजार से घर लौटते हुए वह हमेशा मिनी के बारे में ही सोचता रहता था। आज मिनी ने ये किया होगा या आज उसने इस विषय में पूरा रट्टा लगा लिया होगा। स्कर्ट-ब्लाउज पहने मिनी और राजन अकसर चलते-चलते दुनिया भर की बातें करते तो कभी अपने अपने कॅरियर को लेकर ढेर सारी योजनाएँ बनाते रहते। तभी तय किया था कि वे सिर्फ अच्छे दोस्त बनकर रहेंगे। अनकही सी बाउंड्री लाइन खींच ली गई, जिसे किसी ने लाँघने के बारे में सोचा तक नहीं। सोचने की कोई गुंजाइश थी क्या? नो, नैवर। अचानक मौन संवाद चल पड़ा।

सुपरिचित लेखिका। अब तक नौ उपन्यास, छह कहानी-संग्रह, दो पुस्तकें स्त्री-विमर्श पर, तीन कृतियों का संपादन। युवा लेखन सर्जना पुरस्कार, आर्यस्मृति साहित्य सम्मान, अमृत लाल नागर पुरस्कार, रावी स्मृति सम्मान, महादेवी वर्मा अवार्ड, दर्जनों विश्वविद्यालय में शोध-कार्य सम्पन्न एवं देश भर के अन्य विश्वविद्यालयों में शोध-कार्य जारी।

'हूँ, अभी भी याद है, सीढ़ियों पर बैठकर कभी मीठी गोलियाँ, मूँगफली या बेर खाते तो कभी रेलवे प्लेटफॉर्म पर बिकती कचौड़ियाँ खाते ट्रेन के आने और गुजर जाने का इंतजार करते हम कभी पैसेंजर्स की संख्या गिनते तो कभी अजीबो-गरीब शर्तें तय करते, याद हैं न वे सब बचपन की बातें?

'हाँ, हाँ, अच्छी तरह। पैसेंजर गाड़ी ठीक ५ बजे तक नहीं आई तो कचौड़ी तुम खिलाओगे और लेट होने पर मैं। पीछेवाले डब्बे में दो महिलाएँ होंगी तो हम जीतेंगे वरना तुम। मिनी, देखो, इस बार तुम जीत गई। ये देखो, पीछे से उतर रही हैं दो लड़कियाँ।' राजन ने चिढ़ाते हुए कहा।

'राजन, तुम ट्रेन के डब्बे में चढ़ जाते तो मैं घबराने लगती। ऐ, चढ़ती ट्रेन से मत उतरो, मैं डरकर चिल्लाने लगती तो तुम हँसते हुए पीछे से आकर चौंका देते। तुम्हारी बातों से मैं अकसर मुँह फुला लेती तो तुम किसी-न-किसी बात पर हँसा देते। यदि मैं रूठी रही तो तुम घर आ धमकते, 'मिनी कहाँ है काकी? जरूरी बात करनी है।'

'होगी ऊपर, किताबों के ढेर में।' जवाब छोटी बहन देती तो मैं धड़धड़ाते हुए सीधे छत पर जाने के लिए ऊपरवाले कमरे की तरफ मुड़ता कि तुम्हारे भाई चिल्लाने लगते, 'क्यों रे, तू पढ़ने में तो ठीक है। काहे मिन्नी का टाइम खोटी करता रहता? पढ़ रही है वह। सुनकर मैं सिटपिटा जाता

और झूठ-मूठ बोल देता, 'उसे आज का होमवर्क बताना था।'

'ठीक है, अब तू जा यहाँ से।' भाई आँखें तरेरते हुए डपट देता तो मैं भारी मन से सीढ़ियाँ उतरते हुए लौटता तो नीचे उतर बालकनी से हाथ हिलाती हुई तुम दिख जाती, दुपट्टे से आँखें पोंछती। बड़ी सेंसिटिव है ये मिनी, सोचते हुए मैं चिंता करने लगता। इसकी इतनी केयर कौन करेगा जितनी मैं करता हूँ। इसे अकेले यहाँ छोड़कर कैसे बाहर जा पाऊँगा, सोचते हुए परेशान हो जाता। पढ़ने में मन लगाने की कोशिश करता। मम्मी स्कूल से लौटतीं तो शाम को ही लौटतीं। मुझे कमरे में पढ़ते देखकर, 'समय से सो जाना राजन, कहकर वापस चली जातीं। मैं कंबल में सिर छिपाकर सोने की कोशिश करता, लेकिन पलकों के अंदर पसरे अँधेरे में मिनी की बातें और रोजाना की घटनाओं की जुगाली चलती रहती।

धीरे-धीरे १२वीं पास करते ही आगरा से दिल्ली भेज दिया गया। एक झटके में ऐसा निर्णय सुना दिया गया जबकि वह इंजीनियर न करके आई.ए.एस. बनना चाहता था। वह आखिरी दिन था, जब उसे शहर छोड़ना था। बहुत बार मिन्नी के घर के चक्कर काट आया मगर वह नहीं मिली तो वह परेशान रहा। आखिर किससे कहता अपनी तकलीफ? आखिरकार स्टेशन पर निकल गया वह। टिकट खिड़की पर खड़ी दिख गई मिन्नी।

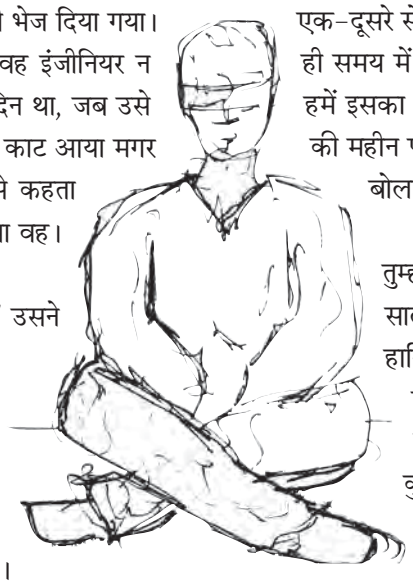

'तुम यहाँ? इतनी रात को, नौ बज चुके हैं?' उसने चौंककर पूछा।

'तो जा रहे हो, ऐसे अचानक बिना बताए?' वह रुँधे कंठ से शिकायती लहजे में बोली थी।

'हाँ, गया तो था तुम्हारे घर, दो-तीन बार। कहाँ-कहाँ नहीं तलाशा तुम्हें मगर तुम तो···नदारद।' शब्द थे कि खोखले ठूँठ की तरह निरर्थक लगने लगे। गीली आँखों को पोंछते हुए किसी तरह इतना बोल पाया, 'मिनी, बस पढ़ती रहना। इसे बचा लोगी तो लगेगा, यहीं कहीं किसी कोने में मैं भी जिंदा रहूँगा इन किताबों में, करोगी न ऐसा?'

पूरी ताकत से कहे गए शब्द ट्रेन की गड़गड़ाहट में बिखर गए, बिखरती स्याही की तरह जिसके धब्बे मिन्नी के दिल में जज्ब होते गए। 'पढ़ती रहना···इसे बचाकर रखोगी तो लगेगा, कहीं-न-कहीं मैं भी जिंदा हूँ, करोगी न ऐसा?' सुनकर जोर से रुलाई आई। कैसे भी आँसू थमते ही नहीं थे। लगा जैसे राजन के बिना वह कैसे जी पाएगी इस निचाट सूनी दुनिया में, कौन समझेगा उसे? उसके जीवन के हाजिरी रजिस्टर के हर पन्ने पर दर्ज थे राजन के हस्ताक्षर। सुबह उठने से लेकर कॉलेज जाने, लौटकर पढ़ने या शाम को खेलने या दोस्तों के जन्मदिन पर संग जाने में वह राजन के साथ ही आती-जाती। देर रात छत पर कक्का से कहानी सुनने से लेकर सोने तक, कहाँ नहीं था राजन? सोच-सोचकर उसके आँसू रुकते ही नहीं कि ट्रेन सरकने लगी। राजन खिड़की से हाथ हिलाता रहा। वह आँसू पौछती कि अगले ही पल फिर वेग से आँसू उमगने लगते। मन करता कि वह बुक्का फाड़कर चीखकर रोक ले उसे मगर आवाज गले में ही घुटकर रह गई। किसी तरह चप्पल घसीटते हुए वह घर लौटी। महीनों चुपचाप रहकर सिर्फ और सिर्फ पढ़ती रही। मन बदलने के लिए यहाँ-वहाँ उन सब जगहों पर जाती जहाँ राजन के साथ वक्त गुजारती थी। बॉलीवॉल खेलना राजन ने ही सिखाया था। क्या-क्या याद करे वह और क्या भूल जाए? कुछ भी तो नहीं भूल सकती क्योंकि कुछ भी तो यादों से निकलता ही नहीं था। स्टडी को महफूज रखना, राजन की कही यह बात दुहराती तिहराती, ओढ़ती-बिछाती और चौबीस घंटों की रामधुनी बनकर सुमिरती रहती। कभी कंठी बनाकर पहन लेती तो कभी किताबें पढ़ते हुए राजन को महसूस करती। रात-दिन का साथ और इतनी लंबी यात्रा, पलभर के लिए भी वह नहीं बिसरा सकती अपने मनमीत को। कहता राजन था, लेकिन महसूस करती मिनी। इस कदर वे एक-दूसरे से कम बोले या बिना बोले ही समझ लेते थे। हम एक ही समय में दो तरह का अलग-अलग जीवन जी रहे होते और हमें इसका अहसास तक नहीं होता। परत-दर-परत कई रिश्तों की महीन परतें हमारे लहू का शोर बनती जातीं। वह सोचते हुए बोलने लगा—

'मिनी, मैं जब भी अँधेरों में घिरता, ऐसे में हमेशा तुम्हारी नाजुक हथेली की याद आ जाती। किस कदर मैंने सालो-साल अपने कॅरियर को बनाने में खपा दिए मगर हासिल क्या रहा? सिर छिपाने को घर, घूमने फिरने को गाड़ी और दुनियादारी की वही रस्में निभाते-निभाते उम्र का पहिया खरामा-खरामा खिसकता रहा। सब कुछ मेरी जद से बाहर फिंकता जा रहा था, पत्नी, बेटा, सबकी अपनी पसंद-नापसंद, उनकी अपनी जिंदगी को नापने के वही परंपरागत पैमाने या उनकी नित नई उगती महत्त्वाकांक्षाएँ। किसी का कुछ भी नहीं छूटता, बस हमारे भीतर का सब कुछ रीतता-छूटता जाता है। हम ही हाँफने लगते चलते-चलते और कोई हमें समझने की जेहमत नहीं उठाता, न ही कोई कँपकँपाते लम्हों में हमारा हाथ थामने आगे आता। पहले मैं कुछ और सोचता था, करियर की विशाल दुनिया मुझे सम्मोहित करती। बड़ा बनने का जुनून मेरे सिर पर सवार रहता। तुम्हें छोड़ना बहुत आसान तो नहीं था पर मेरी विवशता थी। पहले ये सब हासिल कर लूँ, तब तुमसे मुखातिब होऊँगा मगर यही चूक थी मेरी। हम सब कुछ दुबारा हासिल कर सकते हैं, मगर किशोरवय में पनपे उस अहसास को दुबारा फिर कभी महसूस नहीं कर पाते, उसके लिए तो फिर से नया जन्म लेना पड़ेगा।' लंबे अहसास साझा करके एक लंबी साँस खींची राजन ने।

'हाँ, राजन, सारे लड़के एक ही तरह से सोचते कि सबसे ज्यादा जरूरी है कॅरियर।' 'फिलहाल आज के बड़े सपने के आगे फीका है वह अनमोल अहसास, सोचकर तुमने उस दौर की कीमत को कमतर आँका। हमारे साथ भी यही हुआ। तुम्हारी प्राथमिकता में लड़की सबसे अंतिम पंक्ति में, जबकि वह करियर पूरी वह जीवन का पूरा सच नहीं हो सकता। तब

भी और आज भी।' अनुभव में मँजे दार्शनिक की तरह वह बोलती रही।

'सही कहा, दूर से दिखती चीजें कितनी सम्मोहक, कितनी आकर्षक लगती थीं जैसे किसी तिलिस्मी गुफा में घुसते जा रहे हैं, पर उससे बाहर निकलने की तरकीबें नहीं पता थीं। उस सीधे दरवाजे से हम एक बड़ी दुनिया में चहलकदमी करना सीख लेते मगर बाद में पता चलता है कि वह तो केवल हमारा भ्रम था। सालों बाद आज लगता ही नहीं कि हमने उस शानदार समय को जीया था। शायद वे दोनों हम नहीं, कोई और रहे होंगे। वैसे भी मैंने कभी अपने प्यार को जतलाया भी तो नहीं तुमसे। चाहकर भी नहीं खोल पाए दिल के राज, संकोचवश।'

'जबकि मैं अकसर सोचती थी कि जाने के पहले तुम जरूर कहोगे मगर···

'मिनी, मुझे हमेशा लगता रहा कि इस रिश्ते को आगे खींचने के लिए या जाति की बेड़ियाँ काटने के लिए मुझे ऊँचा बनना होगा, यानी बड़ा कॅरियर तो हो कम-से-कम। तुम्हारे घरवाले मुझ पर कितना भरोसा करते थे। ऐसे में ऐसी बात अचानक से कहने की हिम्मत नहीं जुटा पाया। अम्माँ से कुछ कहने की सोचता तो डर जाता कि वे क्या सोचेंगी कि इसीलिए ये लड़का मिन्नी के आगे-पीछे घूमता था। आनेवाले कल के बारे में सोचकर घबराहट बढ़ने लगती। तब सच में कितना तूफान मच जाता?'

'मगर तुम तो कन्नी काटकर पहले ही चल दिए, बिना मुझसे मशविरा किए?'

'नहीं मिनी, ऐसी बात नही। तुम्हें हर रोज याद करता। शाम होते ही छत पर बैठकर रेडियो पर गाने सुनना, ताश खेलने में तुम्हें जिताना और फिर बारी-बारी से छत को धोते हुए बिस्तर बिछाने में मदद करना। मिन्नी, तुम अक्सर सपने में आकर मुझे परेशान करती पर यह सोचकर खुद को समझा लेता कि पहले शिखर पर पहुँचूँ तो सही, बाद में तुम्हें बुलवा लूँगा, मना लूँगा सबको, मगर वक्त इतनी मोहलत कहाँ देता है? समय तेजी से निकलता गया, जिसने दी दो अलग-अलग जिंदगियाँ, 'तुमने कहा था इंतजार के लिए? एक बार कहा तो होता, फिर देखते, मैं तुम्हारे कॅरियर के लिए बाधक तो कतई नहीं ही बनती। यकीन तो किया होता मेरा। राजन, कितने दिनों तुम्हारी चिट्ठी का इंतजार किया। मैंने भी लिखा था पत्र मगर तुमने तो बस एक लाइन में जवाब दे दिया, ठीक हूँ, मिन्नी, अपनी पढ़ाई का खयाल रखना। सबको सादर प्रणाम। ऐसी चिट्ठी का बाट जोहती थी मैं?' मिनी की आवाज में अनायास तल्खी उमड़ आई।

'दिल पर पत्थर रखकर जवाब दिया था। डरता था, किसी के हाथों चिट्ठी पड़ गई तो तुम पर कितनी मुसीबत आ जाओगी। बहुत सारा अनचाहा घट गया तो? इसका डर सताता था। कह सकती हो, कायर हूँ। तब भी और आज भी कहाँ कुछ कह पा रहा हूँ। मिन्नी, जिंदगी तो तेज रफ्तार ट्रेन की तरह निकल गई, देखते-देखते सर्र से आँखों से ओझल भी हो गई जिसे हमें उसी समय थाम लेना था। हम उसे जाते ताकते रह गए और कारवाँ निकल गया। अब न तो वे धड़कनें बचीं, न वैसा जोशीला अहसास जिंदा बच पाया, न आवेगों की उठापटक।' उस आवाज में गहरा अफसोस झलकने लगा।

'मिनी, हम वक्त को फिजिक्स की तरह या गणित की तरह तौलते रहते, जबकि जिंदगी में सबसे बड़ी जरूरत कैमिस्ट्री की है। वक्त हमसे कुछ और चाहता है, हम वक्त को समय पर जवाब न दें तो आगे चलकर हमें या हमारे वजूद को कुतरने लगता है। पूरी जिंदगी यों ही बिताते जाते कि अब आगे इससे बेहतर पल आएँगे ये अहसास मगर मुट्ठी में आई राई की तरह सर्र से बाहर फिक जाते हैं। अहसासों की कीमत समझने की फुर्सत किसी के पास है? मन में तब भी यही खयाल आता कि चलो, कोई बात नहीं। फिर कभी जी लेंगे इस दुनिया को मगर हमारे चलाने से जिंदगी का गणित कहाँ चलता है?'

'वंस यू मिस्ड द ट्रेन, यू मिस्ड द लाइफ। राजन, तुम्हारे दब्बूपन को जानती थी मगर मैंने इशारों में तुम्हें जताया तो था, यहाँ अकेले कैसे रहूँगी तुम्हारे बगैर' तब तुमने जाते-जाते इतना ही कहा था, पढ़ना तो तुम्हारा कहा मानकर खूब पढ़-लिखकर कॉलेज की नौकरी कर ली और जिंदगी के दर्द भरे गीत लिखने लगी। जिंदगी भर नौकरी की, घर-गृहस्थ में वह सब कुछ किया मगर हर जगह तुम्हारी कसक, तुम्हारी तलब, तुम्हारे न होने का अहसास कचोटता रहा। तलाशती रही आँखें तुम्हें हर तरफ, मगर तुम्हें तो कहीं होना ही नहीं था···

'ऐ मिनी, रो मत! अब कुछ नहीं हो सकता। हम शिक्षा, नौकरी या दुनियादारी के दुष्चक्र में फँसे सब कुछ पाकर भी कुछ न पाने के अहसास को सालों-साल जीते रहे। कुछ भी अच्छा नहीं लगता अब। न मन को, न इस तन को। आज भी तुमसे बातें कर लूँ तो दिन बन जाता है वरना वही अकेलापन, वही सूखापन, वही खाली खोखले दिन-रात···

'सही कह रहे। हमेशा यही लगता जैसे इतना सब पाकर भी सब कुछ आधा-अधूरा सा। कुछ बेशकीमती खोने का अहसास सालता रहता। तुम्हारी तलब से बेचैन मन उचाट हो जाता तो कभी-कभार मनोरोगी जैसी हालत हो जाती।' कहते हुए अजीब सा दर्द उभर अया।

'मिनी, हम वक्त को फिजिक्स की तरह या गणित की तरह तौलते रहते, जबकि जिंदगी में सबसे बड़ी जरूरत कैमिस्ट्री की है। वक्त हमसे कुछ और चाहता है, हम वक्त को समय पर जवाब न दें तो आगे चलकर हमें या हमारे वजूद को कुतरने लगता है। पूरी जिंदगी यों ही बिताते जाते कि अब आगे इससे बेहतर पल आएँगे ये अहसास मगर मुट्ठी में आई राई की तरह सर्र से बाहर फिक जाते हैं। अहसासों की कीमत समझने की फुर्सत किसी के पास है? मन में तब भी यही खयाल आता कि चलो, कोई बात नहीं। फिर कभी जी लेंगे इस दुनिया को मगर हमारे चलाने से जिंदगी

का गणित कहाँ चलता है ?'

'ऐसा फिर कर लेंगे, फिर कभी देखा जाएगा'''के घनचक्कर में काफी कुछ छूटता गया। फिर कभी कुछ दुबारा वैसे नहीं घट पाता, जैसा हमने सोचा होता। जो जब जैसा छूट गया सो छूट गया हमेशा के लिए या अनायास हमने उसे छूट जाने दिया। समंदर की वह लहर तो दुबारा आने से रही, नहीं क्या ?' एक लंबी सांस लेकर राजन चुप हो गया।

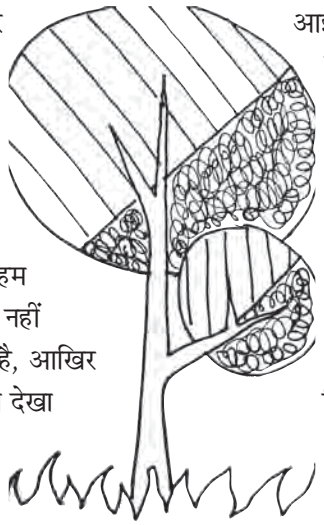

मिनी के कंधे पर राजन का हाथ था, 'कहीं-न-कहीं आज भी यही गिल्ट सताता है, तुम्हारा गुनहगार हूँ। हो सके तो माफ कर देना।'

'अरे, इसमें माफी जैसी क्या बात है ? तुम्हें दोश देने से क्या हमारा गुजरा वक्त लौट सकता है कभी ? हम एक-दूसरे को दोषी ठहराकर फिर उसी सरगम को तो नहीं छेड़ पाएँगे। हमारा सवाल तो अभी भी औंधे मुँह लटका है, आखिर क्यों किया तुमने ऐसा ? एक बार मुझ पर भरोसा करके तो देखा होता कि मेरा इंतजार करना। मैं तो खुद तुम्हारे कॅरियर की खातिर खुद को लुटा देती मगर अफसोस कि तुम्हारे अंदर वही पूर्वाग्रह होगा कि ये लड़की, बेचारी मेरे पीछे-पीछे कहाँ तक कैसे चल पाएगी ? भरोसा ही नहीं रहा होगा।'

'न, मिनी, बात तुम्हारे भरोसे की तो कतई नहीं। माँ के साथ बाकी लोगों की नजरों में तुम्हें गिरते हुए नहीं देखना चाहता था। यह सब मैं कैसे बर्दाश्त करता कि कोई तुम पर इल्जाम लगाए कि मैंने तुम्हें बरगलाया, जबकि आज की जेनरेशन अपने लिए कोई कसक, कोई तलब या कोई खलिश नहीं छोड़ना चाहती। वे तो अपने हिस्से का हर सुख-दु:ख जीने में यकीन करते। हम इस उतरती हुई उम्र में भी इतना बोझ लेकर चलने की आदत के मारे'''

'आज भी हम परंपरागत पैटर्न पर ही सोचे जा रहे हैं', मिनी ने बीच में बात काटते हुए अपनी बात जोड़ने लगी, 'वही माइंडसेट, वही परिवार-समाज के दायरे, वही परंपरागत बेड़ियाँ, जिसने निश्छल प्रेम करना तो कतई नहीं सिखाया गया बल्कि सुरक्षा के नाम पर औरत को सामानों की तरह घर में लाकर बंद कर दिया। तभी से बेकद्री भी शुरू हो गई। जैसे ही उस सुनहरे अहसास को कठघरे में कैद कर दोगे, तभी से प्रेम उड़नछू हो जाएगा।' भावावेश में वह बोलती जा रही थी।

'सही कहा मिनी। ये चूक तो हमसे हुई है। उड़ान भरने की तैयारियों में ही सारी जिंदगी निकाल दी और जब उड़ान भरने का मौका मिला तो जिंदगी किसी टूटे-फूटे जहाज के मलबे की शक्ल में नजर आई, जिससे अब टेक ऑफ करना मुमकिन ही नहीं। मिनी, अब इसकी भरपाई असंभव है। समय को लौटाकर तो नहीं लाया जा सकता। जब से तुम छूट गई हो, कुछ भी अच्छा नहीं लगता। अफसोस कि हम इस ये बेशकीमती अहसास की कद्र नहीं कर पाते, कभी जान-बूझकर तो कभी अनजाने में, मगर जिंदगी इसी घनचक्कर में रीत गई। परंपरागत अपेक्षाओं को लादे-लादे छिल गए कंधे हमारे। एक दिन यों ही उठकर हाथ झाड़कर इस दुनिया से चले जाएँगे।' आसमान से उतरती धूप की तरफ देखते हुए देर तक बोलता रहा वह।

'हाँ राजन, हम जो करना चाहते, वही इस या उस वजह से नहीं कर पाते, बाकी दुनियादारी निभाते रहते इससे क्या हासिल रहा ? हम आइने के सामने खड़े होकर एनालाइज करें कि हमें जिंदगी से क्या चाहिए था और अब क्या करके सच्ची खुशी मिलेगी ? हम हकीकत को बखूबी जानते हुए भी अगर मगर करते रहे। वीरभोग्या वसुंधरा शब्द यों ही नहीं बनाया गया ? नाव नो मोर रिप्ले इज पॉसीबल।' एक-एक शब्द को चुनते हुए बोलती जा रही थी वह।

'हाँ, कुछ भी दुबारा नहीं मिलता, किसी भी कीमत पर। तो क्या यह मान लिया जाए कि सुविधा, सुकून या समय के घेरे में कैद हमारा जीवन, सीढ़ी-दर-सीढ़ी शिखर पर न चढ़ पाने की दास्ताँ भर है। कोई भी रिप्ले या वापसी अब उतनी खुशी नहीं दे सकती।' राजन ने हकीकत की तसवीरें दिखा दीं।

'अजीब सी पहेली है यह जिंदगी कि जब समय, सुकून यानी सब कुछ है तो वैसा जोशीला अहसास ही हवा-हवाई हो गया। वापस नहीं लाई जा सकतीं वे भावनाएँ, उफनता आवेग और धड़धड़ाते दिलों की आकुल पुकारें। वैसी तलब, वे अंधड़ भरे जज्बात फिर नहीं आ पाते। कभी किसी समय में बजाए वाद्ययंत्र धूल खाए कोने में पड़े हुए थे जिनसे अब फिर से सुर निकाल पाना मुमकिन ही नहीं था।'

शब्द मौन होते गए। दोनों अस्ताचल की तरफ जाते सूरज से पीले पड़ते आसमान की तरफ देखते रहे। अब वे क्षितिज की तरफ देखने लगे जहाँ सिर्फ धुंध-ही-धुंध थी। इस खूबसूरत अहसास का कोई नाम नही, कोई आसमां नही, कोई क्षितिज नही, कोई किनारा भी नहीं। प्रेम की तेज फेनिल लहरें लौटकर फिर नहीं आतीं। कितना विचित्र, रहस्यमय और सुनहरा संसार होता है प्रेम का, अबूझ, अगम्य और अथाह जैसे विशाल समंदर हो। न रंग रूप पर आधारित, न सांसारिकता पर, न वैभव आदि पर आश्रित बल्कि अहसासों से बुनी यह जादुई पुड़िया वर्णनातीत है। अनायास मिनी ने दोनों हथेलियों के बीच गरम शॉल लपेट ली। नि:शब्द युगल सालों पुराने अहसास को रिप्ले बटन की तरह चलाना चाहते थे। उन्होंने एक-दूसरे की हथेलियों में गरमाहट तलाशने की कोशिश भी की, मगर वहाँ सबकुछ नदारद। मस्त हवाएँ सड़क पर बिखरे सूखे पत्तों को अनजान दिशा की तरफ उड़ाए ले जा रही थीं।

५/२५९ विपुल खंड गोमतीनगर
लखनऊ-२२६०१०
दूरभाष : ०९४५२२९५९४३
gupt.rajni@gmail.com

कोरोना! ऐसा मत करो ना

• श्रीराम परिहार

सबकुछ जैसे थम सा गया है। सब तालाबंदी में हैं। लोगों से संगरोध या शारीरिक दूरी बनाए रखने का अनुरोध किया जा रहा है। सब अपने घर में रहें। सब सुरक्षित रहें। सब स्वच्छ रहें। सब स्वस्थ रहें। स्वयं सुरक्षित रहते हुए दूसरों को भी सुरक्षित रखें। अनावश्यक न घूमें। अकारण घर से बाहर न निकलें। बार-बार हाथ धोएँ। बड़े-बूढ़ों का ध्यान रखें। प्रसन्न रहें। घर के पुराने रुके हुए काम निपटाएँ। कोई अच्छी सी किताब पढ़ें। योग करें। ध्यान करें। भजन करें। जाप करें। ईश्वर को भजें। बच्चों को वीरता की कहानियाँ सुनाएँ। बच्चों के सामने ध्रुव-प्रह्लाद, लव-कुश, शंकराचार्य-विवेकानंद के बचपन के पाठ पढ़ाएँ। अपने कुल की परंपराओं का परिवार के साथ बैठकर अनुस्मरण करें। तुलसी बिरवे को और हरा तथा झाम-झूम करने की जुगत करें। तुलसी के पास रोज संझा वेला में दीप जलाएँ। समस्त प्राणियों की रक्षा और सुख की कामना करें। अपनी माँ के मुख पर उभर आई झुर्रियों को संवेदना की आँख से देखें। पिता की हथेलियों की कर्म-रेखाओं की गीता बाँचें। पत्नी की आँखों में उभरे सपनों के रंगों को पहचानें। बच्चों के खेल और उछल-कूद में संतति के उल्लास के अमर गान सुनें। अपने घर में रहते हुए घर में रहने का महत्त्व समझें। घर जीवन का आधार है। संस्कारों की पाठशाला है। इस समय सबसे सुरक्षित आदमी के लिए घर ही है। घर मनुष्य की वासंती रचना है।

कहते हैं कि चीन देश से कोरोना नामक एक झिलमिल विषाणु पैदा हुआ है। वह अदृश्य विषाणु है। वह शरीर के अंदर की गति को रोक देता है। फेफड़ों में घुसकर मानव के श्वसन-तंत्र को ही बंद कर देता है। वह अणु रूप में है। वह अत्यंत ही सूक्ष्म है। महामानव उसके सामने कुछ नहीं है। सूरा सामने हो तो उससे रण में जूझा जा सकता है। रोगाणु शरीर में दिखे तो उसे दवाई से मारा जा सकता है, पर इस झिलमिल विषाणु की तो कोई दवा ही नहीं है, कोई उपचार नहीं है, उसे वश में करने का कोई उपाय नहीं है। चिकित्सा-विज्ञान रात-दिन दवाई की खोज में लगे हैं। विकास की हेंकड़ी उसके सामने बर्फ जैसी पिघलकर रह गई है। विकसित देशों के मस्तक झुक गए हैं। अमेरिका ने घुटने टेक दिए हैं। इटली का गुमान धरा रह गया है। जर्मनी का अभिमान भंग हो गया है। स्पेन का गरूर ढह गया है। इंग्लैंड का घमंड चूर-चूर हो गया है। ब्राजील मुर्दाघर बन गया है। ईरान तेल चाटने लगा है। पाकिस्तान में हड़कंप मचा हुआ है। लगभग दो सौ देशों में कोरोना विषाणु के रूप में मौत बाँटकर चीन देश खुश है। यह जीवभक्षी देश अपनी महाशक्ति की राक्षसी वृत्ति पर इतरा रहा है। दक्षिण कोरिया के पाँव थोड़े सँभले हुए हैं। ऑस्ट्रेलिया को कुछ सूझ नहीं रहा है। जापान विवश है। विषाणु द्वारा पूरे संसार में मौत का तांडव हो रहा है। भारत के चिकित्सक हजारों लोगों का उपचार कर उन्हें स्वस्थ करने की पुरजोर कोशिश में हैं। भारत दवा और दुआ दोनों से काम ले रहा है। भारत दीप जलाकर उसे द्वार से बाहर ही रोक देने की फिराक में है। वह मानव-मानव के भीतर शक्ति प्रकाश को जगाने का लघु, किंतु सार्थक प्रयास कर रहा है। शरीर सबल हो और आत्मबल प्रबल हो, इसलिए वह शंखध्वनि और शंखनाद कर रहा है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अधिकारियों और अपने देश भारतवर्ष के औषधि-विशेषज्ञों से विचार और संवाद करके हमारे राष्ट्र-प्रमुख माननीय प्रधानमंत्री ने पूरे देश में तीन चरणों में तालाबंदी, नगरबंदी, गाँवबंदी, पूर्णबंदी का निवेदन और क्रियान्वयन कर बहुत हद तक महामारी के बीज-विषाणु से युद्ध कर उससे मानवता को बचाने का राजधर्म-सम्मत प्रयास किया है। जान है तो जहान है! यह बात भारतवर्ष के बहुसंख्यक समझदार लोगों को ठीक-ठीक समझ में आ गई है। सबने अभूतपूर्व सहयोग देकर भारत राष्ट्र की एकता का परिचय दिया है। अपने आत्मबल से साक्षात्कार किया है। घर में रहकर विषाणु को धमकाया है। लक्ष्मण रेखा खींचकर उसे फाटक के भीतर फटकने नहीं दिया है। शहरों से लेकर गाँवों तक, खेतों से लेकर वनों तक, सब इस महामारी की भयानकता को भाँप चुके हैं। पूरा देश इस मायावी विषाणु से लड़ाई की मुद्रा में खड़ा हो गया है।

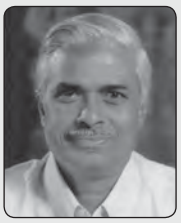

जाने-माने साहित्यकार। आठ ललित-निबंध संग्रह, एक नवगीत, एक संत-साहित्य की पुस्तक प्रकाशित; पत्रिका 'अक्षत' का संपादन। 'बागीश्वरी पुरस्कार', 'सृजन सम्मान', 'श्रेष्ठ कला आचार्य सम्मान', 'निर्मल पुरस्कार', 'राष्ट्रधर्म गौरव सम्मान', 'ईसुरी पुरस्कार', 'दुष्यंत कुमार राष्ट्रीय अलंकरण' सहित अनेक सम्मान प्राप्त।

विदेशियों की घुसपैठ, कुछ की नासमझी, कुछ कट्टरपंथियों की मृत्युकांक्षी गतिविधियों और कुछ आत्मघाती तथा परघाती सिरफिरों के कदाचरण से मानवता के उज्ज्वल माथे पर कलंक लगा है। इनके कारण और इनसे संक्रमित निर्दोष-निरपराध-भोले लोगों की प्राण-रक्षा में चिकित्सक, चिकित्सा सेविकाएँ, आशा कार्यकर्ता बहनें, पुलिसवाले बंधु-भगिनी, अधिकारी, सफाई कर्मचारी, जन प्रतिनिधि, समाज-सेवी, दूध, सब्जी, फल, भोजन सामग्री प्रदाताओं की अनमोल, प्रशंसनीय सेवाओं की वंदना में हमारे शब्दों के अर्थ ओछे पड़ रहे हैं। पर कुछ लोग हमारे प्राणरक्षकों और राष्ट्रसेवकों पर पत्थर बरसा रहे हैं। उन पर लाठियों से वार कर रहे हैं। उन पर थूक रहे हैं। उनके कपड़े फाड़ रहे हैं। बहनों से अभद्रता कर रहे हैं। यह जघन्य अपराध है। यह मानवता का अपमान है। यह कोरोना से भी तगड़ा विषाणु है, जो इस तरह से कृत्य करनेवालों को आज नहीं तो कल वैमनस्य के जहर से नष्ट कर देगा। भारतीय संस्कृति का अमर वाक्य है—'दूसरे की हत्या करने के लिए, जिसके हाथ में तलवार होती है, एक दिन उसकी मृत्यु भी तलवार से ही होती है।' विष मृत्यु चाहता है। सुधा अमरता चाहती है। नीचता यदि अपने किए पर पश्चात्ताप नहीं करती है, तो वह नीच को अंतत: समाप्त कर देती है।

भलो भलाई पै लहहिं, लहहिं नीचहहिं नीच।
सुधा सराहिय अमरता, गरल सराहिय मीच॥

वर्तमान भविष्य का माली होता है। वर्तमान के हाथों भविष्य सुरक्षित रहता है। भारत अपने अंदर-बाहर अनेक संकटों का सामना करते हुए वर्तमान में हर मोरचे पर डटा हुआ है। उसने अपनी नीति नहीं छोड़ी है। अपनी मर्यादा का मान रख रहा है। अपने भीतर राष्ट्र-विरोधी और मानवता का अपमान करनेवाली ताकतों से भी वह नीति अनुसार धैर्यपूर्वक संवाद कर रहा है। सीमाओं पर शत्रु राष्ट्र बार-बार अशांति फैलाता है। मरियल कुत्ते की तरह बार-बार खींसें निपोरता हुआ लँगड़ाते-लँगड़ाते आतंकी हलचल पैदा करता है। भारत उससे भी अपना सुरक्षात्मक रवैया अपनाता हुआ आत्मरक्षा में सजग है। अपनी ओर से भारत कभी भी अनावश्यक आक्रामक नहीं होता है। उसकी अपनी विदेश नीति बहुत साफ-सुथरी और सर्वहितकारी है। वह राजधर्म, राष्ट्रधर्म और राजनीति अच्छी तरह जानता है। उसका शौर्य अपनी रक्षा के साथ-साथ सबकी रक्षा में ही चमकता है। कोरोना के संक्रमण के महादुष्काल में भारत अपने-पराए सबका उपचार करते हुए विश्व को भी दवाएँ और दुआएँ भेज रहा है। ऐसे समय में भी भारत द्वारा किए जा रहे अथक-अनथक-अचूक प्रयास भी भारत का ही अन्न-जल, खाने-पीनेवालों को रास नहीं आ रहे हैं। भारत पूरी मानवता के लिए वर्तमान परिस्थितियों में अच्छा कर रहा है, इससे भी कुछ के पेट में दर्द होता है। उनकी शल्य क्रिया जरूरी है।

आज २२ अप्रैल है। आज 'पृथ्वी दिवस' है। हम पृथ्वी के बेटे-बेटियाँ हैं। पृथ्वी पर पैदा होनेवाले सारे मनुष्य और जीव-जंतु पृथ्वी की संतानें हैं। वनस्पति उसके वस्त्र हैं। नदियाँ उसकी धमनियाँ और शिराएँ हैं। पर्वत उसके आभूषण हैं। समुद्र उसका विशाल हृदय है। मेघ छतरियाँ हैं। पृथ्वी को राजा प्रथु ने अपने कर्म के नवगीतों से उपजाऊ बनाया। पोषक बनाया। भरणी बनाया। हम सबको वह धारण करती है। वह धरणी है। धरित्री है। धरती है। अब बताइए उसके कुछ बेटियाँ-बेटे भक्ष-अभक्ष सब खा रहे हैं। उसने अपनी एक संतुलन व्यवस्था बना रखी है। मनुष्य सहित सारे-जीव-जंतुओं के भरण-पोषण की क्षमता उसने धारण कर रखी है। मनुष्य अपने बौद्धिक गुमान और धनलिप्सा तथा शक्तितृष्णा के औजारों से उसे ही नोंच रहा है। घायल कर रहा है। अपनी माँ का निर्मम दोहन कर रहा है। अपरिमित शोषण कर रहा है। माँ अपने दु:खों की गठरी कभी खोलती नहीं है। माता कभी कुमाता नहीं होती है, पर कपूतों को ठीक करने के लिए वह कुपित जरूर होती है। अनियंत्रित और रक्तलोलुप सत्यानाशियों के लिए वह कालिका का रूप भी धारण करती है। उसका एक रूप रणचंडी भी है। कोरोना जैसे झिलमिल खतरनाक विषाणु को अपनी बुद्धि की मृत्यु-प्रयोगशाला में पैदा करनेवालों के लिए वह परमाप्रकृति से महाप्रकृति बन जाती है। तब लाल सलाम, सफेद सलाम, हरा सलाम सब हेंकड़ी भूल जाते हैं। नमस्ते की मुद्रा पूज्य और महिमामयी धरती माँ के सामने नतमस्तक हो जाती है।

चैत-बैसाख संवत् २०७७ मार्च-अप्रैल २०२० के साल में कोरोना वायरस से पूरी दुनिया में हाहाकार मचा हुआ है। संक्रमित लोगों की संख्या २६ लाख पहुँच गई है। यह दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है। लगभग दो लाख लोग पूरे विश्व में मृत्यु के मुख में समा गए हैं। सात लाख के लगभग लोग मौत के चंगुल से छूटकर स्वस्थ भी हुए हैं। भारत में संक्रमितों की संख्या २० हजार पार कर रही है। लगभग ७ सौ काल कवलित हुए हैं। चार हजार स्वस्थ भी हुए हैं। यह आँकड़े स्थिर नहीं हैं, बढ़ रहे हैं। भगवान् ही रखवाला है। कोरोना विषाणु की कोई दवा नहीं है। मनुष्य के शरीर में रोग-प्रतिरोधक क्षमता का होना या बढ़ना ही इसका एकमात्र निदान है, इसलिए सबकुछ तालाबंद है। जो जहाँ है, वह वहीं रह गया है। ज्ञात मानव सभ्यता के विकास के हजारो-हजार वर्षों के पुराण-इतिहास में ऐसा न देखा गया है, न सुना गया है। दो पहिया वाहन बंद हैं। मोटर, कार, ट्रक, चारचके, छहचके, आठचके, बारहचके, सोलहचके वाले वाहनों के चके थमे हुए हैं। रेलें बंद हैं। पटरियाँ सुस्ता रही हैं। रेलें आराम कर रही हैं। हवाई जहाज हवाई अड्डों पर थमे, जमे, रुके, टुकुर-टुकुर ताक रहे हैं। शहरों में सन्नाटा है। सड़कें सूनी हैं। उद्यानों में कोई पदचाप नहीं है। वन निर्जन हैं। नदियों के घाटों पर पानी है। पर स्नानपर्व नहीं है। सत्तू अमावस के दिन ओंकारेश्वर के तीर्थकोटि घाट, नागर घाट, गौमुख घाट उदास तपती धूप में शांत हैं। वे पंचाग्नि में तप रहे हैं। साधु, संत, योगी, तपी, वैरागी, जोगी के आश्रम में अखंड शांति पसरी है। धूनी की आग निर्धूम जल रही है। केवल अलख निरंजन गूँज रहा है।

दादा-दादी से बचपन में ऐसी ही महामारियों के बारे में सुना है। गाँव के गाँव साफ हो गए थे। यह कोई सन् १९१८-२० की बात है। सौ साल बाद फिर महाविनाश हँस रहा है। काल का अकुंठ नृत्य हो रहा है। अति लघु विषाणु ने सबको अपनी नानी याद करा दी है। सबकी सिट्टी-पिट्टी गुम है। सबका गर्व भूलुंठित है। सबका मद चूर है। सबकी आँखें भयातुर हैं। सबके सपने सो गए हैं। अपनी भीड़ और अपनी भागमभाग से पूरी दुनिया

को कच्च-मच्च करके बरबादी के सूखे कुएँ तक पहुँचाने वाले महामानव को कुछ भी नहीं सूझ रहा है। प्रकृति पर अत्याचार करनेवाला बलशाली अपने दोनों घुटनों के बीच मुंडी नीची कर सुबक रहा है। क्या प्रकृति बदला ले रही है ? नहीं! प्रकृति संतुलन बना रही हैं, सफाई कर रही है। कामायनी की पंक्तियाँ याद आती हैं—'प्रकृति रही दुर्जेय और हम सब थे निरुपाय।'

इस लॉकडाउन या तालाबंदी के लगभग ४० दिनों से आदमी अपने-अपने घर में बंद है। जो लोग गाँव छोड़कर शहरों में काम करने और नगरों में रहने के सपने सँजोकर गाँवों को उजाड़कर चले गए हैं; उन्हें अब अपने-अपने गाँव-घर याद आ रहे हैं। गाँव की गलियाँ याद आ रही हैं। गाँव के काका-काकी, भैया-भाभी, माँ-बाप, दाजी-माय, बहन-भानजी, घर-आँगन, गाय-ढोर याद आ रहे हैं। अपने गाँव की नदी याद आ रही है। अमराई याद आ रही है। मंदिर याद आ रहा है। खेड़ापति के ओटले के पीपल पर फहराती धजा याद आ रही है। खेत-बाड़ी याद आ रहे हैं। हँसी-ठिठोली याद आ रही है। गाँव बाहर नीम-बड़ के नीचे बैठे देवधामी याद आ रहे हैं। भजन-कीर्तन याद आ रहे हैं। रात के सन्नाटे में झाँस और मृदंग की आवाज याद आ रही है। जिन घर-आँगन को उदास और धुणीधार रोता छोड़ आए हैं, जिस घर के किवाड़ों को बिलखता अकेला छोड़कर उन पर तालाबंद कर आए हैं, तालाबंदी के इस दुशासनी समय में उन्हीं किवाड़ों के तालों के लिए हजारों पाँव-हाथ आतुर हो उठे हैं। हजारों पाँव सैकड़ों किलोमीटर की पदयात्रा करते हुए घर-गाँव की ओर चल पड़े हैं। कुछ भी कहो—गाँव माता के गरभ सरीखा होता है। वह पाल लेता है। वह भूखे नहीं मरने देता है। गाँव के पास बदलाव की बहार पहुँच गई है। फिर भी, फिर भी अभी गाँवों में बहुत कुछ भारत बचा हुआ है। सौभाग्य से अभी तक यह सत्यानाशी विषाणु गाँवों से दूर है। गाँव कर्मपूजक हैं। श्रमशील हैं। शरीरक्षम हैं। भौतिकतावादी शरीर से निबल है, पर आत्मा से सबल है। तालाबंदी और संगरोध या शारीरिक दूरी तो गाँव-जंगल में स्वाभाविक रूप से है। यह समय है गाँवों को आत्मनिर्भर बनाने का। लोग गाँवों में रहकर जीवन की सीमित आवश्यकताओं की वस्तुओं का अपने घर-गाँव में ही निर्माण करें। गाँवों में जीवन सुरक्षित रहेगा। वनों में जीवन बचा रहेगा। देखो! नदी के जल की सतह से सोनमछरिया ने उछाल भरी है।

भारतवर्ष के पुराण-इतिहास में नागर सभ्यता के प्रमाण भी मिलते हैं। हमारे यहाँ मालव, तक्षशिला, मगध, कपिलवस्तु, हस्तिनापुर, इंद्रप्रस्थ, अयोध्या, उज्जैनी, काशी, अमरावती जैसे नगर रहे हैं। इनके आसपास सैकड़ों-हजारों गाँव भी रहे हैं। ब्रजमंडल तो जगजाहिर है। भगवान् श्रीराम की वन-गमन यात्रा तो गाँवों से मिल-भेंट करते हुए ही संपन्न हुई है। जिस स्वच्छता, पवित्रता और शारीरिक दूरी की बात हम आज जरूरी मान रहे हैं, वह तो भारतवर्ष की संस्कृति और हिंदू-जीवनविधि में बरसोबरस से रही आ रही है। भारतीय संस्कृति में एक-दूसरे को चूमने-चाटने का संस्कार कभी नहीं रहा है। यहाँ तक कि शारीरिक संबंध का भी नियम और मर्यादा रही है। हाथ मिलाकर स्वागत करने की आदत हमारी नहीं है। हमारे पूर्वजों ने तो हाथ जोड़कर प्रणाम-नमस्ते कर अभिवादन करना सिखाया है। झुककर चरण-स्पर्श कर आशीर्वाद लेने के सुमन खिलाए हैं। संयुक्त परिवार तो स्वयं के आचरण, मर्यादा, अनुशासन और स्वच्छता-पावनता की पाठशाला रहा है।

भारतीय संस्कृति में एक-दूसरे को चूमने-चाटने का संस्कार कभी नहीं रहा है। यहाँ तक कि शारीरिक संबंध का भी नियम और मर्यादा रही है। हाथ मिलाकर स्वागत करने की आदत हमारी नहीं है। हमारे पूर्वजों ने तो हाथ जोड़कर प्रणाम-नमस्ते कर अभिवादन करना सिखाया है। झुककर चरण-स्पर्श कर आशीर्वाद लेने के सुमन खिलाए हैं। संयुक्त परिवार तो स्वयं के आचरण, मर्यादा, अनुशासन और स्वच्छता-पावनता की पाठशाला रहा है।

मुझे अच्छी तरह याद है, माँ सूर्योदय के बहुत पहले उठकर घर-आँगन का झाड़ू बुहारा करती थीं। फिर वह दही बिलोती थीं। फिर वह गीत गाते हुए आज के भोजन का अनाज दलती थीं। घट्टी की घरर-घरर के साथ उसके गीत की लय भी प्रभाती में मंगल और शुभम् को आमंत्रित करती थी। फिर गोबर-पूजा करने के तुरंत बाद नहाती थीं। तब चौके में जाती थीं। चौके में चूल्हा मिट्टी का होता था। चूल्हे पर और चौके में वह तुक्कस में पानी में गोबर घोलकर चौका लगाती थीं। तब भमूघर में दबे अंगारे को जाग्रत् कर चूल्हा जलाती थीं। चूल्हे पर सबसे पहले अभी दूहकर लाया गया गाय-भैंस का दूध तपाया जाता था। तब दूध, दही, मही का घर के सदस्यों द्वारा पान होता था। उसके बाद चूल्हे पर भोजन बनता था। घर, आँगन, चौगान, सुबह-शाम बुहारा जाता था। सुबह के बरतन भोजन के तुरंत बाद और रात्रि के भोजन के बरतन तुरंत बाद राख से माँजे जाते थे। रात में चौके में जूठे बासण नहीं रखे जाते थे। उन्हें माँजकर ही और चौके को बुहारकर ही माँ रात का दूध तपाकर, फिर उसे ठंडा कर, उसे जमाकर वह नींद मैया की गोद में जाती थीं।

यह एक घर का नहीं, भारत के घर-घर का नियत कर्म था। विज्ञापन में विज्ञान तो आज कह रहा है कि जूठे बरतनों में कीटाणु एक मिनट में सैकड़ों गुणा बढ़ जाते हैं। घर में कोई अतिथि आता था तो सबसे पहले उसके पाँव और हाथ-मुँह धुलवाया जाया था। घर के लोग बाहर से काम पर से या गाँव में से आते थे, घर के भीतर अनिवार्य रूप से पाँव धोकर ही घुसने दिया जाता था। पिताजी जब भी बीड़ या हरसूद का बाजार जाते, वहाँ से आकर नहाते थे। बाजार में भी पानी कुएँ का ही पीते थे। जीवन भर उन्होंने होटल का मुँह नहीं देखा। माता-बहनों की चार दिन की अवधि में उनको भोजन नहीं बनाने दिया जाता था। भारी काम नहीं करवाया जाता था। उन्हें अधिक विश्राम करने दिया जाता था। उस अवधि में उनके भोजन के बासण अलग रहते थे। उनके सोने-बिछाने के कपड़े अलग रहते थे। चार दिन बाद उन्हें धो लिया जाता था। बच्चे के जन्म के समय से सवा महीने तक जज्जा-बच्चा दोनों को लाग-बिलाग से बचाए रखा जाता था। उनका अलग कमरा या अलग जगह होती थी। तीन दिन का सूतक, सात दिन की जलवाय और सवा महीने बाद सूरजपूजा, जलपूजा

माँ-बच्चे को पवित्र वातावरण और परिवेश में रखने के वैज्ञानिक स्वच्छता अनुष्ठान हैं। श्मशान से लौटने के बाद आज भी मेरी पत्नी किसी वस्तु को हाथ नहीं लगाने देती है। पहले पीछे जाओ। खुले में स्नान करो। फिर घर में आओ। मृत्यु के बाद घर में तीन दिन का सूतक और फिर घर के सारे उपयोग में रात-दिन आनेवाले कपड़ों को धोना, आज भी गाँव में तीन दिन बाद पूरे घर-आँगन को लीपना हमारे पुरखों द्वारा विरासत में दी हुई विज्ञान सम्मत स्वच्छ-स्वस्थ परंपराएँ हैं। स्वास्थ्य रक्षक, सर्वहितकारी, कर्मण्य आचरणशीलता को वर्तमान में अपनाने हेतु हमें गंभीरता से सोचना है। इस महामारी से उबरने के बाद पूरी दुनिया में सांस्कृतिक बदलाव आएगा। आना चाहिए। भारतीय सनातन धर्म की रीति-नीति पर पूरी दुनिया का ध्यान जाएगा। विश्व जीवन का नया सवेरा सनातन जीवन-पद्धति से ही होगा। हमारा 'नमस्ते' विश्व को प्राथमिक और प्रारंभिक संकेत तो दे ही रहा है।

पूरी महामारी के महाभारत में भारतवर्ष की भूमिका श्रीकृष्ण की है। उसे सत्य के लिए लड़ना है। मानव धर्म को बचाना है। हिंसा को हतोत्साहित करना है। दुष्प्रवृत्ति को कुचलना है। षड्यंत्र को उसी के द्वारा खोदे गए गड्ढे में दफन करना है। चीरहरण करनेवालों के हाथों को शिथिल करना है। मौत के हरकारों को अँधेरी कंदराओं से हाँकना है। गटर का पानी मिले विष से सींचे जानेवाले वृक्षों में कभी अमृत फल नहीं लगते हैं। अधर्म पर चलनेवालों के पाँवों की फटी बिवाइयों से हमेशा खून रिसता रहता है। उस दर्द को विधर्मी कह भी नहीं पाते और पी भी नहीं पाते हैं। दगा किसी का सगा नहीं होता है। ईर्ष्या की आग सबसे पहले ईर्ष्यालु का ही चुपके-चुपके खून पीती रहती है। संख्या और शक्ति का अहंकार हस्तिनापुर का अंतत: नाश कर देता है। चाहे चीन हो, चाहे अमेरिका, चाहे खड्डूस अन्य देश कोई भी हमेशा-हमेशा प्रबल, महाशक्ति और अमर बनने का दावा नहीं कर सकता है। हमारे देखते-देखते ही महाशक्ति बना रूस बिलखकर किरच-किरच हो गया है। मिस्र, यूनान, बेबीलोन, ग्रीस, मेसोपोटामिया सब मिट गए। जब वो नहीं रहे, तो ये भी चिरमहाशक्ति बने रहने का प्रमाण-पत्र नहीं पा सकते हैं। बचेगा वही, जो धर्मनीति का सृष्टिहित में पालन और अनुसरण करता रहेगा। भारत की संस्कृति सनातन है। उसका प्राण धर्म है। अहंकार और अधर्म नाश का निश्चित कारण हैं—

अहंकार में तीनों गए, धन, वैभव और वंश।
ना मानो तो देख लो, रावण, कौरव, कंस॥

अनेक विद्वान् कह रहे हैं कि भारतीय ज्योतिषशास्त्र में इस तरह की महामारी की भविष्यवाणी होती रही है। अनेक वैज्ञानिक भी यह प्रमाणित करने पर तुले हैं कि यह विषाणु चमगादड़ों से नहीं फैला है, बल्कि यह चीन की बीमार महत्त्वाकांक्षी मृत्यु-प्रयोगशाला में बनाया गया है। जो भी हो, यह जो कुछ भी हुआ है, अच्छा नहीं हुआ है। हमारे ऋषि मुनि भी त्रिकालदर्शी थे। हमारे यहाँ भी एक से बढ़कर एक चौदह महाविद्याएँ रही हैं। चौंसठ कलाएँ रही हैं। उन सबका शोधन, साधना और उपयोग लोकमंगल और लोकउत्कर्ष के लिए ही होता आया है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी रामचरितमानस के उत्तरकांड में मानस रोगों की चर्चा की है। भविष्य या कलिकाल में उनके होने की बात भी कही है—

एक व्याधि बस नर मरहिं, ए असाधि बहु व्याधि।
पीड़हिं संतत जीव कहुँ, सो किमि लहै समाधि॥ (दोहा १२१)

जब ऐसी असाध्य बीमारी से लोग मरने लगेंगे, और ऐसी अनेक बीमारियाँ आनेवाली हैं, ऐसे समय में वैद्यकीय या चिकित्सकीय उपचार के साथ-साथ आत्मबल बढ़ाने तथा शरीर में रोग प्रतिरोधक क्षमता पैदा करने के लिए तुलसीदास लिखते हैं—नियम, धरम, आचरण, तप, ज्ञान, यज्ञ, जप, दान भी धर्म औषधियाँ हैं। वैद्यों और चिकित्सकों द्वारा दी जानेवाली औषधियों के सेवन से संभव है, रोगी ठीक भी हो जाए। जैसा कि कोरोना विषाणु से लड़कर लोग स्वस्थ भी हो रह हैं। पर इसके साथ ही वे समस्त मानव जाति और प्रकृति के हित में महत्त्वपूर्ण संदेश भी देते हैं—

राम कृपा नासहिं सब रोगा। जौं एहि भाँति बनै संजोगा॥
सदगुरु वैद वचन विश्वासा। संजम यह न विषय कै आसा॥
रघुपति भगति संजीवनी मूरि। अनुपायनि श्रद्धा मति पूरी॥
एहि विधि भलेहिं सो रोग नसाहिं। नाहिं त जतन कोटि नहिं जाहिं॥

कठिनाइयों का अर्थ यह है कि हम आगे बढ़ें। यह नहीं कि हतोत्साहित हों। कोरोना को डराना है। कोरोना को हराना है। विश्वास वह शक्ति है, जिससे उजड़ी हुई दुनिया को बसाया जा सकता है। आत्मविश्वास वह तत्त्व है, जिससे अँधेरी रातों को सुबह के आलोक से स्वर्णिम किया जा सकता है। ध्यान रहे कि जीवन नियमों से बँधा होना चाहिए। बिना नीति-नियम का जीवन पशु समान है। यद्यपि पशुओं का जीवन भी प्राकृतिक नियमों से परिचलित होता है। यह संकट का समय है। यह समय प्रभु से कुछ माँगने का नहीं, बल्कि जो उसने हमें दिया है, उसका आभार प्रकट करने का है। महामारी आती है, चली जाएगी। डरना नहीं। घबराना नहीं। सतर्क रहना है। चौकस रहना है। हमारे वैज्ञानिक, चिकित्सक इसकी दवाई बनाने में रात-दिन एक कर रहें। जल्दी ही आशाजनक परिणाम निश्चित ही आएँगे। पिछले तीन-चार वर्षों में भारत के संवेदनशील और धर्मज्ञ राष्ट्रभक्त राष्ट्रप्रमुख ने 'स्वच्छ भारत अभियान' से भारत के कोने-कोने को स्वच्छ-स्वस्थ भाव से महान् बनाया है। उससे भी यह दुष्ट विषाणु अपने पाँव नहीं पसार पाएगा। यदि यह कोरोना वास्तव में जीवयोनि में है, तो पुनर्जन्म और कर्मफल सिद्धांत के आधार पर इसे भी अगले जन्मों में घोर यातना एवं रौरव नरक भोगना पड़ेगा। इसलिए हे तुच्छ प्रबल विषाणु-कोरोना! ऐसा मत करो ना। हम मात्र जीव नहीं, मनुष्य हैं। यह धरती मानवता से जगमग होती रहे। प्रेम की नर्मदा बहती रहे। हम हार नहीं मानेंगे। पता नहीं, हमारी हर अगली कोशिश सफलता का द्वार खोल दे। शुद्ध विचारों से ही शुद्ध और सत्य कार्य संपन्न होते हैं। शुद्ध जीवन मिलता है। जीवन सुंदर है। जीवन सौभाग्य है। प्राची में अरुणोदय हो रहा है। आम्रतरु पर कोयल कूकने लगी है। एक चिड़िया चोंच में तिनका लेकर नीड़ बनाने में जुट गई है। इति शुभम्।

आजाद नगर
खंडवा-४५०००१
दूरभाष : ०९४२५३४२७४८

तीर्थ-यात्रा

मूल : **राजेश कौल**

अनुवाद : **गौरशंकर रैणा**

श्री राजेश कौल कश्मीरी भाषा के प्रतिष्ठित कहानीकार हैं। अब तक इनके दो कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। बहुत सी कहानियों का हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद हुआ है। उत्कृष्ट लेखन के लिए छोटे-बड़े कई सम्मान प्राप्त हुए हैं। यहाँ उनकी एक चर्चित कहानी 'तीर्थ-यात्रा' का हिंदी रूपांतरण प्रस्तुत कर रहे हैं।

जीवात्मा के शरीर त्यागने के पश्चात् यदि विधिपूर्वक क्रिया-कर्म हो जाए तो सूक्ष्म देह भवसागर पार हो जाती है और आत्मा मुक्ति पा जाती है। ऐसा ही मैं सुनता आया हूँ।

मेरी माँ का देहांत करीब एक महीना पहले हुआ था, परंतु हम अंतिम संस्कार करने के अलावा और कुछ नहीं कर सके थे, क्यों प्रज्ञावान कश्मीरी विधि जाननेवाले पंडितजी हमें यहाँ मिले ही नहीं। इसलिए हमने चौथे दिन तक ही मातम रखा।

दूसरे या तीसरे दिन मैंने यह निर्णय लेने से पहले अपनी पत्नी उषा से पूछा था, "क्या करें?"

"मैं क्या बताऊँ, जो ठीक लगे, कीजिए।" उसने उत्तर दिया।

"अपने ही आत्मीय कह रहे थे कि आर्य समाज की विधि से चौथे दिन का पाठ करके सबको विदा करें।"

उसके चेहरे पर कुछ मायूसी सी छा गई। खिन्न मन से उसने उत्तर दिया, "दूसरे कमरे में सभी बुजुर्गवार बैठे हैं, उनसे भी तो पूछ लीजिए।"

मैं बैठक की ओर गया। दरवाजे पर पहुँचा ही था कि फूफीजी का संवाद सुनाई दिया। वे फूफाजी से बात कर रही थीं, "अब इसमें कोई क्या कर सकता है। कब किसका बुलावा आ जाए, कोई नहीं जानता। मुझे भी किरण की शादी का बहुत चाव था। महीनों पहले मेहँदी की रात और देव-पूजा के लिए साड़ियाँ खरीद रखी हैं। कितनी चाहत थी, पर क्या करें! बेचारी अम्माँजी को भी इसी वक्त···! अब आय मर्दाना तौर पर जाना। औरतों का जाना मुनासिब नहीं होगा।"

मुझे याद आया कि हमारी नजदीकी रिश्तेदारी में बेटी की शादी होनेवाली है। इस कारण भी सभी चिंतित थे। "आगे के लिए भी सोच-विचार करना जरूरी है। लड़की की शादी है, इसलिए जाना जरूरी हो जाता है।" यह मेरी चाची चाचाजी से कह रही थीं। अब तक मैं बैठक में एक तरफ को बैठ गया था।

जब मैंने उनसे कहा कि पूर्ण कश्मीरी विधि से ही क्रिया करने के लिए यहाँ पंडितजी मिलेंगे नहीं, तो जैसे डूबते को तिनके का सहारा मिला। सभी मेरी तरफ उत्सुकता से देखने लगे कि मैं अब और क्या कहनेवाला हूँ!

मैंने कहा कि चौथा करना ही ठीक रहेगा, जैसा कि यहाँ होता है। सबने ठंडी साँसें भरीं, मगर कहा कुछ नहीं। उनकी चुप्पी से मेरे मन में क्षोभ भर गया। कोई तो कुछ कहता! आखिर, कुछ देर बाद फूफाजी बोल पड़े, "डू इन रोम ऐज द रोमनज डू।" ऐसे वाक्य बोलना और पश्चिमी विद्वानों के शब्दों को उद्धृत करना उनकी आदत थी। तभी फूफीजी उनके वाक्य का अनुवाद करते हुए बोलीं, "हर जगह की अपनी-अपनी प्रथा होती है। जैसा देश, वैसा भेस। अब जब कोई चारा नहीं है तो हमें ऐसा ही करना चाहिए।"

मैं समझ रहा था कि वे शादी में उपस्थित होना चाहते हैं और अपने-अपने घर भी जाना चाहते हैं, क्योंकि महाशिवरात्रि आनेवाली थी।

चौथे दिन शांति-पाठ हुआ। वैसे ही जैसे होता है। पूजा-पाठ समाप्त होने के बाद सबने प्रसाद ग्रहण किया और अपने-अपने घर चले गए, बड़े उत्सव की तैयारी करने।

मैं और मेरी पत्नी उषा घर में अकेले रह गए थे। पहली बार हमें लगा कि हम इस संसार में अकेले हैं। वे जो हमारे घर में कई लोगों के समान थीं, आज वह भी हमारे पास नहीं थीं। नि:शब्द लोक में हम नि:शक्त पड़े थे।

उस रात से न जाने क्यों उषा की नींद उचट गई! वह अचानक जाग जाती और बिस्तर पर बैठे-बैठे न जाने क्या सोचती रहती! एक दिन मैंने पूछ ही लिया कि वह क्या सोचती रहती है? पहले तो उसने कोई उत्तर नहीं दिया; लेकिन कुछ समय बाद वह रोने लगी और व्यथित मन से बोली, "हम दूसरों की बातों में आ गए। हमें दसवें, ग्यारहवें और बारहवें दिन का क्रिया-कर्म विधिपूर्वक करना चाहिए था। हमने यह क्या किया? राजमाता से कम नहीं थीं आपकी माँ, और कैसा व्यवहार हुआ उनके साथ? किस तरह से पाला था उन्होंने सबको। कितना स्नेह देती थीं। किस-किस का उपकार नहीं किया था उन्होंने! आँखों पर बिठाती थीं सबको और आज सबके सब···?"

मेरी जैसे आबरू उतर गई हो। मगर पुरुष का अभिमान आड़े आया। मैंने कहा, "कश्मीरी ब्राह्मणजी नहीं मिले यहाँ तो क्या करता, अपने आपको आग में झोंकता क्या?"

"नहीं, असल बात तो यह है कि तुमने मन से कोशिश ही नहीं की। और फिर हम हरिद्वार भी तो जा सकते थे!" उसने मुँह फेरते हुए कहा।

"घर में सभी रिश्तेदार आए हुए थे, उन्हें क्या घर से निकाल देता!"

उसकी आँखों से आँसू छलक आए। मैं उसकी वेदना समझ गया और बोला, "तब क्यों नहीं बताया था?"

"अभी भी कौन सी देर हुई है, अब चले जाते हैं।"

"अब तो लगभग एक महीना होनेवाला है।"

"जब किसी की असामयिक मृत्यु होती है या किसी का मृत शरीर कई-कई दिनों तक मिलता ही नहीं है किसी दुर्घटना वगैरह की वजह से, तो क्या उनका क्रिया-कर्म ही नहीं होता है! इच्छा हो तो सब हो जाता है।"

मैं बिना किसी प्रतिक्रिया के सुनता रहा।

"इतने बड़े घर की मालकिन, बेटा इतना बड़ा अफसर और माँ के साथ ऐसा व्यवहार!" उसने निरुत्साहित और निराश होकर कहा।

मैं उसे देखता रहा और सोचता रहा कि क्या यह वही उषा है, जो मामूली सी बातों पर माँ से झगड़ा किया करती थी।

"ऐसे क्यों देख रहे हो, क्या मैं झूठ बोल रही हूँ?" मैंने उसकी बात का कोई उत्तर नहीं दिया। दूसरे कमरे में गया, कंप्यूटर चलाया और हरिद्वार के लिए दो टिकटें बुक करा लीं। दूसरे दिन हम पूरी सामग्री लेकर हरिद्वार के लिए निकल पड़े।

नैसर्गिक, साधारण, किंतु असाधारण गंगा घाट। निर्मल जल के प्रवाह ने उषा का द्विभाव भी प्रवाहित किया था। वह प्रसन्न थी। हमने शांति से, बिना किसी विघ्न के दसवाँ, ग्यारहवाँ और बारहवाँ दिन अधिष्ठित को समर्पित किए। मैंने दसवें दिन सिर मुँड़वाया, वैसे ही जैसे कश्मीर में बितस्ता के घाट पर रिश्तेदारों आदि की मौजूदगी में होता था।

बारहवें दिन क्रिया-कर्म समाप्त होने के बाद हम दोनों गंगा के किनारे टहलने लगे। कहीं-कहीं कामचलाऊ दुकानों पर छिट-पुट सामान बिक रहा था।

"बहनजी, लीजिए, यह शंख बहुत ही अच्छा है। आपको सस्ते में दे दूँगा।"

"बाबूजी, लीजिए, यह कुरता तो देख लीजिए, गरमियों में खूब काम आएगा। इसके साथ यह गमछा भी दे दूँगा, जिस रंग का भी ले लीजिएगा।"

सामने तिरपाल बिछाकर एक बूढ़ी औरत गंगाजल ले जाने के लिए बोतलें बेच रही थी। उषा ने कुछ सामान खरीदना शुरू किया। मैंने भी कुछ-कुछ खरीदा और हम यह सामान कंधे पर लटकते, भारी होते झोलों में ठूँसते गए। उषा ने शायद कुछ सामान यों ही, बेचनेवालों का मन रखने के लिए खरीदा था। मैं अब लौटना चहाता था, मगर उषा ने और आगे तक जाने की इच्छा जाहिर की। आगे एक विशाल वृक्ष के नीचे एक वृद्ध महात्माजी बैठे थे। उनके सामने बीस-तीस और लोग भी बैठे थे। कुछ

कश्मीरी-हिंदी लेखक, अनुवादक एवं फिल्मकार। मौलिक लेखन तथा अनुवाद की लगभग ९५ पुस्तकें प्रकाशित। जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति एवं भाषा अकादमी द्वारा प्रथम अनुवाद पुरस्कार; लोक सेवा प्रसारण पुरस्कार; केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा हिंदीतर भाषी हिंदी लेखक पुरस्कार; उ.प्र. हिंदी संस्थान द्वारा सौहार्द सम्मान सहित कई पुरस्कार-सम्मान प्राप्त। हिंदी में २५ टेलीफिल्म तथा एकल नाटकों का निर्माण एवं निर्देशन। संप्रति इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र में सलाहकार।

चेले प्रवचन की तैयारी कर रहे थे। हम दूर से ही देख रहे थे, पर उषा के आग्रह पर हम भी भक्तों की भीड़ में शामिल हो गए। महात्माजी कुछ कहने लगे। उन्होंने कहा कि "सभी उपस्थित जन गंगाजी में जाकर तीन डुबकियाँ लगाएँ और पंद्रह मिनट में लौट आएँ। उसके बाद मैं अपना प्रवचन आरंभ करूँगा। पहली डुबकी तन की शुद्धि के लिए, दूसरी मन की शुद्धि और तीसरी पवित्र-दृष्टि के लिए।" मैं ऐसी बातों पर ज्यादा विश्वास नहीं करता, इसलिए अपने स्थान पर ही बैठा रहा।

उषा स्त्रियों के झुंड के साथ गई और कुछ देर बाद उनके साथ ही लौटी। मुझे अपने ही स्थान पर बैठा देखा तो आँखें तरेर लीं। उसने वही कुरता पहन रखा था, जो पटरी से खरीदा था। उसके गीले बालों से पानी की बूँदें घास पर गिर रही थीं। उषा ने गीले कपड़े थैले के एक कोने में रखते हुए मुझे कहा, "जाइए! आप क्यों नहीं गए?"

"मैं तो सुबह ही नहाया था, कितनी बार नहाऊँ? मैं लकीर का फकीर नहीं।"

"क्यों हर वक्त जिद्द करते हैं। दोबारा नहाने में कोई हर्ज नहीं!"

अपनी पत्नी की नाक रखने की गरज से मैं गंगा की ओर गया। कपड़े उतारे और डुबकी लगाई। पानी ठंडा था। शरीर सिहरने लगा, इस कारण पानी में ज्यादा समय तक रुक न सका। दूसरी डुबकी लगाई। पहले जैसा ही अनुभव था। मैंने अपना सिर पानी से बाहर निकाला। चारों तरफ नजर दौड़ाई। सबकुछ वैसा ही था। तीसरी बार जब मैं पानी के अंदर गया तो पूरे शरीर में सुरसुराहट सी हुई। फिर लगा, जैसे किसी शून्य की ओर जा रहा हूँ। क्या मैं उड़ रहा था? ऐसा ही कुछ लग रहा था। यह क्या, शरीर से जैसे दो और टाँगें जुड़ गई हों। मैं जैसे चार टाँगों पर खड़ा था। फिर कुछ और टाँगें निकल पड़ीं। निरंतर उगती हुई टाँगों ने मुझे एक बड़ी सी मकड़ी जैसा बना दिया था। अब मैं धीरे-धीरे चल रहा था, क्योंकि मेरा शरीर भारी हो गया था, मगर मेरी नजर साफ हो गई थी। सामने जो कुछ भी था, वह मुझे साफ-साफ नजर आ रहा था। मैं भयभीत हुआ और एकदम से पानी से बाहर आया। चारों तरफ नजर दौड़ाई, सबकुछ वैसा का वैसा ही था, कहीं कोई परिवर्तन नहीं। मुझे अपने स्वर्गीय पिता की बात याद आ गई कि विवाह के बाद पुरुष चौपाया बन जाता है पशु के समान। फिर जब उसके बच्चे हो जाते हैं तो उसके दो और पैर निकल आते हैं। इस तरह उसके पैरों में वृद्धि

होती रहती है और वह एक दिन मकड़ी सा हो जाता है, उसका प्रभाव प्राप्त करता है। वह जाल बुनता जाता है और अंततः उसी जाल में फँस जाता है।

मैं पानी से बाहर घाट के पत्थर पर बैठकर अपने आप को देखने लगा। सब ठीक था। मैं मनुष्य योनि में ही था। मैंने कपड़े पहने और वहाँ पर गया, जहाँ महात्माजी ज्ञान की बातें बता रहे थे। इतनी देर में वे क्या कुछ कह गए थे, वह तो सुन नहीं पाया था, मगर इस समय वे कह रहे थे, "कुत्ते का तन अपवित्र होता है, मगर उसका मन पवित्र होता है। और यदि बिल्ली की बात करें तो उसका मन अत्यंत अपवित्र, मगर शरीर पवित्र होता है।"

पवित्र-अपवित्र? बाल्यावस्था की घटनाएँ मानसपटल पर प्रकट होने लगीं। कुत्ता आता तो सारा घर फिर से लिप-पुत जाता। बिल्ली आती तो···। तब भी माँ प्रवचन पर ले जाती थीं। उन दिनों की कई सुनी हुई बातें, जो समझ से परे थीं—तीन ऋण, धन, अन्न, दान, संकल्प, आत्मा, दर्शन, मीमांसा। उषा ने कुहनी मार दी, "कहाँ खोए हैं? सुन भी रहे हो न कि स्वामीजी क्या कह रहे हैं?"

"हाँ-हाँ!" मैं स्वामीजी को फिर से सुनने लगा। वे कह रहे थे—

"तो मैं जो यह सारी बातें समझा रहा था कि कुत्ते का मन पवित्र और तन अपवित्र तथा बिल्ली का मन अपवित्र और···"

"तन पवित्र होता है।" कुछ उपस्थित लोगों ने कहा।

मेरे मन में भी एक प्रश्न मुझे झकझोर रहा था। मेरा चित्त अशांत था। एक पिशाचक की तरह मेरा प्रश्न मुझे परेशान कर रहा था। मैंने हिम्मत करके महात्माजी से पूछा, "स्वामीजी! इनसान को···?"

उन्होंने मेरी तरफ देखा। आँखों में न स्नेह था, न गुस्सा। उनकी मनःस्थिति का अंदाजा लगाना मुश्किल था। चारों तरफ खामोशी छा गई। प्रवचन सभा में बैठे सभी स्त्री-पुरुष मेरी तरफ घूर-घूर के देख रहे थे, जैसे मैंने कोई अपराध किया हो। स्वामीजी ने आँखें बंद कर लीं और ध्यान लगाया। संध्या समय तक वे ध्यानस्थ ही थे। कुछ लोग निकलने लगे थे। उषा अभी भी बैठे रहना चाहती थी, मगर मैंने उसे चलने को कहा। न चाहते हुए भी वह मेरे साथ होटल की तरफ चलने लगी। कुछ ही देर में हम 'इष्टसिद्धि लॉज' में पहुँच गए, मगर मैं तब से ही अपने प्रश्न के उत्तर की प्रतीक्षा में भटक रहा हूँ। साअ

१६९-बी, पॉकेट-ए
जी-१, विकासपुरी
नई दिल्ली-११००१८

लघुकथा

बिखरने से पहले

● शोभना श्याम

"लो फिर चले आ रहे है तुम्हारे पापा, देखते हैं, आज क्या लेकर आते हैं—फूल, सीडी या फिर कोई फरमाइश। बालकनी में चाय पीते शिरीष ने चुटकी ली।

"तुम्हारे पेट में क्यों दर्द होता है? वे जो भी लाते हैं, मेरी सास के लिए ही तो लाते हैं।" मानसी चिढ़कर बोली!

"अरे, मेरी माँ पर डोरे डाल रहे है इस उम्र में, ठरकी कहीं के!"

"शर्म करो शिरीष, इतनी घटिया बात तुम्हें शोभा नहीं देती।"

"अच्छा! और तुम्हारे पापा को मेरी विधवा माँ से नजदीकियाँ बढ़ाना शोभा देता है?"

"शिरीष, इतने पढ़े लिखे होकर भी इतना संकुचित दृष्टिकोण है तुम्हारा? स्त्री-पुरुष की दोस्ती में बस एक ही कोण नजर आता है तुम्हें? माना मेरी मम्मी आज शरीर से उनके साथ नहीं हैं, पर उनके दिल में मम्मी की जगह कोई नहीं ले सकता। फिक्र मत करो, तुम्हारी माँ सुरक्षित हैं।" मानसी ने व्यंग्य कसा।

"ओहो! तो एक दिल में है और दूसरी नजरों के सामने होनी चाहिए, हैं न?"

"शिरीष, काश तुमने अपनी ही माँ के जीवन के खालीपन को महसूस किया होता, उन्होंने बताया था कैसे तुम्हारे बाबूजी ने उनके संगीत के शौक को गृहस्थी के नाम पर कुचल दिया था, माँ ने भी हमारे समाज की अन्य हजारों स्त्रियों की तरह अपने सपनों को रसोई, घर-गृहस्थी और बाबूजी के संग-साथ पर न्योछावर कर दिया था। अब एक ओर तो वे गृहस्थी की जिम्मेदारियों से निवृत्त हो गई थीं और उधर बाबूजी भी चले गए। ऐसे में

सुपरिचित लेखिका। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। संस्थापक एवं महासचिव 'उदीषा' साहित्यिक-सांस्कृतिक संस्था, कार्यकारी सदस्य 'इंडियन ऑथर्स सोसाइटी'। विद्यार्थी जीवन से ही साहित्य, कला, अभिनय, वृत्य, वाद-विवाद आदि प्रतियोगिताओं में पुरस्कृत।

संगीत सुनने के शौकीन मेरे पापा उनके जीवन के रिक्त स्थान को उन्हीं के पीछे छूट गए संगीत से भरने की कोशिश कर रहे हैं तो तुम्हें तो खुश होना चाहिए। बाबूजी के स्वर्गवास के बाद गुमसुम रहनेवाली, खाना-पीना लगभग छोड़ चुकी माँ वापस जिदगी के पास आ रही हैं। आज उनके पहलु में मेरे पापा नहीं, उन्हीं का कबाड़खाने से निकाला गया तानपुरा हैं। मुरझाने को तैयार दो फूल बस कुछ दिन और एक-दूसरे की बिखरती पँखुड़ियों को सँभालने की कोशिश कर रहे हैं, शिरीष।" मानसी का स्वर भीग गया था।

शिरीष निरुत्तर था, ड्राइंग-रूम से तानपुरे के साथ माँ के गाने की आवाज आ रही थी, "बोले रे पपीहरा···।" साअ

एच. २५६, ११ एवेन्यू, गौर सिटी
गौतमबुद्ध नगर, नोएडा वेस्ट-२०१३१८
दूरभाष : ९९५३२३५८४०
shobhanashubhi@gmail.com

मैं द्रौपदी मूकदर्शक सी

● लक्ष्मी मित्तल

वीर पुरुषों से सुसज्जित सभागृह
डोर से बँधी एक मत्स्य
किंधार धनुष, कुछ बाण।
निर्णय लेंगे आज
मेरे भावी जीवन की डोर को
सँभालने वाले मजबूत हाथों का।
कौन बेधेगा इस लक्ष्य को?
क्या कोई बेध भी पाएगा?
गर कोई पुरुष लक्ष्य साध न पाया
तो भी मैं ही अभागन कहलाऊँगी
हाँ, मूकदर्शक सी मैं आरोपित हो जाऊँगी।

आत्मविश्वासी, एकाग्रशील,
धनुर्धारी वीर का एक बाण,
लक्ष्य-मत्स्य की आँख
निर्णायक बन गए
मेरे जीवन संगी के चयन में।
प्रसन्न थी मैं
मगर प्रसन्नता क्षणभंगुर थी
शीघ्र ही परिवर्तित कर दी गई
स्त्री से अमूल्य वस्तु में और
बाँट दी गई पाँच भागों में
तब भी मूक सी, संतापग्रस्त
आँसू बहाती रही अपनी नियति पर।

आज एक बार फिर से सुसज्जित है
पुरुषों से भरा सभागार
दोनों और पुरुष जाति
मध्य सफेद-काले चौकोर डिब्बों
पर जमाए प्यादे,
पुरुष हाथों में पासे
और दाँव पर लगा दी गई
मैं संपत्ति सी,
अचंभित परंतु आज मूक नहीं।
सिर झुकाए बैठे
महापुरुषों की महफिल में
एक तमाशा चल रहा है
दिखाई नहीं दे रही उन्हें
एक स्त्री की व्यथा
सुनाई नहीं दे रही उसकी चीखें ।
सुनाई दे रही है सिर्फ कुटिल हँसी
शर्मसार करते उन पुरुषों की
जो चाहते हैं नियंत्रण कर लेना
उसकी डोर को अपने बलशाली हाथों में
ताकि पतंग सी उड़ती जाए वह
उनकी दी गई ढील,
उन्हीं के कसाव के अनुरूप।

मगर मैं द्रौपदी, चेताती हूँ
ऐ पुरुष! मत लहरा
अपनी शर्तों पर उड़ने दे
उसे स्वच्छंद अन्यथा
डोर झटककर टूट जाएगी
और पतंग छूट, दूर चली जाएगी
कभी न दिखाई देने के लिए।

मैं द्रौपदी चेताती हूँ स्त्री-जाति को भी
मत सौंपना अपनी डोर किसी को भी
इस भाँति कि कठपुतली बन जाओ
और नाचती रहो उनके इशारों पर।
मत देना अधिकार
अपने आत्मसम्मान को ठेस पहुँचाने का

नवभारत टाइम्स, राइजिंग इंडिया टुडे एंव विभिन्न पत्रिकाओं में कविता, लघुकथा, कहानी इत्यादि प्रकाशित। विभिन्न सोशल मंचों पर रचना विजेता के रूप में सम्मान।
साझा-संग्रह : मातृ-पितृ आशीष अंक, पिता, रत्नावली, लघुकथा मंजूषा।

और फिर जब कभी तुम विरोध जताओ
तो वे आरोपित करेंगे,
अपमानित करेंगे और
तुम मूकदर्शक सी फिर
आरोपित होती ही जाओगी
मुझ तिरस्कृत, अबला भाँति॥

साअ
फ्लैट नंबर ६५९,
डीडीए (एसएफएस), सेक्टर-२२, द्वारका
नई दिल्ली-११००७७
दूरभाष : ९९७१००५२९४
nikkimittal28@gmail.com

इमारत मेरी है

• शोभा रस्तोगी

पापा, आपको नहला-धुलाकर नए कपड़े पहना दिए हैं। लकड़ी की सीढ़ीनुमा चीज पर लिटाया गया है, जिसे शायद अर्थी कहते हैं। माँ को उलाहने दिए जा रहे हैं।

"दैया रे, कैसी महरारू है? एक आँसू न गिरा।"

ताई फुसफुसाई—"इसका तो मनचीन्हा हो गया। मेरे देवर का साथ भाया ही कब था इसे?" पापा, अब आपकी देह पर माँ की चूड़ियाँ, बिछुए, बिंदी, सिंदूर रख दिए हैं। यंत्रवत् माँ सब किए जा रही हैं। उनकी सूनी आँखों में नंगे जंगल की धूल भरी आँधी है, जिसके हृदय मेघ की किंचित् बूँदों को तो आपने ही कबका सुखा दिया था। बस माँ तो हमारे प्रति अपने फर्जों की जंग जीतने में आठों याम रफ्तार पकड़ने लगी थी। आपकी छोटी सी किराने की दुकान से घर निर्वाह असंभव सा था। उस पर आप दादा के बड़े कुनबे के प्रति श्रवणत्व अदा करने में ताउम्र लगे रहे। पतित्व और पितात्व एक पोटली में समेट माँ को ही थमा बैठे थे। हम दोनों भाई-बहन आपके स्नेह छाँव की पिपास में सूखते जाते। और पाते कि वह छतरी ताई के बच्चों पर टँगी है। दोस्त संग जयपुर गए तो लौटे दो चूड़ी डिब्बी लेकर। एक माँ और दूसरी ताई की। माँ की आँखों में सवालों का सैलाब उठ आया था।

"तो सुनता क्या, बस बीबी के लिए?"

"चूड़ी पत्नी का ही हक है।" माँ के कहते ही झन्नाटेदार थप्पड़ ने सुखा दिया सैलाब। माँ के हिस्से की चूड़ियाँ उछलकर घूमी और छन्न से टूटे सीमेंट के अधेड़ फर्श पर ढेर हो गईं। ताई की डिब्बी संकोच सहित उन तक पहुँच गई थी।

पूरे कुनबे का घर चलाना आपके फर्ज की अहम जरूरत थी। दुकान की आमदनी कौन जाने जब सबकी आवश्यकताएँ समय से पूरी हो जातीं। वाहवाही की वर्षा में आप खूब नहाते। उसी चमक के पीछे छा रही कर्ज की गर्द किसी आँख को धूसरित न करती। दादा-ताऊ की तिजोरी का तौल और आपके कर्ज बढ़ते ग्राफ पर समानांतर थे। माँ, हम और आप जीने की सीमा रेखा पर भी ठिठके ही खड़े थे। घने अँधेरों में माँ के बगलगीर होने पर भी आप के मस्तिष्क तंतु उधार-ब्याज के गणित

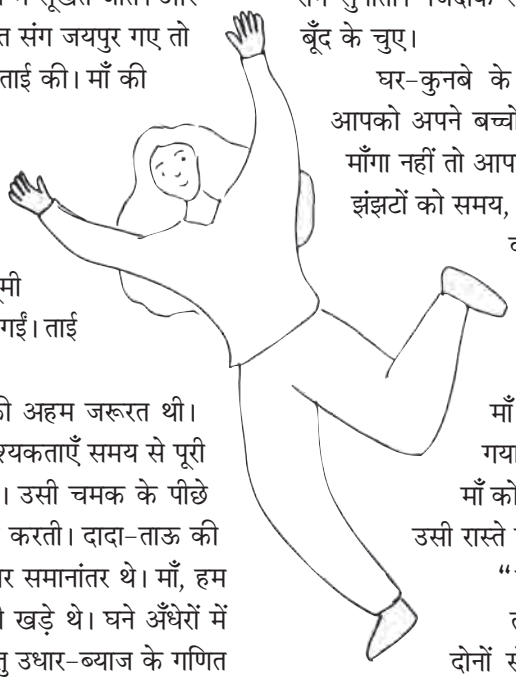

दिन अपने लिए (लघुकथा-संग्रह), बहुत दूर···गुलमोहर (कहानी-संग्रह), अनेक साझा संकलनों में लघुकथा, कविता तथा कहानियाँ संगृहीत। आकाशवाणी भोपाल तथा आकाशवाणी नई दिल्ली से रचनाएँ प्रसारित। ईबुक वर्जिन लघुकथा मंजूषा-३ का संपादन। लघुकथाओं का पंजाबी तथा उर्दू में अनुवाद। अनेक सम्मानों से अलंकृत।

में ही उलझ जाते। माँ का शरीर तो थाली पर से रोटी उठा लेने भर तक का साधन होता। उन नितांत अपनेपन के क्षणों की भी माँ सुखभागी नहीं होती, जिन पर उनका केवल उनका अधिकार होता। मुहर भर लग जाती। सिग्नेचर तो कभी हुए ही नहीं। आपको भी क्या मिला पापा? क्यों आपने हमारी-अपनी ऐसी कहानी लिख दी जो दूर से देखने पर बड़ा भला सा राग सुनाती। नजदीक से हम सब लहूलुहान थे, बिना एक भी लाल बूँद के चुए।

घर-कुनबे के सभी झगड़ों में आपकी शीर्षस्थ भूमिका आपको अपने बच्चों से विलगाती रही। माँ मूक बनी रही। कभी माँगा नहीं तो आपने या परिवार ने कुछ दिया भी नहीं। कुनबे के झंझटों को समय, धन से आप सिलटाते रहे तो तन से माँ। पैसा, वक्त पर हमारे नाम की खुरची सी परत भी आपने उनकी भेंट चढ़ा दी। माँ को आपके ढेर कर्जे का अहसास हो गया था। लिहाजा माँ ने नौकरी कर ली। घर के तमाम कार्य जो माँ द्वारा ही पूर्णता पाते, उन पर प्रश्न चिह्न लग गया। आप अपनी पतली हालत देख रहे थे। सो माँ को सहमति दे दी। यह क्या? माँ का भी सारा धन उसी रास्ते जाने लगा। तिस पर दोहरा दबाव।

"नौकरी करती है तो क्या चूतर चाटोगे?"

ताई की बात से आपको लगा कि घर बाहर दोनों सँभालना माँ की नैतिक जिम्मेदारी है। सभी

औरतें करती हैं कहकर अपना पल्लू झाड़ लिया। तथाकथित उन सभी की सहूलियत को पलटकर भी न देखा। माँ खामोशी ओढ़े सब्र करती रही। बुआ-चाचाओं की शादी के बाद माँ खल्लास। तन और धन दोनों से। हमारे बढ़ते कद को भी माँ भाँप रही थीं। आपकी नजर इधर भी झपकी ही रही।

समय ने सबके चूल्हे न्यारे कर दिए। आपके कर्तव्य वहीं बँधे रहे। हमारी जरूरी जरूरतों को भी समय न मिला कभी। हाँ, माँ के शब्द भारी हो गए थे। थोड़ा-बहुत हमारे लिए बचाए धन पर भी आपका अहं कुंडली मार देता। पिता भाई के सामने आपकी खुद्दारी और बीबी के सामने दबंग मर्द। बीबी की एकेक चीज पर उसका हक। चाहे वह तार-तार कर दे उसकी इज्जत। उसकी भावनाओं की रुई बिन सिलवट लिए पड़े रहती। कोरा-कोरा ही रह जाता वह कोना। यूनिवर्सिटी में मेरा एडमीशन कराने की तुलना में आपने अपने बड़े भाई के परिवार को वक्त देना ज्यादा मुनासिब समझा। आपके हिसाब से मेरा भविष्य बनाना आपकी नहीं, माँ की जिम्मेदारी थी। माँ हमें समझाती—बेटा अपना सूरज खुद उगाना पड़ता है। इनके सहारे रही तो तेरा भविष्य चौपट।

"और आप जो इतनी भाग दौड़?" मेरे प्रश्न पर बाँहों में भर लेतीं मुझे—"तुम दोनों ही तो मझधार में नैया हो मेरी। जीना क्या है तुमसे ही तो जाना है। तुम्हारा सुख मेरी गर्वानुभूति है बेटा।" भाई की विदेश में नौकरी लगी। उसकी पसंद की लड़की से कोर्ट मैरिज करा माँ ने उसे पराए देश भेज दिया।

"जा बेटा, जी ले अपनी जिंदगी।" पीछे का अंधड़ माँ के हिस्से आया था।

"क्या तेरी ही औलाद है वो? पर बिरादरी की छोरी से उसकी शादी करा खानदान की नाक कटवा दी।"

"तुम्हारे पिताजी कभी उस लड़की को न अपनाते।"

"तो बेइज्जती कराते समाज में?"

"कभी जानी तुमने अपने बच्चों की खुशी? इसलिए···" उठ गया आपका हाथ माँ पर। दूसरा भी हरकत करे उससे पहले थाम लिया माँ ने।

"बस, अपनी तईं सब झेला मैंने। मेरे बच्चों की खुशी के रास्ते में आए तो···" और झटक दिया था आपका हाथ। आप देखते रह गए थे, चेहरा जिस पर सिर्फ माँ लिखा था।

अपने परिवारों में व्यस्त थे सभी। आपको अब भी सबकी चिंता थी। नहीं थी तो माँ की, मेरी। माँ आपके लिए धनार्जन व घरेलू कार्यों को अंजाम देने तक का जरिया थीं। आपको अनेक बीमारियों ने घेर लिया था। पैरों में छाले फटे रहते। रात माँ मालिश करती, दवा लगाती। अल्ल-सुबह इन्हीं जख्मों से ताई के हजार-हजार कार्य कर रहे होते। दौड़-दौड़कर जाते। टूट-टूटकर आते। मोम का पिघलना पिघलते ही जाना माँ के हिस्से आया था। आप ठंडा पत्थर ही बने रहे। तरल उष्ण मोम माँ के अवचेतन, चेतन पर फक्क से छाले बनाता जाता। पुराने छालों की भीड़ में वे सटते जाते। यह गरम लावा आपको कभी द्रवित न कर पाता। कभी करने की कोशिश भी होती तो छालों को छीलकर आप असहनीय पीड़ा को दूर तक फैलाव देते। आपका काम माँ की देह से महज रस निचोड़ लेना होता। आम चूसकर गुठली-छुक्कल फेंक देना भर।

"सब तैयारी हो गई है। आप नहा लो तो कंजक जीम लें।"

"अभी भाभी घर देर है। पहले उनको, पीछे हमारा।"

"सुबह से लगी हूँ इसमें तो पहले-बाद की कोई बात ना है।"

"दुर्गा आरती से पहले उतारूँ तेरी आरती?" माँ खौलती रही। माँ के दिल के कोने-कोने में आपकी नफरत की कँटीली घास थी। फिर भी झाड़ू से बिस्तर तक सभी कामों को सिलसिलेवार तरतीबी से अंजाम देती रही। उनके स्नेह की हूक को आपने कभी सहलाया भी नहीं। आपने अपने प्रति नफरत के अंधे बीहड़ों में घुसा दिया था उन्हें। वे टटोलती रहीं आपकी परछाईं, जो गलती से भी मिली तो जून की लू सी।

मेरे विवाह उपरांत मेरे व पीयूष की जिद्द के बाद भी वे हमारे साथ नहीं आईं। आपसे बँधी जो थीं। तमाम उम्र आपने माँ को सुख की ताप न लगने दी। किंतु आज एक अच्छा काम किया उन्हें आजाद करके। मैं अपने साथ ले जा रही हूँ उन्हें। उनकी निस्तेज आँखों में पुनः रोशनी फूट पड़ेगी, जब वे मेरे बच्चों के साथ खेलेंगी। फर्ज और हक दोनों आ गिरे हैं बेटी की झोली में। टूटती दीवार की एक-एक ईंट पर स्नेह का प्लास्टर लगाऊँगी। पूरी इमारत मेरी है।

सी-१५८, सिद्धार्थ कुंज अपार्टमेंट,
प्लॉट नं. १७, सेक्टर-७,
द्वारका, नई दिल्ली-११००७५
दूरभाष : ०९६५०२६७२७७
shobharastogishobh@gmail.com

इस अंक की चित्रकार

दीक्षा मेहता

ललितकला महाविद्यालय, दिल्ली की विद्यार्थी। जो बचपन से ही चित्रकार बनना चाहती थी, ताकि आपनी चित्रकला का प्रदर्शन कर सके। अपने कलात्मक कौशल से सभी की आँखों में समा जानेवाली कला का प्रदर्शन करने के साथ-साथ लोगों को प्रेरित करना इनकी हॉबी है।

संपर्क : ए-३/१०, पश्चिम विहार, नई दिल्ली-११००६३
दूरभाष : ८३८३९२१७१३

व्यंग्य

चमचों की दुकान

• सुनीता शानू

दुकान के बाहर लिखा था, 'चमचों की दुकान, चमचे ही चमचे···' बस एक चमचा ही तो चाहिए था रसोई के लिए।

मैंने कहा, "भैया एक चमचा देना जरा," और दुकानदार ने एक खूबसूरत, चिकना व अच्छी क्वालिटी का चमचा मेरे हाथ में पकड़ा दिया और बोला, "बहनजी, यह बहुत बढ़िया चमचा है, जिंदगी भर साथ निभाएगा, आदमी परलोक चला जाए, मगर यह चमचा कहीं नहीं जाएगा, मैं गारंटी लेता हूँ।"

मैंने चमचे को हाथ में पकड़ा, सचमुच चमचा एकदम चिकना और मजबूत था, देखकर लगा, कई बरसों तक इसकी मोटी और चिकनी सतह पर चिकनाई बनी रहने वाली है। मैंने उसकी चमक में अपना चेहरा देखना चाहा और चेहरे को चमचे सा लंबा, चपटा सा देखकर कहा, "यह थोड़ा उथला है, शक्ल तक सही से नहीं दिख रही, लगता नहीं, दाल-भाजी भी सही से निकाल पाएगा।" दुकानदार मेरी बात सुनकर दूध सा उबला, मगर गुस्से को पतीले से बाहर जरा भी नहीं छलकने दिया, तुरंत एक दूसरा चमचा मेरे हाथ में पकड़ा कर बोला, "अरे बहनजी, आप इतनी खूबसूरत हैं, यह गरीब चमचा कहाँ बता पाएगा। यह दूसरा लीजिए, यह आज के जमाने का चमचा है, बिल्कुल स्मार्ट फोन की तरह, चेहरे को इतना सुंदर बनाकर दिखाएगा कि आप खुद को भी नहीं पहचान पाएँगी। यह सारे काम भी करेगा, और जब चाहेंगी, चेहरा देखना और जब मन हो रसोईघर में काम पर लगा दीजिए, फिर देखिए इसका कमाल, किस तरह सब्जी, भाजी इधर की उधर करता है।"

"शायद आज तक किसी असली चमचे से आपका पाला पड़ा नहीं।"

दुकानदार मुझे चमचापुराण सुनाने लगा और तरह-तरह के चमचों की कारगुजारियाँ। उसने बताया, कब हमने हाथ पर भरोसा करना बंद कर दिया और चमचों का दौर आया।

कैसे चमचों ने चटनी चटाई थी, चाय में शक्कर मिलाई थी, चम्मचों से खाना खाने की बदौलत ही समाज में पढ़े-लिखे होने का खिताब पाया था।

क्या आप जानते हैं, संसार में अगर चमचे न होते तो कितना नुकसान हो जाता? जिस किसी को भी चमचों की उपयोगिता नजर आई होगी, उन्होंने अपने साथ कुछ चमचे अवश्य रखे होंगे। चमचा कुछ करे न करे, गुणगान इतना कर देता है कि पतीली के भीतर ही भीतर क्या पक रहा है, जग जाहिर कर सकता है।

दुकानदार फिर बोला, "बहनजी, चमचा जिस बरतन में रहता है, पूरी तरह से खाली करके दम लेता है।" दुकानदार अच्छा सेल्समैन था, उसके हिसाब से तो एक ग्राहक को वह सब भी खरीद लेना चाहिए, जिसकी जरूरत आज नहीं तो कल पड़ सकती है।

सुपरिचित रचनाकार। काव्य-संग्रह 'मन पखेरु उड़ चला फिर' तथा पत्र-पत्रिकाओं में व्यंग्य, कविता, कहानियाँ आदि प्रकाशित। अनेक कवि-सम्मेलनों में काव्य-पाठ। साधना टी.वी. चैनल पर काव्य-पाठ एवं संचालन।

मैंने उसकी आधी बातें अनसुनी कर दीं और चमचे को उलट-पलटकर अच्छी तरह से ठोक-बजाकर देखा, फिर चेहरा देखते हुए माथे पर लगी बिंदी भी व्यवस्थित कर ली, अचानक मेरी नजर दुकान में पड़ी चम्मचों पर गई, खूबसूरत नक्काशीदार चम्मचें लुभा रही थीं, दुकानदार तुरंत सतर्क हुआ और मेरे ना-ना करते-करते भी चम्मचों का सैट मेरे सामने रख दिया, "देखिए, यह दूध पर से मलाई निकालने वाली चम्मच है, दूध की एक बूंद भी नहीं आएगी और मलाई बाहर। और यह दूसरी मक्खन लगाने में माहिर है, दिखाई तो बड़ी देती है, लेकिन जब मक्खन किसी दूसरे की ब्रेड पर लगाती है तो बस खुशबू सुँघाकर वापस ले आती है, और यह तीसरी चम्मच तो इतनी चिकनी है कि आप खाना खाते हुए चाहे जितनी बार इसके दाँत मार दें, आपको चोट नहीं पहुँचाएगी और यह चौथी चम्मच सबसे अधिक कामयाब है, यानी कि कामयाबी की सीढ़ियाँ यही चढ़ाएगी, यह आपका उस वक्त तक गुणगान करेगी, तब तक बजती रहेगी, जब तक की आप अपने साथ रखेंगी।

और देखते ही देखते मेरे चारों तरफ चमचों और चमचियों की लाइन लग गई थी, मैंने सबकी सब थैले में डाल लीं। सच बताऊँ तो मुझे उतना ही मजा आया, जितना सब्जी के साथ धनिया, मिर्ची मुफ्त मिलने पर आया करता है, और दुकानदार भी ठीक वैसे ही मुसकराया, जिस तरह रूमाल खरीदने आई महिला को दुकानदार चद्दरें, रजाई, गद्दे खरीदवा देता है।

सच मानिए तो चमचों की कमी सबको महसूस होती है, हुनर तो हर आदमी में होते ही हैं, लेकिन अगर चमचे न हों तो आदमी के भीतर पड़े हुनर को हिलाए-डुलाएगा कौन, और कौन बाहर लाकर दुनिया को दिखाएगा? जिनके अपने खरीदे चमचे हैं, उनकी तो बात ही निराली है, मजाल जो सब्जी

का कच्चापन बाहर दिखाई दे।

ऐसे ही एक कार्यक्रम में चमचारूपी जग-प्रसिद्ध कवयित्री से मुलाकात हुई, मुझे देखते ही वह टूटकर गले मिली और मक्खन लगाती बोली, "आप तो सचमुच गजब हैं गजब, मेरा मन करता है, हमेशा आपको पढ़ती रहूँ, मैं आपके जैसा बनना चाहती हूँ, आप मेरा आदर्श हैं दी।" लिहाजा कोई मुझे इतना पढ़ चुका है कि अपना आदर्श मान रहा है, और ये मुआ दी शब्द तो हम पचास साल की महिलाओं को जवान कर डालता है,… मैं प्रशंसा के समंदर में गोते लगा-लगाकर खुश हो रही थी कि वह फिर बोली, "आपको मेरे कविता-संग्रह की भूमिका लिखनी है, साथ ही मेरी मदद करनी है कि मैं कौन-कौन सी कविताएँ किताब में रख सकती हूँ। मेरी कुछ कविताओं का संशोधन भी कर देंगी आप, तो मेरी भी किताब निकल जाएगी, आप बहुत अच्छा लिखती हैं।" मैं मक्खन-मलाई में इस कदर भर गई थी कि जरा भी उठने की कोशिश करती तो फिसलकर गिरती। और कोई निकलेगा भी क्यों, कहाँ इतना सम्मान मिलता है ?, सोचिए तो खुद हनुमानजी अपनी शक्तियों को भूल गए थे तो मैं कैसे जान पाती मेरे भीतर एक समीक्षक और संपादक भी पल रहा है ?…

सच मानिए तो चमचों की कमी सबको महसूस होती है, हुनर तो हर आदमी में होते ही हैं, लेकिन अगर चमचे न हों तो आदमी के भीतर पड़े हुनर को हिलाए-डुलाएगा कौन, और कौन बाहर लाकर दुनिया को दिखाएगा? जिनके अपने खरीदे चमचे हैं, उनकी तो बात ही निराली है, मजाल जो सब्जी का कच्चापन बाहर दिखाई दे।

मैं उससे इस कदर प्रभावित हुई कि अपना उपन्यास भूलकर उसकी व्हाट्सपी कविताओं की पांडुलिपि को सहेजने लायक बनाने में जुट गई, किताब आई, खूब छाई, लेकिन मेरी योग्य शिष्या विमोचन के समय अपनी गुरु को ही बुलाना भूल गई।

दुकानदार की बातें याद आ रही थीं, कुछ चमचे सचमुच बरतन खाली होने तक ही बने रहते हैं। ये हुनरमंद चमचे काम पूरा होने तक ही मक्खन लगाते हैं।

यह कहना गलत तो नहीं है, नवगीत, नई कहानी, नई हिंदी लिखने वालों की चमचागिरी ने कालीदास, महादेवी और निराला सरीखे भरे-पूरे बरतनों को भी खराब करने में कसर नहीं छोड़ी है।

२०६/३, गली नंबर-५, पद्म नगर,
किशन गंज, दिल्ली-११०००७
दूरभाष : ८८६०५९६९३७

समझौता

लघुकथा

● शोभना श्याम

सुबह से लॉन में ड्यूटी बजाता धूप का टुकड़ा अब एक कोने में सिकुड़कर सुस्ता ही रहा था कि शाम के आने की खबर मिली तो लॉन में लगे पेड़ की फुनगी पर जा बैठा। पूरा दिन अपनी बारी का इंतजार करती शिप्रा बार-बार अपने मन में उस संकल्प को दोहरा रही थी कि आज इस नौकरी के लिए वह किसी भी समझौते से पीछे नहीं हटेगी।

छह महीने हो चुके हैं नौकरी के लिए ठोकर खाते, घर के हालात बंद से बदतर होते जा रहे हैं। इस बीच कई 'शुभचिंतकों' से गाहे-बगाहे थोड़ा 'ओपन' होने की सलाह भी मिलती रही है। एक-दो ने यहाँ तक कह दिया कि इस पुरानी हिंदी फिल्म की हीरोइन की तरह सती-सावित्री की इमेज से बाहर निकल आए तो नौकरियाँ चलकर उस तक आएँगी। और यह भी कि कोई खा नहीं जाएगा उसे।

आखिरकार आज अपने संस्कारों को घर के बुरे हालात का वास्ता देकर जबरन अपनी अलमारी में बंद कर, डीप नेक की टॉप और मिनी स्कर्ट पहनकर इस इंटरव्यू के लिए आई शिप्रा का दिल प्रार्थियों की बड़ी संख्या देखकर डूबने लगा था, लेकिन उसने मन ही अपने कपड़ों और मैकअप को परखा, समझौते के संकल्प को दोहराया। 'शुभचिंतकों' के अनुसार अपनी 'लो-मिडिल क्लास की मानसिकता' को तो पहले ही घर पर छोड़कर आई थी, अत: एक आश्वस्ति पूरा दिन उसका हाथ पकड़े उस के साथ बैठी उसकी बारी का इंतजार करती रही।

आखिरकार बिल्कुल अंत में उसका नंबर आया तो उसने पूरे विश्वास से अंदर प्रवेश किया, मोहक अदाओं के साथ इंटरव्यू में पूछे गए सारे प्रश्नों के उत्तर दिए। इतने में इंटरव्यू लेनेवाले दो आदमियों में से एक उठकर बाहर चला गया और दूसरा व्यक्ति ऑफिस में उसके काम के बारे में बताता हुआ उठकर उसकी कुरसी के ठीक सामने आकर मेज पर बैठ गया। शिप्रा अपनी धुकधुकी पर नियंत्रण करते हुए खुद को संयत रखने की पूरी कोशिश कर रही थी, अपने घटिया संकल्प को भी मन-ही-मन दोहराती जा रही थी, यकायक उस व्यक्ति ने बड़ी अजीब तरह से अपना हाथ उसके कंधे की ओर बढ़ाया, अब तक शिप्रा शायद समझ चुकी थी कि उसका नंबर सबसे आखिर में क्यों आया, सर्द मौसम के बावजूद उसके माथे पर पसीना छलक आया, वह एक झटके में उठी और सीधा बिल्डिंग से बाहर दौड़ती चली गई।

बाहर आकर शिप्रा हैरान थी कि जिन संस्कारों को वह घर में बंद कर आई थी, वे यहाँ कैसे पहुँच गए और सारा दिन मन में बैठा संकल्प कब मुँह चुराकर भाग गया।

एच. २५६, ११ एवेन्यू, गौर सिटी
गौतमबुद्ध नगर, नोएडा वेस्ट-२०१३१८
दूरभाष : ९९५३२३५८४०
shobhanashubhi@gmail.com

बाल-कहानी

सोनी के चाचाजी

● संजीव ठाकुर

सुपरिचित कवि-कथाकार तथा बाल साहित्यकार। प्रमुख कृतियाँ हैं–'नौटंकी जा रही है', 'फ्रीलांस जिंदगी', 'अब आप अली अनवर से···' (कहानी-संग्रह), 'झौआ बैहार' (लघु उपन्यास) तथा 'इस साज पर गाया नहीं जाता' (कविता-संग्रह)। 'बड़ों का बचपन' तथा 'चुन्नू-गुन्नू का स्कूल' बाल साहित्य की चर्चित कृतियाँ हैं।

सुबह होते ही वह बिस्तर से नीचे उतरती और आँगन में आ जाती। जंजीर लगे दरवाजे को धकेल उसमें अपना सिर अड़ा देती। "चाचा पास!···चाचा पास!"···तब तक चिल्लाती रहती, जब तक उसकी दादी चाबी लाकर गेट नहीं खोल देतीं। गेट खुलते ही अपने नन्हे पैरों से करीब सौ कदम चलकर पहुँच जाती अपने चाचाजी के घर। अब वहाँ तूफान मचाती—खट-खट-खट-खट···ग्रिल की कुंडी तब तक खटखटाती रहती, जब तक उसके चाचाजी नींद से जगकर ताला खोल उसे गोद में उठा नहीं लेते।

"आ गई सोनी?" चाचाजी उसे चूमते हुए पूछते।

"आँ!" सोनी जवाब देती।

सवा-डेढ़ साल की सोनी। सत्रह-अठारह के उसके चाचाजी। पड़ोस में रहने वाले। खून का कोई रिश्ता नहीं। नेह का अजीब रिश्ता। ऐसा नेह कि चाचाजी न हों तो खाना-पीना सब बंद! खोई-खोई रहती। एक बार तो चाचाजी जिस रास्ते गए थे, उसी रास्ते बहुत दूर तक अकेली चली गई थी। किसी ने पहचानकर उसे घर पहुँचाया था। चाचाजी घर में हों तो सुबह से दोपहर वहीं डेरा डाले रहती। वहीं नाश्ता-खाना कर लेती और जरूरत के हिसाब से पेशाब-पाखाना भी! मारवाड़ी परिवार का होने के कारण उसकी माँ तो घर से नहीं निकलतीं, दादी आतीं और उसे धोते-पोंछते बड़बड़ाती रहतीं। लेकिन सोनी को कोई फर्क नहीं पड़ता। उसकी दादी चली जातीं, वह वहीं जमी रहती।

चाचाजी पास के शहर में पढ़ते थे। हफ्ता-दस दिन में आते रहते। कॉलेज की लंबी छुट्टियों में तो घर ही रहते। जब घर रहते, सोनी का वही रुटीन रहता। चाचाजी कहते, "सोनी! घर जाओ?"

"नईं···" वह जोर देकर कहती।

"अच्छा सोनी! चाचा कहाँ हैं?" चाचाजी पूछते।

सोनी अपनी नन्हीं हथेली चाचाजी की छाती पर रख देती।

"बेटू कहाँ है?" चाचाजी पूछते।

सोनी अपनी हथेली अपनी छाती पर रख लेती।

चाचा कहते, "बेटू, हम बाजी (बाजार) जाएँगे।" सोनी कहती, "अम भी!"

सोनी ने कहीं से 'पिल्ली', 'कुतिया' जैसी गालियाँ सीख ली थीं। उसके मुँह से उन्हें सुनना बड़ा अच्छा लगता था। चाचाजी अपने छोटे भाई-बहनों के साथ होते तो मनोरंजन का यह सिलसिला शुरू कर देते। बेवजह सोनी के गाल पर हलकी चपत लगा देते। सोनी कहती, "माऊँगा।" फिर चपत लगाने पर कहती, "पिल्ली!"···"कुतिया!"

"चाचा को गाली देगी?" नकली गुस्सा दिखाते हुए चाचाजी फिर एक चपत लगा देते। सोनी रोने लगती और अपना सिर फर्श पर पटकने लगती। तब चाचाजी उसे प्यार से उठाते और पुचकारते। बहुत प्रलोभन देने पर भी वह नहीं मानती तो चाचाजी रूठने का अभिनय करने लगते। तब वह भावुक होकर कह पड़ती, "चाचाजी!"

कभी-कभी चुप कराने के लिए चाचाजी उसे उठाते और टेप रिकॉर्डर के पास ले जाकर कहते, "बाजा! बजाओ?" टेप रिकॉर्डर का बटन दबाकर वह रोना भूल जाती! नॉर्मल हो जाती। मनोरंजन को जारी रखने के लिए चाचाजी फिर से उसे एक चपत लगाते, वह फिर रोने लगती। टेप रिकॉर्डर का बटन दबाने को कहते, चुप हो जाती! सोनी का रोना और चुप हो जाना करीब-करीब टेप रिकॉर्डर के ऑन-ऑफ होने जैसा ही था। वह चाचाजी से कभी नाराज नहीं होती थी। नाराज होकर घर आना तो उसने कभी छोड़ा ही नहीं था।

एक बार सोनी के मामाजी राजस्थान से मिठाइयाँ लेकर आए थे। सोनी तब करीब दो साल की हो गई थी। वह चाचाजी के घर ही बैठी थी। चाचाजी के भाई-बहन भी वहीं बैठे थे। सोनी के मामाजी के बारे में ही बात हो रही थी। मारवाड़ी लड्डुओं के स्वाद की चर्चा भी होने लगी थी। इसी बीच चाचाजी ने यों ही सोनी से कह दिया, "सोना बाई! मामा आई? आडू (लड्डू) लाई?"

पता नहीं, सोनी के मन में क्या आया। वह उठकर वहाँ से चली

गई। उसका मन घर जाने का होगा—यह सोचकर किसी ने कुछ कहा भी नहीं। लेकिन थोड़ी ही देर में वह फिर आ गई। पास आने पर चाचाजी ने देखा कि उसने अपनी फ्रॉक के अगले हिस्से को ऊपर की ओर मोड़ रखा है। छूने पर वहाँ गोल-गोल चीज नजर आई। उसकी फ्रॉक को सीधा कर देखा तो वहाँ तीन-चार लड्डू थे! चाचाजी के घर में सबको बहुत आश्चर्य हुआ। "सोनी आड़ू लाई है?" चाचाजी ने पूछा। सोनी ने जवाब दिया, "आँ!"

बाद में उसकी दादी से पता चला कि उस रोज वह जो चाचाजी के घर से उठकर गई तो सीधे दादी के पास गई और "चाचा आड़ू, चाचा आड़ू" की रट लगाने लगी। अपनी फ्रॉक में अपने चाचाजी के लिए 'आड़ू' लेकर फौरन चाचा के घर चली गई!

सोनी की यह बात चाचाजी कभी नहीं भूल पाए। सोनी को ही कहाँ भूल पाए!

एस.एफ.-२२, सिद्ध विनायक अपार्टमेंट,
अभय खंड-३, इंदिरापुरम्,
गाजियाबाद-२०१०२०
skthakur67@gmail.com

घाटी का गाँव

कविता

• रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'

हिम वर्षा

श्वेतांबराएँ
ये झुंड-झुंड परियाँ
कहाँ से उतर रही हैं
पर्वत की चोटियों
घाटियों/वृक्षों पर!

पत्ती-पत्ती से लिपटतीं
शाखों पर फूलतीं/इठलातीं
पंख फैलाती जा रही हैं
इस छोर से उस छोर तक।

नीचे फाल का चमकीला वक्ष
हिम-जड़ित हो गया है,
अचानक इस मौसम में न जाने
क्यों सो गया है
घाटी का गाँव!

कोई नहीं जानता
हवा
इसी मौसम में
क्यों हो गई है चंचल!

झरने दो आसमान
ऊपर धुन रहा है कोई कपास
इसी से बनेंगे
बिछेंगे धरती पर
हरे-हरे कालीन!
उछालने दो इसको/ये यात्री हैं
बर्फीले गोले
ये ही तो
सूरज के साथी हैं।

हँसता गाता मेरा गाँव

ये ऊँची-नीची पहाड़ियाँ
घाटियाँ जंगल
बीच से गुजरती, लहराती नदी
दूर कहीं झरता झरना
ये सब मेरे हैं
रक्त की हर बूँद में
बह रहे हैं ये
सब मेरे हैं!

गाँव के बाहर
आमों के गंधित बगीचे
सरसों का पीला दुशाला ओढ़े
ठंडी हवा में नाचते
फसलों के खेत
रमे हैं हर क्षण
मेरी साँसों में।
शहर!
तुम इधर मत बढ़ो
गंदे नाले लेकर!

मत काटो ये पेड़
मत फेंको अपना धुआँ!

तुम्हारे कल-कारखाने
नहीं उगते धरती से
मत करो हवा को कैद
घुटने लगी हैं साँसें!
हरे-भरे खेतों के साथ
आ सको तो आओ मेरे गाँव।

शांति तुम्हें नहीं लगती प्यारी
धूप हवा पानी के बीच
भरते हो बारूद!
ओ शहर!
सभ्यता का खोल ओढ़े
कुसंस्कृति की विभीषिका
रचते हो तुम!

ऋतुओं की खुली हवा में
पला है मेरा गाँव,
तुम्हें क्यों सुहाता नहीं
शांति से जीता
हँसता-गाता
मेरा गाँव/बोलो शहर!
क्यों भरते हो जीवन में जहर?

दंभ और मद के मेले में

हम तुमको कैसे बतलाएँ
क्या-क्या पाप किए?
जो भी आया 'शब्द' माँगता
हमने मौन दिया।
'अर्थ' बन गए उसके आँसू,
विष आकंठ पिया।
विश्वासों की झोली खाली
कर, अभिशाप लिये।
हम तुमको कैसे बतलाएँ,
क्या-क्या पाप किए!

सत् को असत् बताया हमने,
दिन को रात कहा।
वाणी मैली हुई झूठ से,
खाली हाथ रहा।
छिपते फिरे सदा सूरज से
तम की छाप लिये।
हम तुमको कैसे बतलाएँ
क्या-क्या पाप किए।

अगणित फूल बने मालाएँ
पर सिर नहीं झुका।
माटी भी दौड़ी मिलने को
निर्झर नहीं रुका।
दंभ और मद के मेले में
क्रय संताप किए।
हम तुमको कैसे बतलाएँ,
क्या-क्या पाप किए?

सी-७१२, गरिमा विहार
सेक्टर-३५, नोएडा-२०१३०७
दूरभाष : ९९१०५१३९९६

ताबूतसाज

● **अलेक्जेंडर पुश्किन**

ताबूतसाज आद्रियान प्रोखोरोव के घरेलू सामान की आखिरी चीजें भी गाड़ी पर लद गईं। गाड़ी में जुते मरियल घोड़ों की जोड़ी ने चौथी बार सस्मान्नाया गली से निकीत्स्काया गली तक का चक्कर लगाया, जहाँ ताबूतसाज अपने समूचे घर-बार के साथ जा बसा था। दुकान में ताला डालकर उसने दरवाजे पर एक तख्ती लगा दी कि यह घर बिक्री या किराए के लिए खाली है और अपने नए निवास-स्थान की ओर पैदल ही चल पड़ा, लेकिन जब वह उस नए पीले घर के निकट पहुँचा, जिसे खरीदने के लिए कितनी मुद्दत से उसके मन में चाह थी, और जिसे अब वह खासी रकम देकर खरीद पाया था, तो वह यह जानकर हैरान रह गया कि अब उसके दिल में कोई उमंग या खुशी नहीं है। अनजानी दहलीज लाँघकर नई जगह में पाँव रखते समय, जहाँ अभी तक सबकुछ अस्त-व्यस्त और उल्टा-पुल्टा था, उसके मुँह से उस जर्जर दड़बे के लिए एक आह निकल गई, जिसे छोड़कर वह आया था। अठारह साल उसने वहाँ बिताए थे और व्यवस्था इतनी सख्त थी कि एक तिनका भी इधर से उधर नहीं हो सकता था।

उसने अपनी दोनों लड़कियों और घर की नौकरानी को सुस्त कहकर डाँटा और खुद भी उनका हाथ बँटाने में जुट गया। जल्द ही घर करीने से सज गया—देवमूर्ति का स्थान, चीनी के बरतनों की अलमारी, मेज, सोफे और पलंग, ये सब पिछले कमरे के विभिन्न कोनों में अपनी-अपनी जगह पर जमा दिए गए। घर के मालिक का सामान, हर रंग और माप के ताबूत, मातमी लबादों-टोपियों और मशालों से भरी अलमारियाँ रसोई और बैठक में जँचा दी गईं। बाहर दरवाजे के ऊपर एक साइन बोर्ड लटका दिया गया, जिस पर उल्टी मशाल हाथ में लिये हृष्ट-पुष्ट आमूर की तसवीर बनी थी और उसके नीचे लिखा था—'सादे और रंगीन ताबूत यहाँ बेचे और तैयार किए जाते हैं, किराए पर दिए जाते हैं और पुराने ताबूतों की मरम्मत भी की जाती है।' उसकी लड़कियाँ अपने कमरे में आराम करने चली गईं और आद्रियान ने अपनी नई जगह का मुआयना करने के बाद खिड़की के पास बैठते हुए समोवार गरम करने का आदेश दिया।

ताबूतसाज का स्वभाव उसके धंधे के साथ पूर्णतया मेल खाता था। आद्रियान प्रोखोरोव खामोश और मुहर्रमी सूरतवाला आदमी था। वह बिरले ही अपनी खामोशी तोड़ता था और सो भी उस समय, जब वह अपनी लड़कियों को निठल्लों की भाँति खिड़की से बाहर झाँकते और राह चलतों पर नजर डालते देखता या उस समय जब वह अपने हाथ की बनी चीजों के लिए उन अभागों से (या भाग्यशालियों से, मौके के अनुसार जैसा भी हो) कसकर दाम माँगता था, जिन्हें उन चीजों की जरूरत आ पड़ती थी। सो, आद्रियान चाय का सातवाँ खयालों में डूबा हुआ था।

यकायक किसी ने बाहर के दरवाजे को तीन बार खटखटाया। ताबूतसाज के विचारों का ताँता टूट गया। वह चौंककर चिल्लाया, "कौन है?" तभी दरवाजा खुला और एक आदमी, शक्ल-सूरत से जिसे तुरंत पहचाना जा सकता था कि यह कोई जर्मन दस्तकार है, भीतर कमरे में चला आया और ताबूतसाज के निकट आकर प्रसन्न मुद्रा में खड़ा हो गया। "मुझे माफ करना, पड़ोसी महोदय!" टूटी-फूटी रूसी भाषा में उसने कुछ इतने अटपटे अंदाज से बोलना शुरू किया कि उस पर आज भी हम अपनी हँसी नहीं रोक पाते हैं। "मुझे माफ करना, अगर मेरे आने से आपको काम में कोई बाधा हुई हो, लेकिन आपसे जान-पहचान करने के लिए मैं बड़ा उत्सुक हूँ। मैं मोची हूँ। गात्तिलब शूल्त्स मेरा नाम है। सड़क के उस पार ठीक सामनेवाले उस छोटे से घर में रहता हूँ, जिसे आप अपनी खिड़की से देख सकते हैं। कल मैं अपने विवाह की रजत जयंती मना रहा हूँ और मैं आपको तथा आपकी लड़कियों को आमंत्रित करता हूँ कि मेरे यहाँ आएँ और प्रीतिभोज में शामिल हों।"

ताबूतसाज ने सिर झुकाकर निमंत्रण स्वीकार कर लिया और मोची से बैठने तथा चाय पीने का अनुरोध किया। मोची बैठ गया। वह कुछ इतने खुले दिल का था कि शीघ्र ही दोनों अत्यंत घुल-मिलकर बातें करने लगे।

"कहिए, आपके धंधे का क्या हाल-चाल है?" आद्रियान ने पूछा।

शूल्त्स ने जवाब दिया, "कभी अच्छा, कभी बुरा, सब चलता है। यह बात जरूर है कि मेरा माल आपसे भिन्न है। जो जीवित हैं, वे बिना जूतों के भी रह सकते हैं, लेकिन मरने के बाद तो ताबूत के बिना काम चल नहीं सकता।"

"बिल्कुल ठीक कहते हो," आद्रियान ने सहमति प्रकट की, "लेकिन एक बात है। माना कि अगर जीवित आदमी के पास पैसा नहीं है, तो वह बिना जूतों के रह जाए और तुम्हें टाल जाए, लेकिन मृत भिखारी के साथ ऐसी बात नहीं। बिना कुछ खर्च किए ही वह ताबूत पा जाता है।" इस तरह बातचीत का यह सिलसिला कुछ देर और चलता रहा। आखिर मोची उठा और अपने निमंत्रण को एक बार फिर दोहराते हुए उसने ताबूतसाज से विदा ली।

अगले दिन, ठीक दोपहर के समय ताबूतसाज और उसकी लड़कियाँ नए खरीदे हुए घर के दरवाजे से बाहर निकले तथा अपने पड़ोसी से मिलने चल दिए।

मोची का छोटा सा कमरा अतिथियों से भरा था। उनमें अधिकांश जर्मन दस्तकार, उनकी पत्नियाँ और ऐसे युवक मौजूद थे, जो उनकी

शागिर्दी कर रहे थे। रूसी सरकारी कारिंदों में से केवल एक ही वहाँ मौजूद था, पुलिस का सिपाही यूर्को। जाति का वह चूखोन था और बावजूद इसके कि उसका पद निम्न स्तर का था, मेजबान उसकी आवभगत में खासतौर से जुटा था। पच्चीस साल से पूरी फरमाबरदारी के साथ वह अपनी नौकरी बजा रहा था। १८१२ के अग्निकांड ने प्राचीन राजधानी को ध्वस्त करने के साथ-साथ उसकी पीली-संतरी चौकी को भी खाक में मिला दिया था, लेकिन दुश्मन के दुम दबाकर भागते ही उसकी जगह पर एक नई संतरी चौकी का उदय हो गया—सलेटी रंग की और सफेद यूनानी ढंग के पायों से अलंकृत, और सिर से पाँव से लैस यूर्को उसके सामने अब फिर, पहले की ही भाँति, इधर से उधर गश्त लगाने लगा।

निकीत्स्की दरवाजे के इर्द-गिर्द बसे सभी जर्मनों से वह परिचित था और उनमें से कुछ तो ऐसे थे, जो इतवार की रात उसकी संतरी चौकी में ही काट देते थे। आद्रियान भी उससे जान-पहचान करने में पीछे नहीं रहा और जब अतिथियों ने मेज पर बैठना शुरू किया, तो ये दोनों एक-दूसरे के साथ बैठे। शूल्त्स, उसकी पत्नी और उनकी सत्रह वर्षीय लड़की लोत्खेन अपने अतिथियों के साथ भोजन में शामिल होते हुए भी परोसन और रकाबियों में चीजें रखने में बावर्ची को मदद दे रही थीं। बीयर खुलकर बह रही थी। यूर्को अकेले ही चार के बराबर खा-पी रहा था। आद्रियान भी किसी से पीछे नहीं था। उसकी लड़कियाँ बड़े सलीके से बैठी थीं। बातचीत का सिलसिला, जो जर्मन भाषा में चल रहा था, हर घड़ी जोर पकड़ रहा था।

सहसा मेजबान ने सबका ध्यान अपनी ओर खींचा और कोलतार पुती एक बोतल का कॉर्क खोलते हुए रूसी भाषा में जोरों से चिल्लाकर कहा, "नेकदिल लूईजा की सेहत का जाम!" कॉर्क के निकलते ही तरल शैंपेन का फेन उड़ने लगा। मेजबान ने अपनी अधेड़ जीवनसंगिनी का ताजा रंगतदार चेहरा चूमा और अतिथियों ने हल्ले-गुल्ले के साथ नेक लुईजा के स्वास्थ्य का जाम पिया। इसके बाद एक दूसरी बोतल का कॉर्क खोलते हुए मेजबान चिल्लाया, "प्यारे अतिथियों के स्वास्थ्य का जाम।" और अतिथियों ने बदले में धन्यवाद देते हुए फिर गिलास खाली कर दिए। इसके बाद स्वास्थ्य कामना के लिए गिलास खनकाने और खाली करने का जैसे ताँता लग गया। जितने अतिथि थे, एक-एक करके उन सबकी सेहत के जाम पिए गए। फिर मॉस्को और करीब एक दर्जन छोटे-मोटे जर्मन नगरों के नाम पर गिलास खनके, फिर सब धंधों के नाम पर एक साथ और उसके बाद अलग-अलग करके गिलास खाली हुए और इन धंधों में काम करनेवाले कारीगरों तथा सभी नए शागिर्दों के स्वास्थ्य के नाम बोतलों के कॉर्क खुले।

आद्रियान ने इतनी अधिक पी कि उस पर भी ऐसा रंग सवार हुआ कि उसने सचमुच एक अनूठे से जाम का प्रस्ताव किया। अचानक एक हट्टे-कट्टे अतिथि ने, जो डबलरोटी-बिस्कुट बनाने का काम करता था, अपना गिलास उठाते हुए चिल्लाकर कहा, "उन लोगों के स्वास्थ्य के लिए, जिनकी खातिर हम काम करते हैं।" इस कामना का भी पहले की भाँति सभी ने खुशी से स्वागत किया। अतिथि एक-दूसरे के सामने झुक-झुककर गिलास खाली करने लगे—दर्जी मोची के सामने, मोची दर्जी के सामने, नानबाई इन दोनों के सामने और सभी अतिथि एक साथ मिलकर नानबाई के सामने। एक-दूसरे के सामने झुककर पारस्परिक अभिवादन का यह सिलसिला अभी चल ही रहा था कि यूर्को ने ताबूतसाज की ओर मुँह करते हुए चिल्लाकर कहा, "आइए, पड़ोसी! आकर मृत असामियों के स्वास्थ्य का जाम पिएँ।" इस पर सभी हँस पड़े, केवल ताबूतसाज चुप रहा। उसे यह बुरा लगा और उसकी भौंहें चढ़ गईं, लेकिन इधर किसी का ध्यान नहीं गया। अतिथियों का दौर चलता रहा और जब वे मेज से उठे, तो उस समय रात की आखिरी प्रार्थना के लिए गिरजे की घंटियाँ बज रही थीं।

काफी रात ढल जाने पर अतिथि विदा हुए। अधिकांश नशे में धुत्त थे। हट्टा-कट्टा नानबाई और जिल्दसाज, पुलिस के सिपाही की दोनों बगलों में अपने हाथ डाले उसे उसकी चौकी की ओर ले चले। ताबूतसाज भी अपने घर लौट आया था। वह गुस्से से भरा था और उसका दिमाग अस्त-व्यस्त सा हो रहा था। आखिर उसने सोचा, 'मेरा धंधा क्या अन्य धंधों से कम सम्मानपूर्ण है? ताबूतसाज और जल्लाद क्या भाई-भाई हैं? क्या उन्हें एक साथ रखा जा सकता है? तो फिर इन विदेशियों के हँसने में क्या तुक थी? वे क्यों हँसे? क्या वे ताबूतसाज को रंग-बिरंगे कपड़ोंवाला विदूषक समझते हैं? फिर मजा यह कि मैं इन सबको गृह-प्रवेश के प्रीतिभोज में बुलाने जा रहा था। ओह नहीं, मैं ऐसी बेवकूफी नहीं करूँगा। मैं उन्हें ही बुलाऊँगा, जिनके लिए मैं काम करता हूँ—अपने ईसाई मृतकों को।'

"ओह मालिक!" नौकरानी, जो उस समय ताबूतसाज के पाँव से जूते उतार रही थी, ने कहा, "जरा सोचिए तो सही कि यह आप क्या कर रहे हैं? सलीब का चिह्न बनाइए। कहीं मृतकों को भी गृह-प्रवेश के लिए बुलाया जाता है? कितनी भयानक बात है यह?"

"ईश्वर साक्षी है, यह मैं जरूर करूँगा," आद्रियान ने कहना जारी रखा, "और कल ही। ऐ मेरे असामियो, मेरे शुभचिंतको! कल रात भोज में शामिल होकर मुझे सम्मानित करना। जो कुछ रूखा-सूखा मेरे पास है, सब तुम्हारा ही दिया हुआ तो है।"

इन शब्दों के साथ ताबूतसाज ने बिस्तर की शरण ली और कुछ ही देर बाद खर्राटे भरने लगा।

सुबह जब आद्रियान की आँखें खुलीं, तो उस समय काफी अँधेरा था। सौदागर की विधवा त्रूखिना रात में ही मर गई थी और उसके कारिंदे द्वारा भेजे गए एक आदमी ने आकर इसकी खबर दी थी। वह घोड़े पर सवार तेजी से उसे दौड़ाता आया था। ताबूतसाज ने वोदका के लिए दस कोपेक उसे इनाम में दिए, झटपट कपड़े पहने, एक गाड़ी पकड़ी और उस पर सवार होकर राज्गुल्याई पहुँचा। मृतक के घर के दरवाजे पर पुलिसवाले पहले से तैनात थे और सौदागर इधर से उधर इस तरह मँडरा रहे थे, जैसे सड़ी लाश की गंध पाकर कौवे मँडराते हैं। शव मेज पर रखा था, चेहरा मोमियाई मालूम होता था, लेकिन नाक-नक्श अभी बिगड़ा नहीं था। सगे-संबंधी, अड़ोसी-पड़ोसी और नौकर-चाकर उसके चारों ओर खड़े थे। खिड़कियाँ सभी खुली थीं, मोमबत्तियाँ जल रही थीं और पादरी मृतक स्त्री के भतीजे के पास पहुँचा। वह युवक सौदागर था और फैशनदार कोट पहने था। आद्रियान ने उसे सूचना दी कि ताबूत,

मोमबत्तियाँ, ताबूत ढकने का कफन और अन्य मातमी साज-सामान बहुत ही बढ़िया हालत में तुरंत जुटाए जाएँगे। यों ही, लापरवाही से, मृतक के उत्तराधिकारी ने उसे धन्यवाद दिया और कहा कि दामों के सवाल पर वह झिक-झिक नहीं करेगा और सबकुछ खुद ताबूतसाज के ईमान और नेकनीयती पर पूर्णतया छोड़ देगा।

ताबूतसाज ने अपनी आदत के अनुसार शपथ लेकर कहा कि वह एक पाई भी ज्यादा वसूल नहीं करेगा और इसके बाद कारिंदे ने उसकी ओर और उसने कारिंदे की ओर भेद भरी नजर से देखा और सामान तैयार करने के लिए गाड़ी पर सवार होकर घर लौट आया। दिन भर वह इसी तरह राज्यगुल्याई और निकीत्स्की दरवाजे के बीच भाग-दौड़ करता रहा। कभी जाता, कभी वापस लौटता। शाम तक उसने सभी कुछ ठीक-ठाक कर दिया और गाड़ी को विदा कर पैदल ही घर लौटा। चाँदनी रात थी। सही-सलामत वह निकीत्स्की दरवाजे पहुँच गया। गिरजे के पास से गुजरते समय हमारे मित्र यूर्को ने उसे ललकारा, लेकिन जब देखा कि अपना ही ताबूतसाज है, तो उसका अभिवादन किया। देर काफी हो गई थी। जब वह अपने घर के पास पहुँचा तो यकायक उसे ऐसा लगा, मानो कोई दरवाजे के पास रुक गया है और दरवाजे को खोलकर अंदर जाकर गायब हो गया है। 'यह क्या तमाशा है?' आद्रियान अचरज से भर उठा, 'इस समय भला कौन मुझसे मिलने आ सकता है? कहीं कोई चोर तो नहीं है? कहीं ऐसा तो नहीं कि कोई सैलानी युवक हो, जो रात को मेरी नन्ही निठल्ली लड़कियों से साँठ-गाँठ करने आया हो?' एक बार तो उसने यहाँ तक सोचा कि अपने मित्र यूर्को को मदद के लिए बुला लाए। तभी एक और व्यक्ति दरवाजे के पास पहुँचा और भीतर पाँव रख ही रहा था कि ताबूतसाज को घर की ओर तेजी से लपकते हुए देखकर वह निश्चल खड़ा हो गया और अपने तिरछे टोप को उठाकर अभिवादन करने लगा।

आद्रियान को ऐसा लगा, जैसे उसने यह शक्ल कहीं देखी है, लेकिन जल्दी में उसे ध्यान से नहीं देख सका। हाँफते हुए बोला, "क्या आप मुझसे मिलने आए हैं? चलिए, भीतर चलिए।"

"तकल्लुफ के फेर में न पड़ें, मित्र," अनजान ने थोथी आवाज में कहा, "आगे-आगे आप चलिए और अपने अतिथियों का पथ-प्रदर्शन कीजिए।"

आद्रियान खुद इतना उतावला था कि चाहने पर भी वह तकल्लुफ निभा न पाता। उसने दरवाजा खोला और घर की सीढ़ियों पर पाँव रखा। दूसरा भी उसके पीछे-पीछे चला। आद्रियान को ऐसा लगा कि उसके कमरों में लोग टहल रहे हैं। 'हे भगवान्, यह सब क्या तमाशा है?' उसने सोचा, और लपककर भीतर पहुँचा। उसके पैर लड़खड़ा गए। कमरा प्रेतों से भरा था। खिड़की में से चाँदनी भीतर पहुँच रही थी, जिसमें उनके पीले-नीले चेहरे, लटके हुए मुँह, धुँधली अधखुली आँखें और चपटी नाकें दिखाई दे रही थीं। आद्रियान ने भय से काँपकर पहचाना कि ये सब वही लोग हैं, जिनको दफनाने में उसने योग दिया था और वह, जो उसके साथ भीतर आया था, वही ब्रिगेडियर था, जिसे मूसलधार वर्षा के बीच दफनाया गया था। वे सब पुरुष और स्त्रियाँ भी ताबूतसाज के चारों ओर इकट्ठे हो गए और सिर झुका-झुकाकर अभिवादन करने लगे।

भाग्य का मारा केवल एक ही ऐसा था, जो कुछ दिन पहले मुफ्त दफनाया गया था, वही पास नहीं आया। बेबसी की मुद्रा बनाए वह सबसे अलग कमरे के एक कोने में खड़ा था, मानो अपने फटे हुए चिथड़ों को छिपाने का प्रयत्न कर रहा हो। उसके सिवा अन्य सभी बढ़िया कपड़े पहने थे। स्त्रियों के सिरों पर फीतेदार टोपियाँ थीं, स्वर्गवासी अफसर वरदियाँ डाले थे, लेकिन उनकी हजामतें बढ़ी थीं, सौदागरों ने एक-से-एक बढ़िया कपड़े छाँट कर पहने थे। "देखो, प्रोखोरोव।" सबकी ओर से बोलते हुए ब्रिगेडियर ने कहा, "हम सब तुम्हारे निमंत्रण पर अपनी-अपनी कब्रों से उठकर आए हैं। केवल वे, जो एकदम असमर्थ हैं, जो पूरी तरह गल-सड़ चुके हैं, नहीं आ सके। इसके अलावा उन्हें भी मन मसोसकर रह जाना पड़ा, जो केवल हड्डियों का ढेर भर रह गए हैं और जिनका मांस पूरी तरह गल चुका है, लेकिन इनमें से भी एक अपने आप को नहीं रोक सका। तुमसे मिलने के लिए वह इतना बेचैन था कि कुछ न पूछो।"

उसी समय एक छोटा कंकाल कोहनियों से सबको धकेलता आगे निकल आया और आद्रियान की ओर बढ़ने लगा। उसका मांसहीन चेहरा आद्रियान की ओर बड़े चाव से देख रहा था। तेज हरे और लाल रंग की धज्जियाँ उसके ढाँचे से जहाँ-तहाँ लटकी थीं, जैसे बाँस से लटका दी जाती हैं और उसके घुटने से नीचे की हड्डियाँ घुड़सवारी के ऊँचे जूतों के भीतर इस तरह खटखटा रही थीं, जैसे खरल में मूसली खटखटाती है। "मुझे पहचाना नहीं, प्रोखोरोव?" कंकाल ने कहा, "गार्द के भूतपूर्व सार्जेंट प्योत्र पेत्रोविच मुरील्किन को भूल गए, जिसके हाथ तुमने 1799 में अपना पहला ताबूत बेचा था। वही, जिसे तुमने बलूत का बताया था, लेकिन निकला वह चीड़ की खपच्चियों का।"

यह कहते हुए आद्रियान का आलिंगन करने के लिए कंकाल ने अपनी बाँहें फैला दीं। अपनी समूची शक्ति बटोरकर आद्रियान चिल्लाया और कंकाल को उसने पीछे धकेल दिया। प्योत्र पेत्रोविच लड़खड़ाकर फर्श पर गिर पड़ा, बिखरी हुई हड्डियों का ढेर मात्र। मृतकों में विक्षोभ की एक लहर दौड़ गई। अपने साथी के अपमान का बदला लेने के लिए वे आद्रियान की ओर लपके—चीखते-चिल्लाते, कोसते और धमकियाँ देते।

अभागे मेजबान के होश गुम थे। चीख-चिल्लाहट ने उसके कान बहरे कर दिए थे और वे उसे कुचल देना चाहते थे। उसकी आँखों के आगे अँधेरा छा गया और लड़खड़ाकर अब वह भी मृत सार्जेंट की हड्डियों के ढेर पर गिर पड़ा। वह बेसुध हो गया था।

सूरज की किरणें उस बिस्तर पर पड़ रही थीं, जिस पर ताबूतसाज सो रहा था। आखिर उसने आँखें खोलीं और देखा कि नौकरानी समोवार में कोयले दहकाने के लिए फूँक मार रही है। रात की घटनाओं की याद आते ही आद्रियान के शरीर में कँपकँपी-सी दौड़ गई। त्रूखिना, ब्रिगेडियर और सार्जेंट कुरील्किन के धुँधले चेहरे उसके दिमाग पर छाए हुए थे। वह

चुपचाप प्रतीक्षा करता रहा कि नौकरानी खुद बातचीत शुरू करेगी और रात की घटनाओं का बाकी हाल उसे बताएगी।

"मालिक, आज आप कितनी देर तक सोए?" सुबह के समय पहनने का चोगा उसे थमाते हुए ऑक्सीन्या ने कहा, "हमारा पड़ोसी दर्जी आपसे मिलने आया था और पुलिस का सिपाही भी एक चक्कर लगा गया है। वह यह कहने आया था कि आज पुलिस इंस्पेक्टर का जन्मदिन है, लेकिन आप सो रहे थे तो हमने जगाना ठीक नहीं समझा।"

"अच्छा, स्वर्गवासी विधवा त्रूखिना के यहाँ से भी कोई आया था?"

"क्यों? क्या त्रूखिना मर गई, मालिक?"

"तुम भी बस यों ही हो। उसका मातमी साज-सामान तैयार करने में कल तुम्हीं ने तो मेरा हाथ बँटाया था?"

"आप पागल तो नहीं हो गए, मालिक?" ऑक्सीन्या ने कहा, "या कल का नशा अभी तक दिमाग पर छाया हुआ है? कल किसी की मैयत का सामान तैयार नहीं हुआ। आप दिन-भर जर्मन के यहाँ दावत उड़ाते रहे। रात को नशे में धुत्त लौटे और अपने इसी बिस्तर पर गिर पड़े, जिस पर कि आप अभी तक सोए हुए थे। प्रार्थना के लिए गिरजे की घंटी भी बजते-बजते आखिर थककर चुप हो गई।"

"सचमुच?" ताबूतसाज ने संतोष की साँस लेते हुए कहा, "और नहीं तो क्या झूठ?" नौकरानी ने जवाब दिया।

"तो फिर जल्दी से चाय बनाओ और लड़कियों को यहीं बुला लाओ।"

लघुकथाएँ

● कमलेश भारतीय

अब तक सात कथा-संग्रह और चार लघुकथा-संग्रह। वरिष्ठ लेखकों के इंटरव्यूज पर आधारित यादों की धरोहर के दो संस्करण। पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी से एक संवाददाता की डायरी कथा-संग्रह पुरस्कृत संहित पंजाब भाषा विभाग व हरियाणा ग्रंथ अकादमी से पुरस्कृत। हरियाणा ग्रंथ अकादमी का संस्थापक उपाध्यक्ष। संप्रति 'नभछोर' सांध्य दैनिक के संपादकीय सलाहकार।

शर्त

युवा समारोह में श्रेष्ठ अभिनेत्री का पुरस्कार जीतनेवाली कलाकार अभिनय से अचानक मुख मोड़ गई। क्यों? यह सवाल पूछा तब उसने ठंडी आह भरकर बताया कि सर, नाटक निर्देशक मुझे स्टूडियो में कदम रखने से पहले कहने लगे कि अंदर जाने से पहले शर्त यह है कि शर्म बाहर रखनी होगी।

बस, मेरी कला शर्मसार होने से पहले घर लौट आई।

मैं खूबसूरत हूँ, पर...

तुम बहुत खूबसूरत हो।

अच्छा बताओ मेरे जिस्म का कौन सा हिस्सा तुम्हें खूबसूरत नहीं लगता?

मैं जानती हूँ कि तुम मुझे यही कहोगे न कि मेरी आँखें झील सी गहरी हैं। बाल काले बादल हैं और होंठ गुलाब। यह बात तुमने कितनी बार कही है। और किस-किस तरह से कही है। मैंने और भी बहुत लोगों के मुँह से सुनी है यह बात।

तुम्हें मालूम है, तुम क्या कह रही हो?

हाँ, मुझे मालूम है कि मैं क्या कह रही हूँ। यह बात सुनने के बाद तुम भी औरों की तरह यहाँ रुकोगे नहीं। सब मुझे अँधेरों में छोड़कर खुद रोशनी में चले जाते हैं। तुम भी उनमें से एक होगे। क्या ऐसा नहीं है?

इतना सुनने के बाद उसके पास कोई जवाब न बन पड़ा। वह चुपचाप वहाँ से चल दिया और सोचती रह गई कि वह खूबसूरत है भी या...

मैं तुम्हें प्यार नहीं करती

'मैं तुम्हें बहुत प्यार करता हूँ।'

'पर मैं तुम्हें प्यार नहीं करती।'

'यह क्या कह रही हो?'

'मुझे तुम्हारी बात पर विश्वास नहीं हो रहा।'

'विश्वास करो, मैं किसी का घर नहीं तोड़ना चाहती।'

'क्या मतलब?'

'मतलब साफ है कि मेरे पति को एक औरत ने अपने मोहजाल में ऐसा फाँसा है कि वह घर छोड़कर उसके पीछे हो लिया।'

'फिर?'

'जब मैं एक औरत द्वारा अपना पति छीन लिये जाने का दु:ख भोग रही हूँ, तब तुम मुझसे यह उम्मीद कैसे करते हो कि मैं अपना घर बसाने के लिए किसी का बसा-बसाया घर उजाड़ दूँगी? मैं तुमसे बिल्कुल मोहब्बत नहीं करती।'

वह अपने हाथों में अपना चेहरा छिपाए सुबकने लगी।

कितने अजीब...

लेखकों की महफिल थी। एक समारोह के बाद थोड़ी-थोड़ी पीने में मस्त थे। जिस महिला रचनाकार ने बुलाया और सम्मानित किया उसी के चरित्र को प्याज के छिलकों की तरह घूँट भर-भरकर छील रहे थे। कितनी जल्दी सम्मान करने का ऋण उतारकर मुक्त हो रहे थे। ये लेखकों की महफिल बड़ी अजीब थी!

१०३४ बी, अरबन स्टेट-२, हिसार-१२५००५
दूरभाष : ९४१६०४७०७५
bhartiyakamleshhsr@gmail.com

मलेशिया की धरती पर पहला कदम

• कमलेश भट्ट कमल

कितने पर्वत, कितने जंगल, सिंधु का विस्तार कितना,
जिंदगी जीने की खातिर है बड़ा संसार कितना!

३ ७७ सीटोंवाले विमान से यह हमारी पहली यात्रा थी। गेट खुलने से पहले विमान यात्रियों की हचलच से भर गया। ऐसे लग रहा था, जैसे किसी हॉल में पिक्चर का शो छूटा हो या किसी जनवासे में बैठे सारे लोग एक साथ उठ खड़े हुए हों।

कुछेक मिनट की प्रतीक्षा के बाद विमान का गेट खुला तो यात्री बाहर जाने के लिए उत्सुक दिखाई पड़े। हम तीनों भी कतार में थे। कुछ मिनटों में ही हम हवाई अड्डे के बेहद लंबे गलियारे के मुहाने पर थे। वहाँ से ऊपर-नीचे आधे कि.मी. की थकाऊ पद-यात्रा के बाद भूतल पर हमें इमीग्रेशन हाल दिखाई दिया। सभी हवाई अड्डों की तरह यहाँ भी स्थानीय पासपोर्ट धारकों तथा विदेशी पासपोर्ट धारकों के लिए अलग-अलग काउंटर बने थे। हम यहाँ देशी से विदेशी बन चुके थे! इन काउंटरों पर हमारा पासपोर्ट, वीजा चेक होना था। हम अलग-अलग लाइनों में खड़े हो गए। मेरे कागजात नूर इज्दिहार नामक महिला चेक कर रही थी। नाम उसकी वर्दी पर लगी नेमप्लेट से मिला। कई और काउंटरों पर भी महिलाएँ ही इस कार्य के लिए तैनात थीं। कुछ सुरक्षाकर्मी भी महिलाएँ ही थीं। सभी के सिरों पर करीने से बँधे हुए स्कार्फ थे, बाकी की वेशभूशा राजकीय नियमों के अनुसार आधुनिक ही थी। बुर्का जैसी कोई वेशभूषा वहाँ दिखाई नहीं दे रही थी, न कर्मियों में और न ही पर्यटकों में।

इमीग्रेशन में १५-२० मिनट से ज्यादा का समय नहीं लगा। उसके बाद कैबिन लगेज को एक एक्स-रे मशीन से होकर गुजारा गया, सब कुछ ठीक-ठाक निकला। हम आशंकित थे कि यहाँ हमारी दवाएँ, खाने-पीने का सामान एक-एक करके चेक होगा, लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। अब हमें 'एराइवल हॉल' से बुक किया हुआ लगेज लेना था। यह कार्य भी जल्दी ही हो गया। सामान ट्रॉली में लादकर हम लोग बाहर निकले तो सामने ही एक गहरी साँवली सी नवयुवती जो पैंट-टॉप पहने हुए थी, विशाख भट्ट के नाम का बोर्ड लिये खड़ी थी। हमने उसे हाथ हिलाकर अपनी पहचान बताई तो उसने बाहर आने का इशारा किया। फिर हमें बगल की बेंच पर बैठाकर उसने बताया कि कैब आने ही वाली है। यह युवती हमारे टूर प्रोग्राम की प्रथम मेंटर थी, जो प्रथम दृष्टया तमिल लग रही थी। मगर अंग्रेजी में ही बात कर रही थी। कोई पाँच-सात मिनट की प्रतीक्षा के बाद ही युवती ने हमें इशारे से कैब के आने का संकेत दिया। हम ट्रॉली सहित बाहर सड़क पर खड़ी गाड़ियों की ओर बढ़ चले।

सुपरिचित लेखक। कहानी, गजल, हाइकु, यात्रा-वृत्तांत, साक्षात्कार एवं बाल-साहित्य की बीस कृतियाँ प्रकाशित। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ तथा उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, परंपरा, किताबघर प्रकाशन, प्रेस्टिज संस्थान समेत कई संस्थानों से सम्मानित। उत्तर प्रदेश वाणिज्य-कर विभाग से एडिश्नल कमिश्नर के पद से सेवानिवृत्त।

हमारी कैब नौ सीटर बड़ी सी थी। सामान पीछे डिग्गी में रखवाकर हम मनपसंद सीटों पर बैठ गए। गाड़ी की अगली सीट पर ड्राइवर के साथ ही वह मेंटर युवती भी बैठ गई। कैब बड़ी तेजी से कुआलालंपुर के रास्ते पर चल पड़ी। कैब ने एकदम से ८०-९० की स्पीड पकड़ ली। इस गति पर हम हैरान थे! आगे तो कैब १०० कि.मी. से ऊपर की स्पीड पर चल रही थी। दूसरी गाड़ियाँ और कैब भी ऐसी ही स्पीड से चल रही थीं। सबसे तेज बाइकों की गति थी। वे घूँ-घूँ ऽऽऽ करके लगातार दूसरी गाड़ियों को क्रॉस कर जाती थीं। कैब का ड्राइवर भी तमिल मूल का था। भारी भरकम कद-काठी का, गहरे साँवले रंग का यह जवान दरअसल कैब का स्वामी था, जो ड्राइवर के उपलब्ध न हो पाने के कारण स्वयं कैब लेकर आ गया था।

हवाई अड्डे से निकलते ही फ्लाईओवर हमारा स्वागत करने लगते हैं। जल्दी ही हम हाईवे पर आ जाते हैं और हमारे दोनों ओर घनी हरियाली आँखों को आकर्षित करने लगती है। इन वृक्षों में पाम, कोकोनट और दीगर वृक्ष शामिल हैं। इन्हीं पेड़ों के आस-पास तमाम वनस्पतियाँ, लताएँ हरियाली को और सघन बना रही होती हैं। मौसम २५-३० डिग्री के बीच सुहावना बना हुआ था। प्रथम दृष्टया कुआलालंपुर की यह सड़क-यात्रा आकर्षक और मनभावन लग रही थी।

हवाई अड्डे से कुआलालंपुर शहर की दूरी ६० कि.मी. के लगभग है, जिसको गाड़ियाँ ४० से ६० मिनट में तय करती हैं। हाइवे पर कई सारे टोल प्लाजा हैं, लेकिन कार्ड स्वैपिंग के चलते कुछ सेकंडों में ही काम हो जाता है। टोल प्लाजा की ऐसी लेन को सहजा (sahaja) लेन के नाम से अंकित किया गया है। 'सहजा' यानी हिंदी का सहज' यानी आसान! कितनी करीब है मलेशिया की यह भाषा हिंदी के।

मलेशिया में यहाँ एक्सप्रेस-वे पर लालबत्तियाँ नहीं, बल्कि फ्लाइओवर हैं, जिससे ट्रैफिक को रुकने की आवश्यकता नहीं होती है। हमारी कैब इतने सारे फ्लाईओवर से गुजर रही थी कि हम हैरान से थे! एक रास्ते में इतने सारे फ्लाईओवर! लेकिन आगे जाकर पता चलता है कि पूरा कुआलालंपुर इन्हीं फ्लाईओवरों के नीचे बसा हुआ साँस लेता है, तेजी से भागता रहता है और कभी थकता नहीं। कहा तो यह भी जाता है कि यह शहर कभी सोता नहीं।

रास्ते के दोनों तरफ बड़े पैमाने पर हाईराइज बिल्डिंगों का निर्माण प्रगति पर था। बड़े-बड़े साइन बोर्ड यहाँ भी दिखते हैं, लेकिन उनकी ऐसी बहुतायत नहीं है कि वे यात्रियों को भटकाएँ अथवा ट्रैफिक में व्यवधान का कारण बनें। यहाँ के विज्ञापनों में भी महिलाओं का उपयोग दिखाई दे रहा था, लेकिन बहुत सीमित मात्रा में।

आगे हाईवे पर दाएँ-बाएँ छोटी पहाड़ीनुमा ऊँची जगहें, उनकी चढ़ाइयाँ और ढलानें देखने को मिलती हैं। हाइवे की तरफ की इनकी दीवारों पर गहरा प्लांटेशन किया गया है, जो मनमोहक दृश्य उपस्थित कर रहा था! आस-पास से गगनचुंबी टावर भी गुजर रही थीं, जो नोएडा, ग्रेटर नोएडा और गुरुग्राम जैसा दृश्य उपस्थित कर रही थीं।

हाइवे पर कहीं ६० कि.मी. तो कहीं ९० कि.मी. गति-सीमा के साइन बोर्ड दिखाई जरूर दे रहे थे, लेकिन शायद ही कोई गाड़ी इसका अनुपालन कर रही थी। सभी वाहन अधिकतम संभव स्पीड से चलने के लिए व्यग्र दिखाई दे रहे थे! हाँ दिल्ली के चौराहों की तरह चालान काटने की जुगत में लगे ट्रैफिक कांस्टेबिल कहीं नजर नहीं आ रहे थे। स्थानीय समय के अनुसार हवाई अड्डे से हम प्रात: ८:३० के आस-पास निकले थे और एक रोमांचक सफर पूरा करके कैब ने कोई ९:३० के लगभग हमें ग्रैंड पैसिफिक होटल पर उतार दिया था।

ग्रैंड पैसिफिक एक बजट होटल था, लिहाजा यहाँ बाहरी सजधज बहुत ज्यादा नहीं थी। एक महिला रिसेप्शन काउंटर पर खाली-खाली सी बैठी थी। हमने अपनी 'प्रि बुकिंग' के बारे में बताया तो उसने कंप्यूटर खँगालकर सूचित किया कि होटल का चेक इन टाइम २ बजे का है, आप उससे पहले चेक-इन करना चाहते हैं तो ५० रिंगिट प्रति कमरा अलग से खर्च करना पड़ेगा। हमने सोच-विचारकर एक कमरे में 'प्रि चेक-इन' कर लिया। यह कमरा ५२६ नंबर का था, जहाँ की खिड़की से पेट्रोनास ट्विन टावर साफ दिखाई दे रहा था। हमारे पास केवल एक घंटे का टाइम था, पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार हमें १०:३० बजे 'एक्वेरिया' जाने के लिए नीचे ड्राइवर से मिलना था। लिहाजा हमारे पास अब फ्रेश होने और चाय पीने का ही समय शेष था।

चाय होटल में कांप्लीमेंट्री थी। उसकी सामग्री खत्म हो जाने पर दुबारा ली जा सकती थी। ज्यादातर होटलों में अब ऐसी ही व्यवस्था मिलती है।

होटल का कमरा साफ-सुथरा था। यहाँ 'बेल सर्विस' नहीं थी, अर्थात् हमें अपना लगेज खुद ही ले जाना था। होटल के सभी कमरों में वाई-फाई की सुविधा थी। अत: कमरे में प्रवेश करके सबसे पहले हमने अपनी कुशल-क्षेम कुसुम को बताई और उनकी कुशल-क्षेम पूछी।

पाँचवीं मंजिल पर कमरा होने से उसकी खिड़की से शहर के कई महत्त्वपूर्ण स्थान देखे जा सकते थे। पेट्रोनास ट्विन टावर तो जैसे 'वाकिंग डिस्टैंस' पर ही था दाईं ओर। बाईं ओर नीचे लाल सिगनल वाला चौराहा था जो बाईं ओर जाकर मेट्रो रेल लाइन के बगल कहीं खत्म हो रहा था। हर मिनट दो मिनट पर मेट्रो क्रॉस होती हुई देखी जा सकती थी।

नित्यक्रिया से निवृत्त होकर चाय की तैयारी हुई। घर से लाया हुआ नाश्ता निकालकर खाया गया और अंतत: चाय पीकर ठीक १०:३० बजे हम होटल की लॉबी में थे। दरअसल इस होटल में आने की कहानी भी घुमावदार थी। यात्रा से दो दिन पूर्व विशाख ने जब कार्यक्रम के कागजों का प्रिंट आउट मुझे दिखाया तो कुआलालंपुर के होटल में चेक इन की तारीख ३ व चेक आउट की तारीख ५ अगस्त अंकित थी, जबकि ३ को तो हम दिल्ली से ही चलनेवाले थे तथा लंकावी के लिए हमारी फ्लाइट ६ अगस्त को सवेरे थी। मेरी इस आपत्ति पर विशाख ने टूर ऑपरेटर से बात की तो उसने आनन-फानन में कार्यक्रम संशोधित करते हुए हमें इस नए होटल के बाउचर उपलब्ध कराए थे। बाद में पता चला कि पहलेवाले होटल की बुकिंग फर्जी थी। यानी हम ठगे गए थे। विशाख ने तब आनन-फानन में यह वैकल्पिक व्यवस्था की थी!

आजकल आनलाइन ठगी के इतने मामले सामने आ रहे हैं कि हैरान रह जाना पड़ता है। अपने देश में ही नहीं, हर देश में साइबर अपराधों का गोरखधंधा बहुत तेजी से फैला है। अभी मार्च २०१९ में ही थाईलैंड से वाराणसी की यात्रा पर आए २६ पर्यटकों के पूरे दल के वीजा और वापसी टिकट फर्जी पाए जाने की खबर अखबारों में थी! और तो और इन अपराधों के शिकार दूसरे देशों के नागरिक भी हो रहे हैं। नोएडा में तो कई सारे फर्जी कॉल सेंटर भी पकड़े गए हैं, जिन्होंने अमरीका, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, ब्रिटेन जैसे देशों के नागरिकों को भी ठगने में कोई संकोच नहीं किया है। ऐसा नहीं कि ये साइबर अपराधी पकड़े नहीं जा रहे हैं, लेकिन स्थिति तू डाल-डाल मैं पात-पात वाली बनी हुई है।

अबकी टूर आपरेटर की एक दूसरी उतनी ही बड़ी कैब हमारे लिए आई थी, लेकिन ड्राइवर एक भारी भरकम डील-डौल वाला और कुछ-कुछ भयानक सा दिखाई देनेवाला दूसरा तमिल था। लिहाजा इस ड्राइवर से भी बात करना सहज नहीं था। सुबह जिस कैब मालिक ने हमें होटल पहुँचाया था, उससे हमने जब हाइवे के किनारे के बागानों के बारे में जानकारी ली तो उसने उन्हें कोकोनट के बागान बता दिए थे, जबकि उनकी ऊँचाई इतनी कम थी कि वे कहीं से कोकोनट के बागान नहीं लग रहे थे। दरअसल वे पाम के बागान थे और मलेशिया पाम ऑयल का एक

बड़ा उत्पादक और निर्यातक देश है।

मलेशिया के सबसे बड़े शहर और वहाँ की राजधानी कुआलालंपुर का इतिहास ज्यादा पुराना नहीं है। मूल रूप से सेलंगोर राज्य की राजधानी रहे कुआलालंपुर का उदय उन्नीसवीं सदी के मध्य में तब हुआ, जब यहाँ टिन धातु के खनन के उद्योग लगने शुरू हुए। गोंबक एवं क्लैंग नदियों के संगम पर बसे कुआलालंपुर की स्थापना १८५७ में हुई, जिसका अंग्रेजी में शाब्दिक अर्थ कीचड़वाला संगम होता है। जंगलों से भरे क्लैंग घाटी के ऐम्पांग इलाके में चीने से आए स्वर्ण धातु की खुदाई करनेवालों ने तत्कालीन सेलंगोर शासकों के लिए बड़ी चुनौतियों के बीच टिन की खदानें बनाईं। इसके साथ ही टिन की खरीद-फरोख्त करनेवाले व्यापारियों का यहाँ आना-जाना शुरू हो गया। इस खरीद-फरोख्त के लिए कुआलालंपुर एक सुविधाजनक केंद्र के रूप में धीरे-धीरे आकार लेने लगा। बहुत सारे चीनी यहाँ बसने लगे, मलयों के साथ-साथ भारतीय व्यापारी और दूसरे भारतीय मुस्लिम भी यहाँ आकर बस गए।

उन्नीसवीं सदी के सातवें-आठवें दशक में कुआलालंपुर ने 'सेलंगोर सिविलवार' के नाम से एक गृहयुद्ध भी झेला। ऐसा चीनियों के कुआलालंपुर पर बढ़ते प्रभुत्व व सेलंगोर के शाही शासन के आपसी हितों के टकराव के कारण हुआ। यह टकराव राजनीतिक ताकत के साथ-साथ टिन की खदानों पर प्रभुत्व पाने का भी था। १८७२ तक इस गृहयुद्ध में तमाम खून-खराबा तो हुआ ही, कुआलालंपुर भी बरबाद होकर रह गया। इस संघर्ष में स्थानीय चीनी प्रमुख 'याप अह लॉय' की सक्रिय भागीदारी व भूमिका थी। अंततः १८७३ ई. में याप ने ही प्रायः नष्ट हो चुके कुआलालंपुर का पुनर्निर्माण करके इसे फिर से आबाद कराया।

१८७४ में सेलंगोर के सुल्तान अब्दुल समद ने ब्रिटिश रेजीडेंट को शासन चलाने के लिए अपनी सहमति दे दी और वे स्वयं सुल्तान बने रहे। तभी १८८० में कुआलालंपुर को सेलंगोर की राजधानी होने का गौरव मिला। इससे पहले राज्य की राजधानी क्लैंग थी। राजधानी के कुआलालंपुर स्थांतरण के बाद तत्कालीन ब्रिटिश रेजीडेंट विलियम ब्लूम फील्ड डगलस ने क्लैंग नदी के पश्चिमी तट पर सरकारी प्रशासनिक भवनों के निर्माण का तथा स्थानीय लोगों के निवास के लिए पूर्वी तट पर निर्माण का निश्चय किया। बाद में सरकारी कार्यालय मर्डेका स्क्वायर स्थित सुल्तान अब्दुल समद बिल्डिंग में स्थानांतरित कर दिए गए। डगलस द्वारा शुरू किए गए निर्माण कार्य को १८८२ में नियुक्त किए गए अंग्रेज रेजीडेंट फ्रैंक स्वीटेन हैम ने तीव्रगति से अमल में लाते हुए एक बड़े शहरी केंद्र के रूप में कुआलालंपुर को विकसित करने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। फ्रैंक के समय में ही १८८६ में कुआलालंपुर में पहली रेल-सेवा क्लैंग से कुआलालंपुर के बीच में शुरू हुई।

सन् १८९० तक कुआलालंपुर की आबादी २००० पहुँच गई थी। वह १८९५ का वही वर्ष था जब मलय राज्यों ने मिलकर फेडरेटेड मलय स्टेट का गठन किया। जब १८९६ में स्वेटन हैम एक बार पुनः रेजीडेंट जनरल होकर आए तो कुआलालंपुर को इस नए संघ की राजधानी बनाया गया। जो स्टेट इस संघ में शामिल रहे, वे थे—सेलंगोर, पेराक, नेगेरी सेंबिलान और पहांग। स्वेटेन हैम यहाँ १९०१ तक रेजीडेंट जनरल रहे।

मौजूदा कुआलालंपुर एक संघीय क्षेत्र है। १ फरवरी, १९७४ को उसे यह दर्जा सेलंगोर राज्य से अलग करके दिया गया। इसकी आबादी २०१० के अनुमानों के अनुसार १५.९० लाख थी, जो २०१६ में बहुत धीमी गति से बढ़कर १७.३० लाख पहुँची। २४३ वर्ग कि.मी. के क्षेत्र में फैला कुआलालंपुर शहर मलेशिया का सांस्कृतिक, आर्थिक और वित्तीय केंद्र भी है। मलेशियाई पार्लियामेंट और मलेशियाई सम्राट् के निवास इसी शहर में हैं। बाद में १९५७ में जब मलेशिया को अंग्रेजों की दासता से मुक्ति मिली, तब भी कुआलालंपुर का राजधानी वाला रुतबा यथावत् कायम रहा। मौजूदा समय में प्रशासनिक सुविधा को ध्यान में रखकर कुछ संघीय मंत्रालयों के कामकाज कुआलालंपुर के दक्षिण में २५ कि.मी. दूरी पर स्थित शहर 'पुत्राजया' नामक नए संघीय क्षेत्र में स्थानांतरित कर दिए गए हैं।

भारत की तुलना में काफी छोटा होने के बावजूद मात्र तीन करोड़ की आबादी वाले मलेशिया ने कुआलालंपुर में १९९८ के कॉमनवेल्थ खेलों तथा २०१७ के दक्षिण पूर्व रशियाई खेलों की मेजबानी भी की, जिससे इसकी धाक पूरी दुनिया में जम गई। इसका परिणाम रहा कि मास रैपिड ट्रांजिट, लाइटमेट्रो, बस रैपिड ट्रांजिट, मोनोरेल, कंप्यूटर रेल तथा एयरपोर्ट रेल लिंक जैसी सार्वजनिक परिवहन व्यवस्था से लैस कुआलालंपुर २०१७ में विश्व के १० सबसे लोकप्रिय शहरों में शामिल रहा है। दुनिया के दस सबसे बड़े शॉपिंग मॉल में से तीन यहीं स्थित हैं।

कुआलालंपुर के प्रमुख पर्यटक आकर्षणों में दुनिया की सबसे ऊँची (४५२ मीटर) जुड़वाँ टावर पेट्रोनास ट्विन टावर, विश्व की सातवीं सबसे ऊँची (२७६ मीटर) संचार टावर—के.एल. टावर, ६०,००० वर्ग फुट में फैला विशाल मछली घर—एक्वेरिया, मलेशिया की आजादी का गवाह ऐतिहासिक मर्डेका/इंडिपेंडेंस स्क्वायर, दक्षिण भारतीय मुरुगन मंदिरवाली ४० करोड़ वर्ष पुरानी बाटू केव्स तथा विशालकाय स्वर्णिम आभायुक्त विश्व की सबसे ऊँची (४२.७ मीटर) मुरुगन प्रतिमा, चायना टाउन तथा भारतीयों की बहुलता वाला इंडिया ब्रिकफील्ड आदि शामिल हैं। पेट्रोनास ट्विन टावर में शाहरुख खान अभिनीत 'डान-२' फिल्म के कुछ महत्त्वपूर्ण दृश्य फिल्माए गए थे।

मलय, चीनी, भारतीय, बौद्ध, ईसाई, सिख आदि कई समुदायों की मिली-जुली आबादीवाला कुआलालंपुर अपने इंफ्रास्ट्रक्चर, अपनी स्वतंत्र और आधुनिक जीवनशैली तथा अपनी आर्थिक और व्यावसायिक सक्रियता के चलते आज दुनियभर के पर्यटकों के आकर्षण का केंद्र है। स्वतंत्रता के संदर्भ में प्रयोग किया जानेवाला शब्द 'मर्डेका' यहाँ के जनजीवन में पूरी तरह व्याप्त देखा जा सकता है।

साअ

गोविंदम्, १५१२, कारनेशन-२
गौड़ सौंदर्यम् अपार्टमेंट, ग्रेटर नोएडा वेस्ट
गौतम बुद्ध नगर-२०१३१८ (उ.प्र.)
दूरभाष : ९९६८२९६६९४
kamlesh59@gmail.com

बाल-कहानी

उफ, कितना मुश्किल है!

• मोहम्मद अरशद खान

सायरा बहुत खुश है। आज उसके स्कूल में वार्षिकोत्सव है। वह नाटक में हिस्सा ले रही है। नाटक में वह भारत माता बनेगी। कादरी सर हफ्तों से अभ्यास करा रहे हैं। वैसे तो वे उर्दू के टीचर हैं, पर नाटक में उनकी खास दिलचस्पी है। इसलिए माथुर मैम ने उन्हें ही नाटक की जिम्मेदारी सौंपी है। इसी तरह गीत-गायन में साजिद सर का जवाब नहीं। वे खुद भी बहुत अच्छा गाते हैं। नाटक के अंत में सायरा को एक गीत भी गाना है, जिसकी तैयारी उन्होंने ही कराई है। वे उसकी बहुत तारीफ करते हैं। कहते हैं कि उसका गला बहुत अच्छा है।

हालाँकि सायरा नाटक में लक्ष्मीबाई का रोल करना चाहती थी, पर माथुर मैम ने कहा कि उसे भारत माता ही बनना है। मैम ने जो कह दिया, वह पत्थर पर लकीर समझो। उसे उदास देखकर कादरी सर ने कहा था, ''तुम कितनी प्यारी गुड़िया सी दिखती हो। भोली-भाली, परी-सी! भारत माता भी बिल्कुल तुम्हारे जैसी है। इस रोल में तुम बहुत अच्छी दिखोगी।'' बस वह पूरे मन से तैयार हो गई थी।

सायरा जल्दी-जल्दी तैयार हुई। उसने अम्मी-अब्बू को सलाम किया और साइकिल उठाकर चल दी। कार्यक्रम ११ बजे से होना था, पर सभी को ८ बजे बुलाया गया था। सायरा ने स्कूल में कदम रखा तो सारे टीचर पहले से मौजूद थे। सायरा ने सबको गुड मार्निंग किया और उस कमरे की तरफ चल दी, जहाँ नाटक की तैयारी हो रही थी। कादरी सर उसे देखते ही बोले, ''अरे सायरा, मैं तुम्हारा ही इंतजार कर रहा था। फटाफट आ जाओ। तैयारी में बहुत वक्त लगेगा।''

मैकअप की जिम्मेदारी सीमा मैम की थी। मैम ने उसे तिरंगी साड़ी पहना दी। ऊपर केसरिया, बीच में सफेद और नीचे हरी। फिर उन्होंने उसके चेहरे पर ढेर सारा पाउडर मल दिया। गोरी-चिट्टी तो वह पहले से थी। अब बिल्कुल बर्फ की गुड़िया-सी लगने लगी। उन्होंने उसके माथे पर एक बड़ी-सी लाल बिंदी भी लगा दी। तभी हड़बड़ाई हुई माथुर मैम वहाँ आ गईं। इस वार्षिकोत्सव की सारी जिम्मेदारी उन्हीं के सिर थी।

काफी देर तक मैकअप करने के बाद सीमा मैम बोलीं, ''बेटा, अब तुम्हारा मैकअप पूरा हो गया। पर ध्यान रहे, चेहरे पर पानी न लगने पाए। और हाँ, अब यहीं चुपचाप बैठो। खेल-कूद और दौड़-भाग से मैकअप खराब हो जाएगा।''

जाने-माने बाल-रचनाकार एवं वरिष्ठ हिंदी प्रवक्ता। 'रेल के डिब्बे में' (बाल कविता-संग्रह), 'किसी को बताना मत' (बाल कहानी-संग्रह) प्रकाशित। भारतीय बाल कल्याण संस्थान कानपुर, नागरी बाल साहित्य संस्थान, बलिया एवं बाल प्रहरी द्वारा 'राष्ट्रीय बाल साहित्य सम्मान', 'काव्यश्री' सम्मान, हिंदी सभा सीतापुर द्वारा पुरस्कृत।

सायरा गरदन सीधी किए-किए परेशान हो चुकी थी। मैम के आदेश से वह बेचैन हो उठी। यह तो बड़ी मुसीबत हो गई। वह बोली, ''मैम, पानी तो पी सकती हूँ।''

''हाँ, लेकिन थोड़ा सा,'' माथुर मैम आकर बोलीं, ''स्टेज पर पहुँचने के बाद वहाँ से हिलना नहीं है। जब तक नाटक खत्म न हो जाए। अब जल्दी तैयार हो जाओ। ११ बज रहे हैं। हमारे चीफ गेस्ट आते ही होंगे।''

''उफ, यह क्या मुसीबत है!'' सायरा ने सोचा।

चीफ गेस्ट सचमुच वक्त के पाबंद थे। ठीक ११ बजे वे आ गए। उनके आते ही कार्यक्रम शुरू हो गया।

स्टेज का परदा हटते ही सामने सायरा दिखाई दी। एकदम शांत, चेहरे पर मुसकराहट बिखेरती किसी परी की तरह। सिर पर सुनहरा मुकुट। गले में चमकते मोतियों की माला। एक हाथ में तिरंगा। तालियों से पूरा वातावरण गूँज उठा। चीफ गेस्ट इतने खुश हुए कि खड़े होकर तालियाँ बजाने लगे। सायरा खुशी से पुलक उठी।

पर जल्द ही उसे अहसास हो गया कि यह काम उतना आसान नहीं है, जितना उसने समझ रखा था। लगातार मुसकराते रहने से जल्द ही उसका चेहरा दर्द करने लगा। उसने एक लंबी साँस लेकर चेहरा सामान्य कर लिया। उसी पल विंग में बैठी माथुर मैम ने अँगूठे और तर्जनी से होंठों के पास स्माइल बनाई। मतलब साफ था—मुसकराते रहो। ऐसे ही एक बार जब तात्या टोपे अपनी तलवार लहराते हुए निकले तो वह उत्सुकता से उनकी ओर देखने लगी। माथुर मैम ने चेहरे पर सख्ती लाकर फिर उसे

इशारा किया कि सामने देखो।

एक ही स्थिति में खड़े रहने से उसकी कमर दुखने लगी। कभी वह एक पैर पर जोर देकर खड़ी होती तो कभी दूसरे पैर पर। गनीमत यह थी कि साड़ी पहने होने के कारण सामने से पता नहीं चल रहा था। वरना माथुर मैम उसे फिर घूरतीं।

थोड़ी देर और गुजरी कि पीठ में खुजली होने लगी। उसने कनखियों से देखा, मैम उसी की ओर देख रही थीं। वह कसमसाकर रह गई। उसने कोशिश की वह अपना ध्यान खुजली की ओर से हटा ले। पर अब तो लगता था कि सारे शरीर में खुजली होने लगी। सायरा को पसीने छूटने लगे।

तभी लक्ष्मीबाई और अंग्रेजों के मुकाबले का दृश्य आया। एक पल को लगा कि लक्ष्मीबाई की तलवार कहीं उससे न टकरा जाए। यों तो तलवार कोई असली नहीं थी, कार्डबोर्ड पर चमकीली पन्नी चिपकाकर बनाई गई थी, पर चोट लगने का डर तो था ही। कोई झूठमूठ तिनका भी आँखों के आगे लहरा दे तो एक पल को घबराहट तो होती ही है।

खैर, जैसे-तैसे लक्ष्मीबाई गईं तो एक मक्खी उसे आकर परेशान करने लगी। कभी नाक पर आकर बैठ जाती, तो कभी माथे पर रेंगने लगती। उसे अजीब गुदगुदी सी होने लगी। किसी तरह से मक्खी भागी तो उसे जोर की प्यास लगने लगी। प्यास रोके-रोके उसका सिरदर्द करने लगा। आँखें सिरदर्द से लाल हो गईं। अपना ध्यान बँटाने के लिए वह उल्टी गिनतियाँ गिनने लगी। अम्मी ने उसे बताया था कि जब अपना ध्यान कहीं से हटाना हो तो उल्टी गिनतियाँ गिनना शुरू कर दो। पर गिनतियाँ भी जल्द ही १०० से शुरू होकर १ पर आ गईं। अबकी बार उसने हजार से गिनना शुरू किया।

खैर, किसी तरह करते-करते नाटक खत्म हुआ और परदा गिरा। सायरा लपककर ड्रेसिंग रूम की ओर भागी। बाहर तालियाँ बज रही थीं। लोगों को नाटक बहुत पसंद आया था।

संचालक महोदय मंच पर आकर नाटक के पात्रों का परिचय कराने लगे। सबका परिचय कराकर उन्होंने कहा, ''....और सबसे अंत में मैं आपका परिचय उस बच्ची से कराना चाहता हूँ, जिसने इस नाटक में भारत माता की भूमिका निभाई। जोरदार तालियों से सायरा का स्वागत कीजिए।''

भीड़ ने जोरदार तालियाँ बजाईं। लेकिन सायरा मंच पर नहीं आई। भीड़ में खुसर-पुसर होने लगी।

''सायरा...!'' संचालक ने दोबारा पुकारा।

माथुर मैम, कादरी सर और साजिद सर घबराकर ड्रेसिंग रूम की तरफ लपके।

वहाँ का दृश्य देखकर उनकी हँसी छूट गई। सायरा थकान के कारण कुरसी पर लुढ़की खर्राटे भर रही थी।

''बेचारी बच्ची!'' माथुर मैम के मुँह से निकला। उन्होंने सबको चुप रहने का इशारा किया और उसके माथे पर हौले से एक पप्पी लेकर बाहर आ गईं।

हिंदी-विभाग, जी.एफ. (पी.जी.) कॉलेज,
शाहजहाँपुर-२४२००१ (उ.प्र.)
दूरभाष : ९८०७००६२८८

कविता

जब भी जाऊँ इस दुनिया से

● राजकुमार कुंभज

जब भी जाऊँ इस दुनिया से
और दोस्तों-दुश्मनों को अपना आखिरी सलाम कहूँ
चाहता हूँ कि ऐसा कोई काम न करूँ
कर सकूँ, कर सकूँ
दर्पण के सामने खड़ा होकर खुद से बात कर सकूँ
करूँ याद तो अपनी खुद्दारी को ही याद करूँ
किसी भी किस्म का प्रायश्चित्त नहीं करूँ
वफादारी निभाने के नाम पर बांड नहीं भरूँ
जमानत पर जाऊँ तो वापस लौट आऊँ
न तो जरा भी कँपकँपाऊँ
न तो जरा भी थरथराऊँ
पानी में देखता हूँ
तो देखता हूँ काँपना पानी का
पानी का काँपना
नहीं है मेरा काँपना
काँपता है पानी
जागता है आदमी
आदमी का जागना
आदमी के पानी का जागना है
आदमी के पानी का जागना
जागना बड़ा है
और अगर जो जाग जाए
आदमी के भीतर का पानी
तो आदमी बड़ा है
पता नहीं मैं छोटा हूँ या बड़ा
लेकिन अपने भीतर के पानी को
सिरे से जगाना चाहता हूँ
जब जाऊँ इस दुनिया से
और दोस्तों-दुश्मनों को अपना आखिरी सलाम कहूँ
जख्म लगे पाँव से चुभता काँटा निकालने का काम करूँ
पाँव है किसका, इसका खयाल नहीं करूँ
खयाल करूँ तो सिर्फ इतना कि राह क्या,
किस ओर?
जाने से पहले दियासलाई बन जाऊँ
जब भी जाऊँ इस दुनिया से।

३३१, जवाहर मार्ग, इंदौर-४५२००२
दूरभाष : ०७३१-२५४३३८०

पाठकों की प्रतिक्रियाएँ

'साहित्य अमृत' का दिसंबर अंक समय पर प्राप्त हुआ। इस अंक का योजनाबद्ध ढंग से संयोजन इसे संग्रहणीय बना रहा है। सत्य के हमेशा ही संस्करण होते हैं, जो देशकाल के मुताबिक परिवर्तनशील होते हैं। किसी जमाने में 'सरस्वती' पत्रिका संपादकत्व में नए लेखकों को दिशा-निर्देश मिलते थे कि अमुक सामाजिक क्षेत्र पर आपकी रचना आनी चाहिए। संपादकों की प्रेरणा से ही अनेक कालजयी रचनाओं से हिंदी साहित्य समृद्ध हुआ। बिल्कुल उसी लक्ष्य को सामने रख आप अपने कर्तव्य का पालन कर रहे हैं। कहानी 'काकी' पढ़कर अभिभूत हुआ। इसके कथ्य में हर घर की कहानी निहित है। लेकिन कुछ मार्मिक संबंध ऐसे भी होते हैं, जो भुलाना चाहने पर भी कहाँ भुला पाते हैं!

—बी.डी. बजाज, दिल्ली

'साहित्य अमृत' का 'रजत जयंती विशेषांक' प्राप्त हुआ। तीन सौ पृष्ठों का यह अंक निश्चित ही पठनीय तो है ही, संग्रहणीय भी है। आज जब बड़ी-बड़ी संस्थाओं ने हाथ खड़े कर दिए हैं और तमाम पत्रिकाएँ बंद हो रही हैं, ऐसे में निरंतर पच्चीस वर्षों से अमृतमय साहित्य परोसती 'साहित्य अमृत' पत्रिका का प्रकाशन साहित्य के प्रति निष्ठा का परिचायक है। १९९५ के प्रवेशांक से लेकर समय-समय पर अनेक विशेषांकों की कड़ी में यह 'रजत जयंती विशेषांक' एक लंबी, सफल और समृद्ध यात्रा का फल है, जिसने व्यावसायिकता को लक्ष्य न बनाकर साहित्य सेवा का लक्ष्य सामने रखा है। पत्रिका में साहित्य की हर विधा आलेख, कहानी, कविता, संस्मरण, नाटक, निबंध, उपन्यास-अंश, व्यंग्य, साक्षात्कार, लघुकथा, यात्रा-वृत्तांत के साथ ही बाल-संसार की रचनाओं ने इसे बहुआयामी शोधपरक अंक बनाया है। सभी रचनाएँ बहुत अच्छी हैं। 'साहित्य अमृत' इसी प्रकार निरंतर आगे बढ़ते हुए नई ऊँचाइयों को छूती रहे, अनंत शुभकामनाएँ।

—मंजुश्री, मुंबई (महा.)

'साहित्य अमृत' के दिसंबर अंक में अत्यंत श्रेष्ठ पठनीय रचनाएँ मनन करने को मिलीं। संपादकीय 'नए क्षितिज बुलाते हैं···' उन विषयों पर लेखकों का ध्यान आकर्षित करता है, जो पत्र-पत्रिकाओं और कहानी-उपन्यासों में भी कम प्रेषित होते हैं। इसके अलावा वर्ष २०२० की अच्छी और विषम परिस्थितियों का जिक्र करते हुए नए वर्ष २०२१ में सबकुछ अच्छा होने की कामना की है। कहानी, कविता, स्मरण, आलेख, व्यंग्य, यात्रा-वृत्तांत, रोमांचित करते हैं। बाल-संसार मुग्ध करता है। साहित्य का भारतीय और विश्व परिपार्श्व पत्रिका को विविधता एवं आकर्षण प्रदान करता है। अन्य स्तंभ, प्रतिक्रियाएँ, वर्ग पहेली और साहित्यिक गतिविधियाँ 'साहित्य अमृत' को संपूर्णता प्रदान करते हैं।

—सुरेश प्रकाश शुक्ल, लखनऊ (उ.प्र.)

'साहित्य अमृत' का नवंबर अंक 'ज्योति संकल्प की' प्राप्त हुआ। सभी रचनाएँ पत्रिका के उच्च स्तर का गौरव बनाए रखती हैं। कुछ का मैं उल्लेख करना चाहती हूँ। विजयदान देथाजी की कहानी 'बेटा किसका' की शैली बहुत रोचक है। विपरीत परिस्थितियाँ व धनाभाव कैसे अपनों के ही व्यवहार में स्वार्थ का विष घोल देता है। रश्मिजी ने अपनी कहानी 'धर्मपत्नी' में बड़ा सजीव चित्रण किया है। वीरेंद्र जैनजी का संसमरण 'अध्यापक नहीं शिक्षक' तथा कृष्णा शर्माजी का आलेख 'लोक जीवन की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम' प्रभावित करते हैं। 'बाल बूझ पहेली' में संस्कृत साहित्य में वक्रोक्ति गौरी व लक्ष्मी का संवाद बहुत रोचक है। 'साहित्य अमृत' ऐसे ही हम पाठकों को रसास्वादन करवाता रहे, इन्हीं शुभकामनाओं के साथ।

—माला श्रीवास्तव, ग्रेटर नोएडा (उ.प्र.)

'साहित्य अमृत' का नवंबर-२०२० अंक प्राप्त हुआ। दीपात्मक झिलमिल ज्योति से झलकता ज्योति पर्व त्योहारों की पावन महक से मन के तारों को झंकृत कर गया। शरद ऋतु के शीतल वातावरण में स्वच्छता और सौंदर्य की स्मृति का पावन पर्व कर्मों को क्रियाशील माध्यम प्रदान करता है। तन-मन में स्फूर्ति तथा उत्साह की लहर निरंतर उन्मादित करते त्योहार करवा चौथ, अहोई आठें, शरद पूर्णिमा, नरक चतुर्दशी, दीपावली, गोवर्धन और भाई दूज अपनी रुनझुन पायल बजाते सुख, संपत्ति, समृद्धि और स्वास्थ्य के लिए सुअवसर प्रदान करते हैं। साथ ही सभी रचनाएँ, कहानियाँ, संस्मरण और कविताएँ शिक्षाप्रद, पठनीय और मननीय हैं। सभी रचनाकार बधाई के पात्र हैं। संपादकीय डॉ. लक्ष्मीशंकर वाजपेयीजी की बहुमुखी प्रतिभा को शब्दों की सुगढ़ माल में सँजोए प्रभावी है। विजयदान देथा की प्रतिस्मृति उनकी पृथक् लेखन विधा को प्रदर्शित कर पाठक को अपनी ओर खींचती है।

—रजनी सिंह, डिबाई (उ.प्र.)

'साहित्य अमृत' का दिसंबर-२० अंक मिला। मुखपृष्ठ को देखते ही बर्फ के बीच होने का अहसास हुआ। संपादकीय छोटा, पर सारगर्भित लगा। धर्मवीर भारती की प्रसिद्ध कहानी 'स्वर्ग और पृथ्वी' पढ़कर मन आनंदित हो गया। अन्य कहानियाँ में बसंत कुमार की 'काकी', लवलेश दत्त की 'दरवाजे', पुष्पा सक्सेना की 'पोर्टेट की कीमत' बेहद मनोरंजक एवं कथारस से भरपूर लगीं। सरदार पटेल के व्यक्तित्व को विवेचित करता नलिन चौहान का आलेख बेहद जानकारीपरक है। लता कादंबरी गोयल की लघुकथाएँ मनोरंजक लगीं। स्मरण में अरुण तिवारी का अनुपम मिश्र पर लेख पठनीय है, लेखक ने उन्हें शिद्दत से याद किया है। बाल-संसार के अंतर्गत बच्चों के लिए रचनाएँ बड़ी मनोरंजक एवं जिज्ञासा पैदा करने वाली हैं। साहित्यिक गतिविधियाँ घर बैठे ही हम पाठकों को देशभर में होने वाली साहित्यिक हलचलों से रूबरू कराती हैं। प्रतिक्रियाओं में रचनाओं के बारे में पाठकों का दृष्टिकोण पता चलता है। कुल मिलाकर 'साहित्य अमृत' एक संपूर्ण पत्रिका है। हमेशा आगामी अंक की प्रतीक्षा रहती है। एक शानदार अंक के लिए संपादकीय परिवार को नए वर्ष की शुभकामनाओं के साथ बहुत-बहुत धन्यवाद!

—आनंद शर्मा, प्रेमनगर (दिल्ली)

वर्ग पहेली (१८०)

अगस्त २००५ अंक से हमने '**वर्ग पहेली**' प्रारंभ की, जिसे सुप्रसिद्ध शिक्षाविद् एवं ज्ञान-विज्ञान की अनेक पुस्तकों के लेखक **श्री विजय खंडूरी** तैयार कर रहे हैं। हमें विश्वास है, यह पाठकों को रुचिकर लगेगी; इससे उनका हिंदी ज्ञान बढ़ेगा और पूर्व की भाँति वे इसमें भाग लेकर अपना ज्ञान परखेंगे तथा पुरस्कार में रोचक पुस्तकें प्राप्त कर सकेंगे। भाग लेनेवालों को निम्नलिखित नियमों का पालन करना होगा—

१. प्रविष्टियाँ छपे कूपन पर ही स्वीकार्य होंगी।
२. कितनी भी प्रविष्टियाँ भेजी जा सकती हैं।
३. प्रविष्टियाँ ३१ जनवरी, २०२१ तक हमें मिल जानी चाहिए।
४. पूर्णतया शुद्ध उत्तरवाले पत्रों में से ड्रॉ द्वारा दो विजेताओं का चयन करके उन्हें दो सौ रुपए मूल्य की पुस्तकें पुरस्कारस्वरूप भेजी जाएँगी।
५. पुरस्कार विजेताओं के नाम-पते मार्च २०२१ अंक में छापे जाएँगे।
६. निर्णायक मंडल का निर्णय अंतिम तथा सर्वमान्य होगा।
७. अपने उत्तर '**वर्ग पहेली', साहित्य अमृत, ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२** के पते पर भेजें।

वर्ग पहेली (१७८) का शुद्ध हल

१ श	क्ति	२ व	र्द्ध	३ क	■	४ चा	५ त	६ क
प	■	ध	■	७ ले	८ प	क	र	ना
९ ना	ग	■	१० दा	व	त	■	११ क	ई
गा	■	१२ दा	■	१३ र	वा	१४ दा	र	■
१५ र	१६ सा	य	१७ न	■	१८ र	स	ना	१९ थ
■	२० ह	रा	भ	२१ रा	■	ता	■	प
२२ स	ब	■	२३ च	म	क	■	२४ प	थ
२५ ता	जा	२६ क	र	ना	■	२७ भ	■	पा
२८ ना	दा	न	■	२९ म	त	ग	ण	ना

★ पुरस्कार विजेता ★

१. **श्री प्रकाश अहिरवार**
ग्राम-गढौली, पो.-बिल्धव
तहसील-बीना,
जिला-सागर-४७०११३ (म.प्र.)
दूरभाष : ६२६४८७८३५६

२. **श्री रमेश शर्मा**
बी-५२, लोककान्य सोसाइटी
इलाहाबाद बैंक के पीछे, रोहिणीपुरम
रायपुर (छ.ग.)
दूरभाष : ८८३९०५४२००

पुरस्कार विजेताओं को हार्दिक बधाई।

वर्ग-पहेली १७८ के अन्य शुद्ध उत्तरदाता हैं—सर्वश्री मोहन उपाध्याय (अजमेर), शिवानंद सिंह 'सहयोगी' (मेरठ), वाई.के. श्रीवास्तव (जबलपुर), फकीरचंद ढुल, जगदीश चंद (कैथल), मधुरानी (बेंगलुरु), दिनकर सहल, आनंद शर्मा (दिल्ली), अमरदेव आंगिरस (सोलन), सरला लोढ़ा (उदयपुर), माला श्रीवास्तव (ग्रेटर नोएडा), रूपेश श्रीवास्तव (लखनऊ), रामचंद्र कांडपाल (अल्मोड़ा), सुरेश सनातनी (ब्यावर), रामप्रकाश राय (गोरखपुर), धर्मवीर सिंह (रोहतक) ।

बाएँ से दाएँ—

१. नवाब का पुत्र (५)
५. षड्यंत्र (३)
७. समस्या (३)
८. आक्रमण (३)
१०. पुरुष, आदमी, मर्द (२)
११. क्रिया में लगा हुआ (३)
१२. स्वयं, आप (२)
१३. वह जिसके प्रभाव से कोई काम हो (३)
१४. समाधान (२)
१५. हाथ में लेकर चलने की सीधी पतली लकड़ी (४)
१७. बरबादी, मटियामेट (४)
१९. चरखी, घिरनी (२)
२०. निरर्थक, इधर-उधर घूमनेवाला (३)
२१. बहुत, सीमा के पार (२)
२२. धान के बीजों के दाने (३)
२३. झूठ रहित, सत्य (२)
२४. लड़ाई-झगड़ा (३)
२५. बिछाने या ओढ़ने का लंबा-चौड़ा कपड़ा (३)
२६. नीच, अधम (३)
२७. पृथ्वी के चारों ओर की वायु (५)

ऊपर से नीचे—

१. विनम्र (५)
२. दिन, दिवस (३)
३. आफत (२)
४. मुर्दा जलाने का काम (२,२)
५. पत्नी का छोटा भाई (२)
६. किसी शुभ प्रयत्न में अपने प्राण देनेवाला व्यक्ति (३)
९. मदिरा (२)
११. लोहे आदि की पतली छड़ (३)
१२. खोल देना (३)
१३. उलझा हुआ, पेचीदा (३)
१४. वध करनेवाला (३)
१६. अनुचित या बुरी प्रथा (३)
१७. प्रश्न (३)
१८. शील, नेकचलनी (५)
२०. बयार, वातावरण (४)
२१. धरती, पृथ्वी (३)
२२. कामयाबी पाने के लिए चालाकीपूर्ण लगाई जानेवाली युक्ति (२)
२३. सबसे बड़ा शासक (३)
२४. पीड़ा, व्यथा (२)
२५. शौक (२)

वर्ग पहेली (१७९) का हल अगले अंक में।

वर्ग पहेली (१८०)

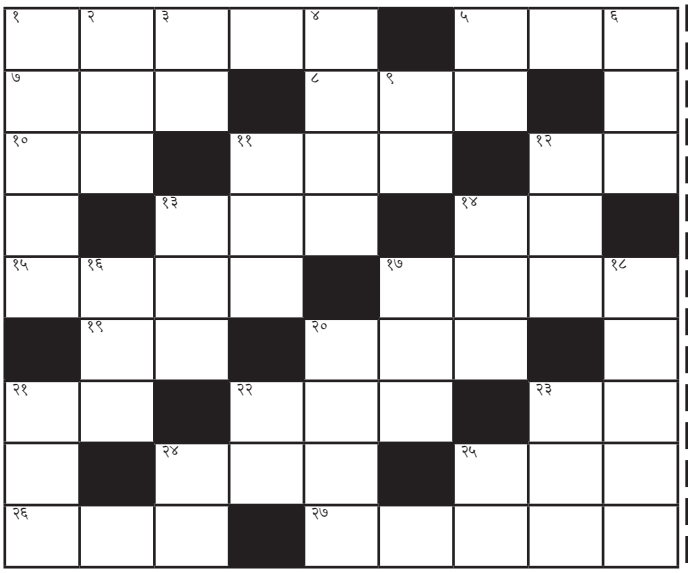

प्रेषक का नाम : .....

पता : .....

.....

.....

दूरभाष : .....

साहित्यिक गतिविधियाँ

वेबिनार आयोजित

विगत दिनों नई दिल्ली में हिंदू कॉलेज के हिंदी विभाग द्वारा राष्ट्रीय पुस्तक सप्ताह के अवसर पर आयोजित वेबिनार में श्री पंकज चतुर्वेदी ने अपने विचार व्यक्त किए। डॉ. पल्लव ने 'हिंदी साहित्य सभा' की गतिविधियों के बारे में जानकारी दी। श्री धर्मेंद्र प्रताप सिंह ने श्री पंकज चतुर्वेदी का परिचय दिया। सवाल-जवाब सत्र में प्रश्नों का संयोजन श्री नौशाद अली ने किया। कार्यक्रम का संयोजन श्री हर्ष उर्मलिया ने किया तथा धन्यवाद श्री राहुल कसौधन ने ज्ञापित किया। □

कार्यक्रम आयोजित

२६ नवंबर को प्रयागराज में 'संविधान दिवस' के अवसर पर 'सर्जन-पीठ' के तत्त्वावधान में 'संवैधानिक संस्थाओं और संविधान का दुरुपयोग : एक गंभीर प्रश्न' विषय पर एक अंतर्जालिक राष्ट्रीय बौद्धिक परिसंवाद का आयोजन किया गया, जिसमें सर्वश्री विश्वेश्वर कुमार, रमाशंकर श्रीवास्तव, प्रदीप चित्रांशी, शिवप्रसाद शुक्ल, प्रतिभा सिंह तथा नीतू सिंह ने अपने विचार व्यक्त किए। □

कार्यक्रम संपन्न

३० नवंबर को भारतीय युवा साहित्यकार परिषद् के तत्त्वावधान में 'हेलो फेसबुक लघुकथा सम्मेलन' में सर्वश्री सिद्धेश्वर, भगवती प्रसाद द्विवेदी व गोरखानाथ मस्ताना ने अपने विचार व्यक्त किए। □

'अंबिका प्रसाद दिव्य स्मृति प्रतिष्ठा' पुरस्कार घोषित

१८ नवंबर को अंबिका प्रसाद दिव्य स्मृति प्रतिष्ठा पुरस्कारों की घोषणा की गई। इक्कीस सौ रुपए का दिव्य पुरस्कार श्री अशोक कुमार शर्मा को 'कठपुतली नाच' के लिए; डॉ. श्याम मनोहर सिरोठिया को काव्य-संग्रह 'सुधियों का अंचल' के लिए; श्री कौशलेंद्र को निबंध-संग्रह 'प्रतिध्वनि' के लिए; व्यंग्य विधा में 'मूर्ख बनकर जियो' के लिए श्री घमंडीलाल अग्रवाल को तथा बाल-साहित्य में डॉ. विकास दुबे को 'दादाजी खुद बने कहानी' के लिए दिया जाएगा। द्वितीय एवं तृतीय पुरस्कारस्वरूप दिव्य-प्रशस्ति पत्र प्रदान किए जाएँगे—'दशानन रावण' के लिए डॉ. स्नेह ठाकुर को, 'प्रमिला सतसई' के लिए श्रीमती प्रमिला भारती को, 'सफर संघर्षों का' के लिए श्री कारूंलाल जयड़ा; 'महामति प्राणनाथ' के लिए श्री बृजवासी लाल दुबे को; 'सृजन का वैविध्य' के लिए श्रीराम दुबे को; 'सुनो भाई साधो' के लिए राकेश चंद्रा को 'मुआवजा' के लिए अरुण श्रीवास्तव को, श्री सुदर्शन सोनी को 'अगले जन्म मोहे कुत्ता कीजो' के लिए; श्री कृष्णा सुकुमार को 'तुम्हारा होना सच है' तथा भानु भाराव को 'रंग अब वो रंग नहीं'; श्रीमती नीना सिंह को 'पूले से दोस्ती' तथा श्रीमती रागिनी उपलपवार को 'हार से मिला हौसला' के लिए। □

कार्यक्रम आयोजित

३० नवंबर को नई दिल्ली में शंघाई सहयोग संगठन (एस.सी.ओ) की आभासी बैठक के दौरान माननीय उपराष्ट्रपति श्री वेंकैया नायडू ने आधुनिक भारतीय साहित्य की १० कालजयी कृतियों के चीनी तथा रूसी अनुवादों के पूर्ण होने की घोषणा की। चीनी तथा रूसी भाषाओं में अनूदित भारतीय कृतियाँ हैं—'सूरुजमुखीर स्वप्न'—ले. सैयद आब्दुल मालिक (असमिया), 'आरोग्य निकेतन'—ताराशंकर बंद्योपाध्याय (बाँग्ला), वेविशाल—झवेरचंद मेघाणी (गुजराती), 'कव्वे और काला पानी'—निर्मल वर्मा (हिंदी), 'पर्व'—एस.एल. भैरप्पा (कन्नड़), 'मनोज दासंक कथा ओ काहीणी'—मनोज दास (उड़िया), 'मढ़ी दा दीवा'—गुरदियाल सिंह (पंजाबी), 'शिल नेरंगळिल शिल मणितर्कळ'—जयकांतन (तमिल), 'इल्लु—राचाकांऽडा' विश्वनाथ शास्त्री (तेलुगु) तथा 'एक चादर मैली सी'—राजिंद्र सिंह बेदी (उर्दू)। □

कार्यक्रम आयोजित

त्रैमासिक पत्रिका 'समकालीन अभिव्यक्ति' ने जनवरी-जून २०२० का अंक हिंदी के वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. रामदरश मिश्र पर उनके ९६ वर्ष पूरे होने के अवसर पर एकाग्र अंक निकाला है, जिसका ऑनलाइन लोकार्पण श्री रामदरश मिश्र, पत्नी श्रीमती सरस्वती मिश्र और पुत्री स्मिता मिश्र के करकमलों द्वारा मिश्रजी के जन्मदिन पर हुआ। इस अंक में सर्वश्री उपेंद्र कुमार मिश्र, हरि-शंकर राढ़ी, ओम धीरज, प्रकाश मनु, वेदमित्र शुक्ल, सविता मिश्र, माया मिश्र, अपूर्वा मिश्र, भारत यायावर, राधेश्याम तिवारी, पांडेय शशिभूषण 'शीतांशु' एवं वैद्यनाथ झा की रचनाएँ संकलित हैं। □

कार्यक्रम आयोजित

६ दिसंबर को नई दिल्ली में नागरी लिपि परिषद्, जगदंबी प्रसाद यादव स्मृति संस्थान और अंतरराष्ट्रीय हिंदी परिषद् के संयुक्त तत्त्वावधान में राष्ट्रीय संगोष्ठी एवं काव्य गोष्ठी में सर्वश्री अमीर चंद, अमरेंद्र प्रताप सिंह, वीरेंद्र कुमार यादव, अंशुमाला, हरिसिंह पाल, अनिल शर्मा, आशीष कंधवे, परमानंद पांचाल, ओमप्रकाश जमुआर, जवाहर कर्णावट, शुभ्रता मिश्रा, दिलीप कुमार ने अपने विचार व्यक्त किए। डॉ. नीतू कुमारी नवगीत ने सरस्वती वंदना प्रस्तुत की। कार्यक्रम में स्व. मृदुला सिन्हाजी को श्रद्धांजलि दी गई और उनकी आत्मा की शांति के लिए दो मिनट का मौन रखा गया। दूसरे सत्र में डॉ. शांति जैन की अध्यक्षता में अंतरराष्ट्रीय काव्य गोष्ठी का आयोजन किया गया। □

कार्यक्रम आयोजित

१२ दिसंबर को नई दिल्ली के हिंदी भवन में आयोजित शिल्पी चड्ढा स्मृति पुरस्कार समारोह में सर्वश्री ओम सपरा, आशीष कंधवे, श्यामसुंदर सहाय तथा उमेश मेहता ने बाल साहित्य पर चर्चा की। सर्वश्री लारी आजाद, घमं-डीलाल अग्रवाल, आशा शैली, नैनीताल, सुरेश नीरव, सुषमा सिंह को सम्मान प्रदान किए गए। □

कार्यक्रम आयोजित

१५ दिसंबर को नई दिल्ली में श्री कृपाशंकर की अध्यक्षता में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के शैक्षणिक संगठन विद्या भारती द्वारा आयोजित प्रबुद्ध वर्ग सम्मेलन में बाबासाहेब आंबेडकर द्वारा प्रकाशित सबसे पहले समाचार-पत्र 'मूकनायक' पर प्रो. संजय द्विवेदी ने अपने विचार व्यक्त किए। □

कार्यक्रम आयोजित

पं. विद्यानिवास मिश्र की स्मृति में उनके जन्मदिवस (१४ जनवरी) के अवसर पर विगत वर्षों की भाँति विद्याश्री न्यास द्वारा इस वर्ष तीन दिन का कार्यक्रम (१२ से १४ जनवरी, २०२१) वेबिनार के रूप में आयोजित किया जाएगा, जिसका केंद्रीय विषय 'भारत में भाषा-चिंतन की परंपराएँ' होगा। इसके अकादमिक सत्र वेद-वेदांगों में भाषा चिंतन, दार्शनिक भाषा-चिंतन की पृष्ठभूमि, व्याकरणिक भाषा-चिंतन, काव्य शास्त्र और भारतीय भाषा-चिंतन, भारतीय भाषा-चिंतन और पाश्चात्य भाषा शास्त्र होंगे। इस वेबिनार में प्रतिभा-गिता निशुल्क होगी तथा सभी प्रतिभागियों के लिए ऑनलाइन प्रमाण-पत्र की व्यवस्था है। प्रतिभागी dayanidhimisra@gmail.com इ-मेल पर पंजीकरण तथा केंद्रीय विषय या किसी उप-विषय पर अपना शोध-पत्र १०

जनवरी तक भेज सकते हैं, जिसमें चयनित शोध-पत्र के वाचन/प्रकाशन का अवसर होगा। राष्ट्रीय वेबिनार का लिंक व्हाट्सएप नंबर ९४१५७७६३१२ के माध्यम से यथासमय उपलब्ध कराया जाएगा। □

'छुआछूत मुक्त समरस भारत' कृति लोकार्पित

६ दिसंबर को प्रख्यात समाजधर्मी मान. श्री इंद्रेश कुमार की प्रभात प्रकाशन द्वारा प्रकाशित विचारोत्तेजक पुस्तक 'छुआछूत मुक्त समरस भारत' का लोकार्पण केंद्रीय शिक्षा मंत्री मान. श्री रमेश पोखरियाल 'निशंक' के करकमलों से इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र के अध्यक्ष मान. श्री राम बहादुर राय की अध्यक्षता में इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र सभागार, नई दिल्ली में संपन्न हुआ। कार्यक्रम में कोविड-१९ के कारण निर्धारित संख्या में लेखक-साहित्यकार व समाजधर्मी ही सम्मिलित हुए। वर्चुअल माध्यम से देशभर में पुस्तक प्रेमी व लेखक-साहित्यकार फेसबुक व यूट्यूब लाइव से कार्यक्रम से जुड़े। इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र के सदस्य सचिव प्रो. सच्चिदानंद जोशी ने स्वागत उद्बोधन में कहा कि यह पुस्तक बाबासाहेब आंबेडकर के सर्वांगीण योगदान को रेखांकित करनेवाली कृति है। श्री निशंक ने पुस्तक पर अपने गहन व गंभीर चिंतन को रखा। पुस्तक को शोधार्थियों समेत प्रत्येक स्तर के पाठकों के लिए अनिवार्य रूप से पठनीय बतलाया। इंद्रेशजी का उद्बोधन सदा की भाँति प्रेरक एवं नवोन्मेष से युक्त था। उन्होंने यह बतलाया कि जब-जब हम अधिकारों की बात करते हैं, तब-तब एक खूनी संघर्ष जन्म लेता है तथा इतिहास रक्तरंजित हो जाता है। अपने अध्यक्षीय संभाषण में श्री राम बहादुर राय ने समग्र वैचारिक मंथन का सम्यक् समाहार प्रस्तुत किया और अखंड भारत में मृत्यु की परिकल्पना हेतु इंद्रेशजी का धन्यवाद किया। इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र, डीन एवं विभागाध्यक्ष प्रो. रमेश चंद्र गौड़ ने धन्यवाद ज्ञापन किया। □

वेबिनार आयोजित

विगत दिनों सुप्रसिद्ध आलोचक एवं उदयपुर विश्वविद्यालय के पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष प्रो. नवलकिशोर ने संभावना संस्थान द्वारा आयोजित वेबिनार 'यादों में स्वयं प्रकाश' में अपने विचार व्यक्त किए। हिंदी के प्रसिद्ध कथाकार स्वयंप्रकाश की प्रथम पुण्यतिथि पर आयोजित इस वेबिनार में उन्होंने कहा कि स्वयंप्रकाश का कथा लेखन अपने को न दोहराने के लिए भी याद किया जाएगा। वे नए प्रयोगों और शिल्प सजगता के लिए भी जाने जाएँगे। उनसे संवाद कर रहे डॉ. बालमुकुंद नंदवाना ने वेबिनार के प्रारंभ में स्वयं प्रकाशजी को श्रद्धांजलि दी तथा प्रो. नवलकिशोर का परिचय दिया। इससे पहले संभावना के अध्यक्ष डॉ. के.सी. शर्मा ने स्वागत किया। अंत में डॉ. कनक जैन ने आभार व्यक्त किया। वेबिनार में सर्वश्री सदाशिव श्रोत्रिय, जीवन सिंह, पल्लव, सूर्यनारायण, विष्णु नागर, कामेश्वर प्रसाद सिंह सहित स्वयं प्रकाश के परिवारजनों ने भी संवाद में सहभागिता की। □

श्रद्धांजलि सभा आयोजित

१६ दिसंबर को नई दिल्ली में साहित्य अकादेमी द्वारा प्रख्यात कवि एवं साहित्य अकादेमी पुरस्कार प्राप्त श्री मंगलेश डबरालजी की स्मृति में एक श्रद्धांजलि सभा का आयोजन किया गया। आभासी मंच पर उनके चित्र को श्रद्धांजलि दी गई। इस अवसर पर सर्वश्री के. श्रीनिवासन, चित्रा मुद्गल, आनंद स्वरूप वर्मा, असगत वजाहत, प्रभाती नौटियाल, अरुण कमल, सुंदर चंद ठाकुर, प्रियदर्शन, चंद्रकांत पाटिल, के. सच्चिदानंदन, वनीता, प्रवीण अरोड़ा, रवींद्र त्रिपाठी, लीलाधर मंडलोई, लक्ष्मीशंकर वाजपेयी तथा मंजुला राणा, बलवंत जेऊरकर ने उन्हें शब्दांजलि प्रस्तुत की। मंगलेशजी के परिवार से श्रद्धांजलि सभा में शामिल हुई उनकी बेटी सुश्री अल्मा और श्री प्रमोद कौंसवाल ने साहित्य अकादेमी तथा श्रद्धांजलि सभा में शामिल सभी के प्रति आभार व्यक्त किया। साहित्य अकादेमी के उपाध्यक्ष श्री माधव कौशिक ने कहा कि डबरालजी ने पहाड़ के लालित्य को नहीं बल्कि वहाँ की बदहाली को गहरे तक महसूस किया और इसको अपनी आवाज दी। संचालन अकादेमी के संपादक (हिंदी) श्री अनुपम तिवारी ने किया। □

'कोविड-१९ : सभ्यता का संकट और समाधान' कृति लोकार्पित

१७ दिसंबर को नोबेल पुरस्कार से सम्मानित श्री कैलाश सत्यार्थी की प्रभात प्रकाशन द्वारा सद्य:प्रकाशित विचारोत्तेजक कृति 'कोविड-१९ : सभ्यता का संकट और समाधान' का लोकार्पण भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति श्री दीपक मिश्रा के करकमलों से राज्यसभा के उपसभापति मान. श्री हरिवंशजी के विशिष्ट आतिथ्य में ऑनलाइन संपन्न हुआ। न्यायाधीश श्री दीपक मिश्रा ने इस पुस्तक को महत्त्वपूर्ण और अत्यंत सामयिक बताते हुए कहा कि यह सरल और सहज भाषा में एक बहुत ही गहन विषय को छूती है। यह कैलाशजी के 'सामाजिक-राजनीतिक इंजीनियर' के रूप को भी हमारे सामने प्रकट करती है। यद्यपि पुस्तक गद्य में लिखी गई है, लेकिन इसकी सुगंध कविता जैसी है। उन्होंने कैलाशजी के कवि रूप की प्रशंसा की और पुस्तक में शामिल श्री सत्यार्थी की कविताओं को उद्धृत करते हुए उसकी दार्शनिक व्याख्या भी की। श्री हरिवंशजी ने भी पुस्तक की महत्ता को रेखांकित करते हुए कहा कि कोविड संकट के दौर में इस पुस्तक का लिखा जाना मानव सभ्यता के इतिहास में एक नया अध्याय का जोड़ा जाना है। इस पुस्तक के माध्यम से बहुत ही बुनियादी लेकिन महत्त्वपूर्ण सवालों को उठाया गया और उनका समाधान भी प्रस्तुत किया गया है। उन्होंने करुणा, कृतज्ञता, उत्तरदायित्व और सहिष्णुता की नए संदर्भ में व्याख्या भी की है, जिनका यदि हम अपने जीवन में पालन करें तो समाधान निश्चित है। श्री कैलाश सत्यार्थी ने इस अवसर पर लोगों का ध्यान कोरोना संकट से प्रभावित बच्चों की तरफ आकर्षित किया। उन्होंने कहा कि महामारी शुरू होते ही मैंने लिखा था कि यह सामाजिक न्याय, सभ्यता, नैतिकता एवं हमारे साझे भविष्य का संकट है, जिसके परिणाम दूरगामी होंगे। संकट से उबरने के लिए हमें 'करुणा का वैश्वीकरण' करना होगा। □

साहित्यिक क्षति

श्री विष्णुचंद्र शर्मा नहीं रहे

२ नवंबर को कवि-लेखक एवं अनुवादक श्री विष्णुचंद्र शर्मा का निधन हो गया। उनका जन्म १ अप्रैल, १९३३ को वाराणसी में हुआ था। उनकी दस कविता-पुस्तकें तथा 'मुक्तिबोध की आत्मकथा' उल्लेखनीय हैं। वे 'कवि' पत्रिका के संपादक भी रहे। □

श्री मंगलेश डबराल नहीं रहे

९ दिसंबर को हिंदी कवि श्री मंगलेश डबराल का निधन हो गया। उनका जन्म १६ मई, १९४८ को टिहरी-गढ़वाल (उत्तराखंड) के काफलपानी गाँव में हुआ था। 'जनसत्ता' में साहित्य संपादक के रूप में तथा कुछ समय 'सहारा समय' में संपादन कार्य करने के उपरांत वे नेशनल बुक ट्रस्ट से जुड़े रहे। पाँच काव्य-संग्रह, दो गद्य-संग्रह एवं एक यात्रावृत्त प्रकाशित। अनेक सम्मानों से सम्मानित हुए। □

साहित्य अमृत परिवार की ओर से
दिवंगत आत्मा को भावभीनी श्रद्धांजलि।